श्री श्री गौरांगविधुर्जयति

भक्तिरसतरंगिणी

श्रीमन्महाप्रभुपार्षदप्रवर श्री श्री गदाधर पण्डित गोस्वामीजी के शिष्य श्रीकृष्णदास ब्रह्मचारीजी उनके शिष्य, "श्रीजी" तथा "श्रीबलदेवजी" प्रकटाचार्य, रासलीलानुकरण का मूलाचार्य, व्रजाचार्य, व्रजोद्धाराचार्य, माध्वगौड़ेश्वराचार्य्य, श्रीनारदावतार श्रीनारायण भट्टाचार्य्य विरचिता।

अनुवादक व प्रकाशक

कृष्णदास

कुसुमसरोवर (गोवर्द्धन) मथुरा

प्रथमावृत्ति १००० | झूलन तीज श्रावण शुक्लपक्ष सम्वत् २००४ | मूल्य १)

गर्ग प्रिंटिंग प्रेस, हनुमान का रास्ता जयपुर।

श्रीगौरांगविधुर्जयति

दो शब्द

व्रजमाधुरी सागर का अनन्त लीलतरंग है। जिसमें प्रेम ही चिन्तामणि तथा भक्ति जलरूप है। जिस का एक ही कण रस-बादल रूप से परिणतपूर्वक कृपा पवन द्वारा प्रेरित हो कर अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड को शीतल करने में समर्थ है। करुणावरुणालय श्री किशोरकिशोरी मिलितविग्रह श्रीमन्महाप्रभु गौरांगदेवजी का प्रधान हार्द यह था कि इस महान् भक्तिरस को जो कि निरन्तर नित्यव्रज में अखण्ड भाव से विराजित है और जो नित्य व्रजविहारी किशोरकिशोरी का आत्मरूप है उस अमूल्य महाधन को जीव जगत में वितरण करें। आप श्रीराधिका भावकान्ति ग्रहणपूर्वक मनोहर गौरांगरूप से अभिन्न वृन्दावन श्रीनवद्वीप में अवतीर्ण हो कर ब्रह्मादुर्ल्लभ उस प्रेम महाधन को चराचर जीव जगत में वितरण करने लगे। आप बहुदिन से गुप्तप्राय निज क्रीड़ाभूमि श्रीव्रज को उद्धार (प्रकाश) कराने के लिये निजपार्षद श्रीरूपसनातन प्रभृति गोस्वामीगण को स्वशक्ति प्रदानपूर्वक व्रज को भेज दिये। श्री महाप्रभु का आदेश पाकर श्रीरूपसनातन प्रभृति श्रीव्रजभूमि में आकर लुप्ततीर्थों का उद्धार, तथा असंख्य भक्तिरस सिद्धान्त शास्त्र की रचना करने लगे। प्रभु की कृपा से प्रेरित हो कर महाप्रभावशाली श्रीनारायणभट्टगोस्वामी चरण ने भी व्रज में आकर उक्त दूरूह कार्य्य का समाधान प्रचुर भाव से किया। आपके विषय में भक्तमालकार श्रीनाभाजी कहते हैं कि:—

"गोप्यस्थल मथुरामण्डल जिते वाराह बखाने।
किये नारायण प्रकट प्रसिद्ध पृथ्वी में जाने॥
भक्तिसुधा को सिन्धु सदा सत्संग समाजन।
परमरसज्ञ अनन्य कृष्णलीला को भाजन॥"

टीकाकार प्रियादासजी:—

"भट्ट श्रीनारायण जू भये व्रज परायण, जाय जाहि ग्राम तहाँ व्रत करि ध्याये हैं। बोलि के सुनावे इहाँ अमुक स्वरूप है, ज लीला कुण्ड धाम श्याम प्रगट दिखाये है ॥ ठौर ठौर रास के विलास लै प्रगट किये, जिये यों रसिक जम कोटि सुख पाये है ॥'

लडिलीदासजी का मगंलः--

"मुनि नारद को अवतार देह यह नर धरी ।
मथुरा मण्डल गुप्त रीत प्रगट करी ॥"
"रसविलास सुख लह्यो और सब हिन दियो ॥"

आप के द्वारा साधित महत् कार्य्य समूह ।

१। मथुरामण्डल में गोप्यतीर्थों का उद्धार ।
२। रासलीलानुकरण का सर्व प्रथम प्राकट्य ।
३। वनयात्रा व व्रजयात्रा का प्रारम्भ ।
४। बलदेवजी का प्राकट्य (उच्चाग्राम)
५। श्रीजी का प्राकट्य (बरसाना)
६। बुढ़ीलीला का स्थापन (जो कि बरसाना में भाद्र सुदी सप्तमी से पूर्णिमापर्य्यन्त होता आरहा है)
७। भक्तिशास्त्र समूह का निर्म्माण ।

आप श्रीमन्महाप्रभु गौरांगदेवजी के पार्षद्प्रवर राधिकास्वरूप श्रीगदाधरपण्डित गोस्वामी जी के शिष्य श्रीइन्दुलेखा सखी का अवतार श्रीकृष्णदास ब्रह्मचारी जी के प्रियशिष्य हैं। आपका जन्म समय सम्वत् १५८८ वैशाख शुक्लपक्ष नृसिंहजन्मदिवस दिवाभाग है। आप दक्षिणदेशस्थ मदुरा पत्तनवासी भृगुवंशी, श्रीवत्सगोत्री, ऋग्वेदी तैलंग ब्राह्मण है। पिता का नाम "भास्कर-भट्ट" माता का नाम "यशोमतीदेवी" है। लघु भ्राता गोपाल नाम से प्रसिद्ध है। अन्तर्द्धान का समय लगभग १७०० सम्वत् से कुछ पहिले अनुमान किया जाता है।

आपके द्वारा रचित ग्रन्थ समूह ।—

व्रजभक्तिविलास, व्रजप्रदीपिका, भक्तिरसतरंगिणी, व्रजभक्तिविलास, व्रजप्रदीपिका, व्रजोत्सवचन्द्रिका, व्रजमहोदधि, व्रजोत्सवाह्लादिनी, बृहत्व्रजगुणोत्सव, व्रजप्रकाश, व्रजदीपिका, भक्तिभूषणसन्दर्भ, व्रजसाधनचन्द्रिका, भक्तिविवेक, साधनदीपिका, रसिकाल्हादिनी (भागवत की टीका) प्रेमांकुरनाटक, लाड़िलीलाल युगल पद्धति, लाड़िलेयाष्टक प्रभृति ।

भक्तिरसतरंगिणी में साधन भक्ति, प्रेमाभक्ति, स्वरूपाभक्ति, भक्ति की सिद्धियाँ, विभाव, अनुभाव, व्यभिचारिभाव, स्थायिभाव, द्वादश रस का सम्यक् उदाहरण के साथ विचार है। इसमें पाञ्च अध्याय व उल्लास है। जो कि श्रीरूपगोस्वामी विरचित भक्तिरसामृत सिन्धु तथा उज्ज्वलनीलमणि का आधार पर है। जयपुर में स्थित श्रीगोविन्ददेवजी की लाइब्रेरी से एक हस्तलिपि मुझे सर्वप्रथम मिली थी। श्रीयुक्त प्रिय गोस्वामी प्रियालालजी के पास से द्वितीय कापी मिली। मन में बहु दिन से वासना थी कि उक्त ग्रन्थ प्रकाशित हो कर रसिकमण्डली में उपस्थित होय। श्रीगुरुकृपा से इस महान् कार्य्य का समाधान हुआ है। श्रीमन्महाप्रभु प्रचारित व्रज में परकीयाभावमयीउपासना, जो कि श्रीमद्भागवत, पद्मपुराणादिक प्राचीन ग्रन्थ में, तथा जयदेव, विद्यापति, चण्डीदास, देव, बिहारी, केशवादिक कवियों कि पदावली में और सूरदास प्रभृति अष्टसखायों की वाणी में उपस्थित है जो सर्वोपरि है तथा श्रीरूपसनातन प्रभृति गोस्वामीगणों की हार्दिक उपासना है, काव्यप्रकाशादि तथा साहित्यदर्पण प्रभृति यावतीय अलंकारग्रन्थ जिसका साक्षी है वही परकीयाभावमयी उपासना यह भक्तिरसतरंगिणी में सन्निवेश है। श्रीयुक्त महामहिम विश्वनाथ चक्रवर्त्तीजी स्वकीय उज्ज्वलनीलमणी टीका में परकीया

भाव का स्थापन करते हुए भक्तिरसतरंगिणी का प्रमाण बताये है तथाहि नारायणभट्टपादैरपि स्वकृतरसतरंगिण्यां

शान्ते ब्राह्मण एव स्यात्प्रीते दासः प्रकीर्त्तितः ।
प्रेयसि स्युः सखायो हि इत्यारभ्य
करुणे वत्सवृन्दादिः जटिलाद्यास्तु रौद्रके ।
गोवर्द्धनोऽभिमन्युश्च भयानक उदीरितौ इत्यादिक
न राधा भर्त्तारं क्वचिदपि च दृष्टव्या गृहगतं
समद्राक्षीन्नित्यं तव सरसमूर्त्तिं विलिखती ।
तवाप्येतद्वक्षो वहति रुचिरां तत्प्रतिकृतिं
ततः कृष्णप्रेम्णाहमपि विदधे दौत्यमखिलं इत्यादिक ॥

श्रीगोविन्द चरण कमल मधु पानोन्मत्त रसिकभ्रमरगण यह ग्रन्थरत्न को अवश्य अपनायेंगे । क्योंकि रसरीति जनाने में यह ग्रन्थ अपूर्व आश्रयरुप होगा अलमधिकेन । इति ।

कुसुमसरोवर,
राधाकुण्ड (मथुरा)

विनीत—
कृष्णदास

"श्री मङ्गलदेवो जयति" "श्री गोपीनाथो जयति"

श्री घनमौक्तिकधारी घनरसनिधिसंश्रयोऽघहारी च।
अनुगतभानुतनूजो राधाप्रेष्ठोऽर्णवो जयति ॥ १ ॥
अस्यां भक्तितरंगिण्यां रसो द्वादश भेदगः।
एकादशेषु चांगत्वं द्वादशे चांगिता स्मृता ॥ २ ॥
एक एव रसो ह्यत्र रसराजतयोदितः।
तस्मिन्सर्वे गुणाः प्रोक्ता मुख्याश्चान्यत्र ते स्मृताः ॥ ३ ॥
तथाहि- शान्तः प्रीतो वत्सलश्च प्रेयान्हास्याद्भुतौ तथा।
वीरः करुणरौद्रौ च वीभत्सोऽथ भयानकः।
मधुरो मधुरांगत्वाद्व्यञ्जकत्वाद्विराजते ॥ ४ ॥
रसवर्णाः- शुभ्रश्चित्रोऽथ विज्ञेयो वन्धुकाभोऽरुणस्तथा।
पाण्डुरः पिंगवर्णश्च गौरो धूम्रः कषायकः ॥
रक्तः श्यामोऽथ नीलश्च स्निग्धश्याम इतिक्रमात् ॥ ५ ॥

श्री गौरांगनित्यानन्दचन्द्रौ जयतः ॥

श्री घनमुक्ताधारी, निविडरसों का आश्रय, अघनाशक, भानुतनूजा श्रीयमुना जिस में मिली हैं एसे श्रीराधाप्रिय, श्रीहरिसागर का जय होय।

इस भक्तिरसतरंगिणी नामक ग्रन्थ में शान्त, दास्य, वात्सल्य, सख्य, हास्य अद्भुत, वीर करुण, रौद्र, वीभत्स, भयानक, मधुर नामक द्वादश रस कहे गये हैं। जिनों में से 'मधुर रस' मुख्य, अन्य एकादश रस

विष्णुधर्मोत्तरे:-

शृंगारस्तु भवेच्छ्यामो रक्तो रौद्रः प्रकीर्त्तितः।
सितो हास्यश्च विज्ञेयः पीतश्चैवाद्भुतः स्मृतः ॥
गौरो वीरस्तु विज्ञेयः कृष्णश्चैव भयानकः।
कपोतः करुणश्चैव नीलो वीभत्स एव च ॥ ६ ॥

रसस्तावच्छरीर्य्येव- शिरो ग्रीवा जत्रुबाहू हृदयं ह्युदरं तथा।
सक्थिनी जघने पादावित्यंगैः पुरुषं रसम् ॥ ७ ॥
उज्वलस्तु शिरो ग्रीवा वत्सलस्तु भवेत्तथा।
बाहू प्रेयाद्भुतौ हच्च जठरं प्रीतहास्यकौ ॥
सक्थिनी करुणवीरौ जघने रौद्रभीमकौ।
शान्तविभत्सकौ पादावित्यूचु रसवेदिभिः ॥ ८ ॥

ततश्च मूर्त्तिमान्भक्तिरस इति तदुक्तं श्री भागवते 'अनर्थोपशमं साक्षाद्भक्तियोगमधोक्षजे। अपश्यदिति'। ये तु रसममूर्त्तं मन्यन्ते ते रसाभासादेव। न हि भक्तिरसं बिनान्योऽस्ति रसः तथाच श्रुतिः 'रसं ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति' ॥ ६ ॥

का प्रकाशक, तथा अंगीरस, रसराज, शृंगारादिक नाम से ख्यात है। रसों के वर्ण क्रम से सफेद, विचित्र, बन्धुकसदृश, अरुण, पीला, पिंगल, गौर, धूमाट, कसैला, रुक्षश्याम, नील तथा स्निग्धश्याम हैं ॥ १-५

विष्णुधर्म्मोत्तर में- शृंगार का श्याम, रौद्रका रक्त, हास्य का शुभ्र, भयानक का कृष्ण, अद्भुत का पीला, वीर का गौर, करुण का कपोत, और वीभत्स का नीलवर्ण लिखा है ॥ ६ ॥ रस क्रमण रस को शरीर रूप में वर्णन

केचिदेकं रसं प्राहुः केचिन्नव तथा दश।
अपरे द्वादशेत्यादौ न विरोधः स्वरुपतः ॥ १० ॥
परस्परान्तर्भावानन्तर्भावाभ्यामित्यर्थः।
अत्र पञ्चैव चोल्लासाः प्रेम भक्तिरसानुगाः।
क्रमेणैव विलिख्यन्ते रसस्यैव विवृद्धये ॥ ११ ॥

सामान्य भक्तिरसः—

कृष्णस्वरुप एव स्याद्वृत्तिरिन्द्रियदेहयोः।
सैव भक्तिरिति प्रोक्ता गुणमिश्रे गुणात्मिका ॥ १२ ॥

ऐश्वर्य्यादयः षट् तेषु तादात्म्यं शुक्लपटवत्, न तु कृष्णस्य स्वरुपं षट्-समूहः। तथात्वे भगवानिति प्रयोगो न स्यादभेदात। किञ्च स्वरुपत्वे विलोन ज्ञानैश्वर्यादिरभिभवो न स्यात् पटस्यैव शुक्लादेस्तु भवत्येव। "उभावपि कृष्णो विचिकाय समन्तत" इत्यादौ ज्ञानाद्यभिभवदर्शनात्। यथा दिग्विजयिनोऽप्यैश्वर्य्यादिकं प्रियारसेनाभिभूयते न तु दूरीक्रियते तथा श्रीकृष्णोऽपि सूर्यतेजसा विस्फूलिंगतेजः, हिरण्यकशिपुतपसा सूर्य्यतेज इत्याद्युदाहरणीयं ततश्च कृष्णस्वरुपे देहादिवृत्ति र्भक्तिरिते फलितोऽर्थः ॥ १३ ॥

रते है। जैसे कि शृंगार मस्तक, वात्सल्य ग्रीवा, प्रेय और अद्भुत दोनों भुजा, प्रीत हृदय, हास्य उदर, करुण और वीर दोनों सक्थिनी, रौद्र और भयानक दोनों जंघा, शान्त और वीभत्स दोनों चरण हैं ।।७-८।। यहां भक्तिरस को मूर्तिमान जानना। श्रीभागवत में कहा कि—अधोक्षज भगवान् में अनर्थ नाशक भक्तियोग को देखा। जिनों ने रस को मूर्त्तिमान नहीं माना, सो रसाभास से जानना। भक्तिरस मे कोई पृथक अन्य रस नहीं है। रस को प्राप्त होकर भगवान् भी आनन्दित होते हैं 'श्रुती' में एसा कहा है ।।९।। रस का भेद कोई एक कोई नव, कोई दश, अपर कोई द्वादश कहते हैं। १०

तदुक्तं श्रीमागवते तृतीयस्कन्धे कपिलोपाख्याने ।-

देवानां गुणलिंगानामानुश्रविककर्मणां ।
सत्व एवैकमनसो वृत्तिः स्वाभाविकी तु या ।
अनिमित्ता भागवती भक्तिः सिद्धेर्गरीयसी ।
जरयत्याशु या कोशं निगीर्णमनलो यथा ।
"मद्गुणश्रुतिमात्रेण मयि सर्वगुहाशये ।
मनो गतिरविच्छिन्ना यथा गंगाम्भसाम्बुधौ ।
लक्षणं भक्तियोगस्य निर्गुणस्य ह्युदाहृतं" ॥ १४ ॥

तदुक्तं पंचरात्रे- सर्वोपाधिविनिर्म्मुक्तं तत्परत्वेन. निर्म्मलं ।
हृषीकेण हृषीकेशसेवनं भक्तिरुच्यते ॥ १५ ॥

परस्पर का परस्पर में प्रवेश तथा निर्गमन के कारण वास्तविक कोइ विरो नहीं है ॥ १० ॥ इस ग्रन्थ में प्रेम, भक्ति, तथा रसानुगत पांच उल्ल हैं ॥ ११ ॥ श्रीकृष्णस्वरूप में इन्द्रिय तथा देह की जो वृत्ति (व्यवसाय वही भक्ति है । वही भक्ति ऐश्वर्य्यादिकषट्गुण से युक्त श्रीकृष्ण में होने गुणात्मिका कही जाती है ॥ १२ ॥ ऐश्वर्य्यादि गुण समूह "पट शुक्लता की तरह" श्रीकृष्ण में तादात्म भावसे रहते हैं । वे सब कि स्वरूपात्मिका नहीं हैं। स्वरूपात्मिक होने से श्रीकृष्ण भगवान् ए पृथक् प्रयोग नहीं होता । क्यों कि कृष्णस्वरूप से कृष्ण अभेद है

स्वरूप स्वीकार करने पर पटके साथ तादात्म प्राप्त शुक्लादि गुणों के अभिभव की तरह ज्ञानैश्वर्य्यादि का अभिभव न होना चाहिये । "वन में श्रीकृष्ण व्याकुल होकर सखा गोवत्सों को ढूंढने लगे' इहां पर श्रीकृष्ण

बृहद्गौतमीये- पूर्णाहंतामयी भक्तिस्तूर्यातिता निगद्यते ।१६॥
नच ज्ञानिकर्म्मिकंसादिष्वतिप्रसक्तिरिति वाच्यं तेषां स्वरुपमात्र-
निष्ठत्वाभावात् ब्रह्मफलदात् विष्णुरूपनिष्ठत्वाच्चोपांत्रगुणत्वात्।
तदुक्तं विष्णुपुराणे-शक्तयो यत्र देवस्य ब्रह्मविष्णु शिवात्मिकाः।
भवन्त्यभूतपूर्वस्य तद्विष्णोः परमं पदम् ॥ १७ ॥

ऐश्वर्य्यज्ञानादि की पराभवता देखने में आयी है। जैसे अपनी पत्नी के भाव से दिग्विजयी का एश्वर्य्यादिक ढक जाते हैं किन्तु उससे दूर नहीं होते हैं ऐसे श्रीकृष्णमें माधुर्य्यादिभाव द्वारा ऐश्वर्य्यादिक ढक जाते हैं इहां सूर्य्य तेज से अग्निकण का तेज और हिरण्यकशिपु के तप से सूर्य्य तेज ढक जाने का सदृश ऐश्वर्य्यादिक का पराभव मात्र जानना ॥ १३ ॥ भागवत के तृतीयस्कन्ध में कपिलोपाख्यान में—वेदविहित समस्त कर्म्म करलेनेवाली देवताओं की सत्वमूर्ति श्रीहरि के प्रति स्वभाविक जो वृत्ति है वह कारणरहित भगवत सम्बन्धी भक्ति है और यह मुक्ति से बडी है। जठराग्नि जिस प्रकार भुक्त द्रव्यों को पचाती है इस प्रकार भक्ति कारणमय कोश को भी नाश कर देती है। मेरे गुणों के श्रवणमात्र से सर्वान्तर्य्यामी मुझ में समुद्र के लिये जानेवाले गंगा प्रवाह के समान मन की जो अनवच्छिन्न गती है वह निर्गुणभक्ति है। १४

नारदपञ्चरात्र में कहा है कि—समस्त उपाधिसे विनिर्मुक्त होकर तत्परायण शुद्ध भाव से इन्द्रियसमूह द्वारा हृषीकेश भगवान की सेवा भक्ति है ॥ १५ ॥ भक्ति परिपूर्ण ममतासे युक्त,और गुणातीतहै ऐसी बृहद्गौतमकी उक्ति है ॥ १६ ॥ ज्ञानि कर्म्मि और कंसादिदैत्यों में भक्ति थी

निष्कलं ब्रह्मापि श्रीकृष्णविभूतिः। तथा च ब्रह्मसंहितायामादि पुरुष रहस्य स्तुतौ— यस्य प्रभा प्रभवतो जगदण्डकोटिकोटिष्व-शेषवसुधादिविभूति भिन्नं। तद्ब्रह्म निष्कलमनन्तमशेषभूतं गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥ यस्यैकनिश्वसितकालमथाव-लम्ब्य जीवन्ति लोमविलजा जगदण्डनाथाः। विष्णु र्महान्स एव यस्य कलाविशेषो गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि॥

अथ श्री भागवते— सर्गेतपोहऽमृषयो नव ये प्रजेशाः स्थाने च धर्म मखमन्वमरावनीशां। अन्ते त्वधर्महरमन्युवशासुराद्या माया विभूतय इमाः पुरुशक्ति भाजः॥

इति ततश्च देवत्वेन प्रसिद्धो विष्णुरसुरविषयः कर्म्मिणां फलदाता सत्व-प्रधानो विष्णुः ज्ञानिनां किरणस्थायीयं ब्रह्मेत्याद्यूह्यं॥१८॥

ऐसा नहीं कह सकते हो। क्यों कि उन सब में स्वरूपनिष्ठा नहीं थी, ब्रह्म प्राप्ति और विष्णुरुप में निष्ठा के कारण वह सब गुणामयी भक्ति जानना। विष्णुपुराण में कहाहै–ब्रह्मा, विष्णु महेश्वर प्रभृति शक्तिसमूह भगवान् विष्णु के परम पद है॥ १७॥ निर्गुणब्रह्म भी श्रीकृष्ण की विभूति है। ब्रह्मसंहिता के आदिपुरुषरहस्यस्तुति में कहा है। कलारहित अनन्त अशेषभूतस्वरूप, अनन्तब्रह्माण्डविभूती से भिन्न ब्रह्म प्रभावशाली जिस गोविन्द की प्रभा है उस आदि पुरुष गोविन्द को हम भजन करते हैं। जिस महाविष्णु के निश्वास समय को लेकर ब्रह्मा के साथ अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड स्थित है वह महाविष्णु जिस गोविन्द का अंश व कलाविशेष है उस आदिपुरुष गोविन्द को हम भजन करते हैं। भागवत में भी ऐसा कहा है।

यत्र तु भक्त्या मोक्षः श्रूयते तत्र तु भक्तेर्वहिरंगान्मोक्ष इति ज्ञेयमन्यथा भक्ते नित्यत्वव्याघातः कुत्रचित्पापहारित्वं कुत्रचित्प्रारब्धहारित्वादिकं तु भक्त्यंगादेव तथाहि षष्ठे। स्तेनः सुरापो मित्रध्रुग्ब्रह्महा गुरुतल्पगः

स्त्रीराजपितृगोहन्ता ये च पातकिनोऽपरे।

सर्वेषामप्यघवतामिदमेव सुनिष्कृतं

नामव्याहरणं विष्णोर्यतस्तद्विषया मतिः इत्यादौ पापहारित्वं ॥

तृतीये—यन्नामधेयश्रवणानुकीर्त्तनाद्यत्प्रह्वणाद्यत्स्मरणादपि क्वचित्। श्वादोऽपि सद्यः शवनाय कल्पते कुतः पुरस्ते भगवन्नुदर्शनात् इत्यादौ प्रारब्धहारित्वं ॥ १९

देवता करके प्रसिद्ध विष्णु असुरविषयक, कर्म्मियों के फलदाता सत्वप्रधान विष्णु कर्म्मविषयक, किरणस्थानीय ब्रह्म ज्ञानिविषयक जानना ॥ १८ ॥

"भक्ति से मोक्ष होता है" जहां एसा शुनने में आता है वहां वहिरंगा भक्ति से जानना, नहीं तो भक्ति के नित्यत्व की हानि होती है। कहां "पापहारित्व" कहां "प्रारब्धहारित्वा" दिक जो कहाँ है सो भक्ति के अंग से जानना। प्रेम प्राप्ति ही भक्ति का स्वरुप है। श्रीमद्भागवत के तृतियस्कन्ध में कहा कि स्वर्णस्तेयी सुरापानवाले, मित्रद्रोही, ब्रह्महत्याकारी, गुरुतल्पगामी स्त्रीहन्ता, राजहन्ता, पितृहन्ता, गोहन्ता, प्रभृति समस्त पापकारियों का भगवान् के नामोच्चारण करना ही परमनिष्कृति है क्योंकि भगवान् के नामोच्चारण से भगवद्विषयक मती होती है। ईहाँ पापहारित्व जानना। तृतीय स्कन्ध में कहा है जिनके नाम का स्मरण कीर्त्तन, श्रवणादि से श्वान भक्षक भी यज्ञ के योग्य होता है एसा आपका दर्शन का फल क्या कहेना है। इहाँ प्रारब्ध हारित्व है ॥ १९ ॥

ततश्चायमर्थः रसज्ञभक्तोपदेशं विना भक्तेरसंभवात् स्मार्त्तोपदेष्ट-मन्त्रजपादिना च प्रवाहापन्ननामोच्चारणादिना वा प्रवाहापन्नतया भक्त्यंगत्वेन प्रतीयमानेन मोक्षादिः । रसभक्त्यंशाधिकारे तु मोक्षादौ हेयतैव । तदुक्तं श्री भागवते । "नारायणपराः सर्वे न कुतश्चन बिभ्यति । स्वर्गापवर्गनरकेष्वपि तुल्यार्थदर्शिनः

शुद्धभक्त्यधिकारे हि भीहेतुः कोऽपि न स्मृतः ।
अतः साधनभक्तौ हि भयाभावः समीरितः ।
सुखमोक्षादिहेतुत्वं ज्ञानहेतुत्वमेव वा ।
भक्तेः साधनरूपायाः न सिद्धायाः कदाचन ।

तथाहि तन्त्रे ।—सिद्धयः परमाश्चर्य्याः भुक्तिमुक्तिश्च शाश्वती
नित्यंच परमानन्दो भवेद्गोविन्दभक्तितः
हरिभक्ति सुधोदये ।—भूयोऽपि याचे देवेश त्वयि भक्तिर्दृढास्तु मे
या मोक्षान्तचतुर्वर्गफलदा सुखदा लतेत्यादौ
तु सर्वसुखात्मकं विवर्जितं ननु हेतुत्वं भक्तेरानन्द रूपत्वात् ॥ २० ॥

भाव यह है कि रसज्ञ भक्त के उपदेश विना भक्ति का होना असम्भव है स्मार्त्त द्वारा उपदिष्ट मन्त्रजपादि तथा धारावाहिक नाम उच्चारणादिओं से भक्ति अंग प्रतीयमानपूर्वक मोक्षादि होते हैं । किन्तु रस भक्ति अधिकार में मोक्षादिको हेयता जानना । भागवत में कहा है नारायण परायण कहीं भी भय नहींकरते हैं । स्वर्ग नरक और मुक्ति आदिक में समान पात्र देखते हैं । शुद्धभक्ति अधिकार में भय का लेशनहीं है जहाँ मोक्षादि तथा ज्ञानादिकों का कारण भक्ति बतलाया है वहाँ साधन रूपा भक्ति को जानना । हरिभक्ति सुधोदयादिक ग्रन्थों में भक्तिका सुखात्मक रूप बतलाया किन्तु हेतुत्व नहीं बतलाया है क्योंकि कारण भक्ति हेतुरूपा नहीं है ॥ २० ॥

सा भक्तिरसशास्त्राभ्यां द्विधैव परिकीर्त्तिता।
रसज्ञभक्तकृपया सखण्डाऽखण्डतां व्रजेत् ॥

अयमभिसन्धिः। यद्यपि शास्त्रोक्तसाधनमुभयत्राप्यविशिष्टं तथापि शास्त्रबलेन साधनबुद्ध्या कृतं श्रवणादिकं मर्य्यादामार्गपर्य्यवसायि स्नेहेन क्रियमाणं रसपर्य्यवसायि। मर्य्यादामार्गसिद्धायामपि भक्तौ स्नेहेन क्षतिः, रसभक्तौ पूर्णः स्नेहः इतरत्र भक्त्यंशत्वात्स्नेहांशः। तत्र भक्तिव्यवहारेपि न क्षतिश्चन्द्रकिरणवत्

अंशप्राप्तिश्चकोरस्य चन्द्रप्राप्तिर्यथोच्यते।
तद्वद्भक्तिस्वरूपं हि सुज्ञेयं रसवर्त्मगैः।
रसरूपा तु या भक्ति सा षोढा परिकीर्त्तिता।
एकैव रतिरूपा तु षडंगत्वेनं चांगिता ॥

वही भक्ति रसरूप, तथा शास्त्ररूप से दो प्रकार है। खण्ड खण्ड प्रतीयमान होने से भी रसज्ञभक्त कृपा से अखण्ड भाव धारण करती है। दोनों में शास्त्रोक्त साधन कार्य यद्यपि कोई विशेष नहीं तो भी शास्त्र बल से साधन बुद्धि द्वारा किये हुए श्रवणादिक मर्य्यादामार्ग पर्य्यवसायि, तथा केवल स्नेह से कि भक्ति रसभक्ति पर्य्यवसायि है। मर्य्यादा मार्ग में स्नेह की हानि हुई तथा रसमार्ग में स्नेह की परिपूर्णता है। मर्य्यादा मार्ग में भक्ति का अंशों रहने के कारण स्नेहांश है। किरण प्राप्त चकोर चन्द्रप्राप्ति की तरह भक्ति का अंश होने से भी भक्ति का कहने में कोई क्षति नहीं है। रसरूपा भक्ति के भाव मान, प्रणय, स्नेह, राग, अनुराग, करके षट् भेद हैं जैसे अंकुर, पल्लव, कलिका

भावो मानः प्रणयः स्नेहो रागोऽनुरागइत्युक्ता।
अङ्कुर-पल्लव-कलिका-प्रसून-फल-भोगभागियं क्रमशः॥
भावादीनां लक्षणं वक्ष्ये ॥ २१ ॥

उत्पत्तौ रसरूपायाः कीर्त्तनश्रवणादयः।
साधनानि विनिर्दिष्टाः पश्चाच्चेदनुभावकाः॥
शास्त्रोक्तसाधनैर्या तु सा भक्तिर्नवधा मता।
तेषां तु फलरूपो हि भगवानेव कीर्त्तितः॥
तस्यापि फलरूपो हि श्रवणादिस्तथेदितः।
एवं चक्र-भ्रमिन्यायात्फलत्वं भक्तिकृष्णयोः॥
भक्तेस्तु रसरूपिण्या भगवानंगतां गतः।
तथैव व्रजवासिन्य इत्येवं परमार्थता॥
विभावैरनुभावैश्च सात्त्विकैर्व्यभिचारिभिः।
विषयैः परिचारैश्च कृष्णोऽपि रतिमाप्नुयात्॥

पुष्प, फल, पक्केफल हैं। रसरूपा भक्ति रति तथा अंगि नाम से ख्यात है। जैसे बीज है। भावादि षट् अंग हैं। जैसे बीज का अकुंरादिक है ॥ २१ ॥

रसरूपाभक्ति के उत्पन्न होने में कीर्तन श्रवणादि जो जो साधन बताया है पीछे यह साधनादि अनुभाव नाम से कथित होते हैं। शास्त्रोक्त साधन के नव भेद हैं तथा सब के फल रूप भगवान है। और भगवान के ही फलरूप ही कीर्त्तनादिक हैं। इस तरह चक्र भ्रमण न्याय से भक्ति, कृष्ण दोनों की परस्पर फलरूपता है। रसरूपा भक्ति के भगवान्, तथा व्रजवासी, अंगता को प्राप्त होते हैं। विभाव, अनुभाव, व्यभिचारिभाव तथा विषय और परिकरों का द्वारा श्रीकृष्ण रति को प्राप्त होते हैं। द्वादश प्रकार भेद प्राप्त भक्तों

अयुतत्वयुतत्वाभ्यां भक्तद्वादशभेदगैः ।

श्रवणाद्यैस्तु कृष्णेन रस आस्वाद्यते तथा ॥ २२ ॥

इदमत्र तत्वं द्वादशांगवान् भक्तिः स······संश्रवणादिभिः श्रीकृष्ण-प्रियवर्गाविनुभवतः । तत्र प्रियवर्गो द्वादश भेदगः श्रीकृष्णस्येकः श्रवणादिकं नवधा, एतत्सर्वं संयुक्तवियुक्ताभ्यां द्विविधं । तत-श्चायमर्थः । भक्तवर्गो द्वादशभेदगोऽपि संयुक्तवियुक्ताभ्यां चतुर्वि-शति भेदगः । तन्निष्ठं श्रवणादिकमपि द्विविधं । ततश्च षोडशा धिकद्विशत् भेदवान्भक्तवर्गः भक्तिरसमनुभवति । संयुक्तवि-युक्ताभ्यां श्रवणादिर्द्विविधाश्रीकृष्णोऽपि द्विधा, ततः षट्त्रिंश-द्भेदवान् श्रीकृष्णो रसमनु भवतीति श्रीभागवतसेवनद्वारा रसज्ञ-गुरोः प्रसादात्ज्ञेयम् ॥ तथाहि "जनन्युपहृतं प्राश्य विना रामेण गाः कृष्णामि"ति च, "यदि दूरं गतः कृष्ण" इति, "अटति यद्भ-

---

के द्वारा श्रवणादि अनुभाव से श्रीकृष्ण द्वारा रस आस्वादन होता है ॥ २२ ॥

द्वादश अंगमय भक्ति रस है इसलिये भक्तवर्ग भी द्वादश प्रकार हैं–संयुक्त वियुक्त मे २४ प्रकार तथा श्रवणादि नवधा भक्ति से गुणने से २१६ प्रकार भक्तों का भेद हैं । श्रवणादिक ६ संयुक्तवियुक्त से गुणने से १८, फीर संयुक्तवियुक्त से द्विधा भेद प्राप्त श्रीकृष्ण गुणा होकर ३६ प्रकार हैं । २१६ प्रकार भक्त वर्ग तथा ३६ प्रकार भेद प्राप्त श्रीकृष्ण भक्ति रस को अनुभव करते हैं । यह तत्व श्रीभागवत सेवन द्वारा रसज्ञ गुरु की कृपा से जाना जाता है ॥ "जननी भेजे हुये अन्नादिक भोजन कर विना राम से गौओं को यमुना की तरफ लिये है" "यदि श्रीकृष्ण दूर के लिये गये "आप दिवस में जो वन में भ्रमण करते हो" "मुकुन्दमुखपद्यमधु पान"

वानन्दि कानन-मि''ति "पीत्वा मुकुन्दमुखसारघ" मित्यादिश्रवणादिद्वारैरेवोपलक्षणमन्यथा द्यूतचौर्य्य-लगुडालगुडि-मुष्टामुष्टिद्वन्द्वयुद्धशिक्षया ताडनबन्धनादि-जयपराजयादिना रसास्वादो नस्यात्। अत्र बहवो भेदा रसविवरणे ज्ञेयाः ॥ २३ ॥

इदानीं-शास्त्र-साधनरूपा भक्ति निरूप्यते। तथाहि-

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनं।
अर्च्चनं वंदनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनमिति।
भक्तिसम्बन्धसंसर्गिशब्दस्य श्रवणं श्रुतिः॥
तदेव शास्त्रदृष्ट्या चेन्मर्य्यादामार्ग इरितं।
रसरूपफलोद्देशात् रसमार्गीयतां व्रजेत् ॥

तथाहि यथादेवदत्तशब्दश्रवणं तद्वैरिमित्रादिषु भिन्नरसप्रापकं तथा प्रकृतेऽपि। यद्यपि श्रवणे भेदो नास्ति तथापि कर्म्मज्ञानदैरवस्तु रसभेदजनकं ततश्चायमर्थः। भक्तिसम्बन्धित्वेन साक्षात्परम्परया वा संसर्गवाचकतस्य श-

---

करके" इत्यादि जानना। श्रवणादि द्वारा यहां उपलक्षण मात्र है नहीं तो द्यूतचौर्य्य, लगुडालगुडि, गुथागुथि, परस्पर युद्ध शिक्षादिक के समय ताडन बन्धनादि तथा जय पराजयादि द्वारा रस आस्वाद नहीं होता। रस प्रकरण में बहु भेद कहे हुए हैं। ॥ २३ ॥

शास्त्रसाधनरूपा भक्ति, श्रवण, कीर्त्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्च्चन, वन्दन, दास्य, सख्य, आत्मनिवेदन ६ प्रकार की है। भक्ति सम्बन्ध संसर्गी शब्द का सुनना ही श्रवण है। शास्त्रदृष्टि पूर्वक होने से मर्य्यादामार्ग, तथा रसरूप और फल के उद्देश्य से होने पर रस मार्ग हो जाता है। जैसे देवदत्त

ब्दस्य श्रवणमिति लक्षणार्थः ततश्च भक्त्युत्कर्षज्ञापकत्वेन वा वैराग्यद्वारा द्वेषद्वारा भक्तिजनकत्वेन ज्ञानिज्ञानकर्मतन्निष्ठवैरिवैरनरकश्रवणेऽपि न व्यभिचारः अतएव श्रीभागवते शब्दस्य श्रवणे श्रवणमेव । संमुग्धश्रवणेनावान्तरफलेऽपि भगवत्प्राप्तिः फलं ज्ञेयं । तथा श्री भागवते ॥ २४ ॥

श्रुतः संकीर्त्तितो ध्यातः पूजितश्चादृतोऽपिवा ।
नृणां धुनोति भगवान्हृत्स्थो .... ॥
शृण्वन्ति गायन्ति गृणान्त्यभीक्ष्णशः
स्मरन्ति नन्दन्ति तवेहितं जनाः ।
त एव पश्यंत्यचिरेण तावकं
भवप्रवाहो परमं पदाम्बुजम् ॥

शास्त्रेण श्रवणं यथा —

तस्माद्भारत सर्वात्मा हृदि सर्वत्र सर्वदा ।
श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च ध्येयः पूज्यश्च नित्यदा ॥

शब्द सुनने पर शत्रु में विरसताभाव, तथा मित्र में हर्षभाव आता है। यद्यपि श्रवण में कोई भेद नहीं है तथापि कर्म्मवान्, ज्ञानवान्, वैरवान् प्रभृति भेदसे भिन्न भाव को धारण करता है। कर्म्मि ज्ञानी तथा वैरायों में श्रवणरूपा भक्ति उच्च नीच भाव प्राप्त होने से भी व्यभीचारी नहीं है । इसलिये श्रीभागवत में कहा है सब को सुनने में श्रवण है। मुग्ध होकर सुनने में अवान्तर फल होने से भी भगवत्प्राप्ति ही फल है ॥ २४ ॥

श्रोत्रेण नामग्रहणं श्रवणं, नामोच्चारणं कीर्तनं, स्वरूपादेः स्मृतिः स्मरणं, श्रीकृष्णपादसेवनं पादसेवनं, श्रीकृष्णपूजनमर्चनं, नतिः वन्दनं, दास्यं श्रीकृष्णे कर्मार्पणं, सख्यं श्रीकृष्णे विश्वास, आत्मसमर्पणं देहसमर्पणं विक्रीतपशुवत् एतत् सर्वं भक्तिरसानभिज्ञं प्रति प्रवर्त्तकतया प्रवाहाग्न्नं। वस्तुतस्तु भक्तिरसस्थायिन उभयत्र समत्वादुभयेष्वेव सात्त्विकानुभावादयो वक्तव्या स्तदर्थमनुगतिरुच्यते। भगवद्भक्तयोरुत्कर्षज्ञापकविषयशब्दस्य ग्रहणं श्रवणं। अतएव कालयवनजरासन्धादितः श्रीकृष्णस्य पलायनं गालिप्रदानादेः भृगुताडनस्य श्रवणेऽपि न व्यभिचारः। शिवभीमयोः स्वस्य चोत्कर्षात् एवं चैद्यपौण्ड्रकादिष्वपि ज्ञेयं। भक्तिसंसर्गी शब्दोच्चारणं कीर्त्तनं भक्तिसंसर्गी

कर्णद्वारा नाम ग्रहण श्रवण, नाम उच्चारण कीर्तन, स्वरूपादि स्मृति स्मरण, कृष्णचरण सेवा ही पाद सेवन, श्रीकृष्णपूजा अर्च्चन, नमस्कार वन्दना, श्रीकृष्ण में कर्म का अर्पण दास्य, श्रीकृष्ण में विश्वास सख्य विक्रीत पशु की तरह देह समर्पण आत्म समर्पण है। यह सब भक्तिरस अनभिज्ञ से प्रवर्तन होने से प्रवाहागत है। वास्तविक मर्यादा तथा रसज्ञ के उभयस्थल में भक्तिरस-स्थायिकी समता होने से उभयस्थान में सात्त्विक अनुभावादि बोलना चाहिये। भगवान् तथा भक्तों का उत्कर्षज्ञापक शब्द ग्रहण श्रवण है। इसलिये कालयवन तथा जरासन्ध से कृष्ण का भागना एवं गाली सुनना और भृगु कर्तृक आघात आदि सुनने से भी भक्ति व्यभिचार नहीं है। एवं शिशुपाल, तथा पौण्ड्रकादि का भी जानना शिवजी तथा भीमसेन का भक्त उत्कर्ष जानना।

स्मृतिः स्मरणं भगवद्भक्तपादसेवनं सेवनं । तदान्यदपि ।
इदं तु रहस्यं रसज्ञभक्तकृपया ज्ञेयं ॥ १५ ॥

आत्म-मात्राधिकारित्वं भक्तौ सर्व्वत्र गम्यते ।
यत्रान्यनिष्ठा दृश्येत तत्रैवापोह्यते स्वतः ॥

तदुक्तं सप्तमे—

नृणामयं परोधर्म्मः सर्वेषां समुदाहृतः ।
त्रिंशल्लक्षणवान् राजन् सर्वात्मा येन तुष्यति ॥

काशी खण्डे—

अन्त्यजा अपि तद्राष्ट्रे शंखचक्रांकधारिणः ।
संप्राप्य वैष्णवीं दीक्षां दीक्षिता इव संबभुरिति ॥

श्री गीतोक्ता अपि—

आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभेति ॥
गजेन्द्र मैत्रेय ध्रुव सनकाद्याः
साधनेषुप्रवृत्तो यो दृश्यते ह्यसमञ्जसः ।
तस्मिन्न दोषधीः कार्य्या यतः कृष्णात्तु रक्षिता ॥

भक्ति संसर्गि शब्दों का उच्चारण कीर्तन, भक्ति संसर्गि स्मृति स्मरण, इत्यादि जानना । रसज्ञ भक्त कृपा से यह रहस्य जाना जाता है भक्ति में प्राणिमात्र का अधिकार जानना । सप्तम में कहा है मनुष्यमात्र का यह परम धर्म है । काशीखण्ड में भी-चण्डाल भी उस महाराज के राज्य में शंख चक्रादिक वैष्णवचिन्ह धारण करते थे । गीता में भी आर्त, जिज्ञासु, धनार्थी तथा ज्ञानी चार प्रकार भक्त कहे हैं । यथा गजेन्द्र मैत्रेय ध्रुव

उक्तं च प्रथमे—यदधर्मकृतं स्थानं सूचकस्यापि तद्भवेत्।
तथा नृसिंहपुराणे—

भगवति नृहरावनन्यचेता भृशमलिनोऽपि विराजते मनुष्यः।
नहि शशकलुषच्छविः कदाचित्तिमिरपराभवतामुपैति चन्द्रः॥

एकादशे—

स्वपादमूलं भजतः प्रियस्य त्यक्तान्यभावस्य हरिः परेशः।
विकर्म यच्चोत्पतितं कथंचिद्धुनोति सर्वं हृदि संनिविष्टः॥ इति

प्रेमाकांक्षी नरो यस्तु साधनेषु प्रवर्तते।
साधनाकरणे दोषस्तस्य न कर्मणाम्॥

तदुक्तमेकादशे—

देवर्षिभूताप्तनृणां पितॄणां न किंकरो नायमृणी च राजन्।
सर्वात्मना यः शरणं शरण्यं गतो मुकुन्दं परिहृत्य कर्तम्॥

तथा गीतासु—सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥

ततश्च भक्त्यंगाकरणात् प्रत्यवायो भक्तानां न तु नैमित्तिकरणात् त्र

सनकादि है हरिभक्तों में कोई असमञ्जस न देखे। कारण श्रीकृष्णद्वारा सब रक्षित है। अधर्म पहिले से ही मालूम होजाता है प्रथमस्कन्धकी उक्ति है नृसिंहपुराण में भी कहा है। भगवान् नृसिंह में जो अनन्यभाव रखते हैं उनमें कोई दोष न देखें। कारण चन्द्रमा कलंकयुक्त होने पर भी जगत का उपकारक है। सब परित्यागपूर्वक भगवानका चरण जो भजन करता है उनमें यदि कोई अनर्थ आता है भगवान हृदय में प्रवेश पूर्वक अनर्थको नाश करते हैं। प्रेमीभक्त साधन में प्रवृत्त होकर साधनादि करे। यदि कर्म नहीं बने तब कोई दोष नहीं है। कारण भक्तिके अङ्गसमूह न करने में प्रत्यवाय है किन्तु नैमित्तिकादि न करने नहीं है कहा है सर्वस्व परित्यपूर्वक प्रभुशरण में जो आया है उसको देवर्षि भूत, देवता, मनुष्य पित्रोंका किङ्कर न समझे। गीता में कहा है जो सब परित्यागपूर्वक मेरी शरण आता है मैं उसके सब पाप नाश करता हूँ॥२६॥

अथ भगवद्भक्तिसाधनानि श्रीभागवत प्रोक्तानि ।

श्रीभागवतसंप्रोक्तसाधनैर्भक्तिमाप्नुयात् ।
रसरूपां ततोऽन्यैश्च सामान्यां समतां गताम् ॥

सा च पादसेवनमात्रपर्य्यवसायिनो भक्त मात्र एकरूपा, रसरूपा तु विचित्रा, वत्सलादिना परस्परसापेक्षोभयप्रधाना ॥ २७ ॥

अथसाधनानि—गुरूपसत्तिस्तत्सेवा भगवद्धर्म्मशिक्षणं ।
भगवद्व्रतस्य करणं तच्चिन्हविधृतिस्तथा ॥
भगवत्स्थानवासश्च यावदर्थपरिग्रहः ।
महाप्रसादस्वीकारो महोत्सवकृतिस्तथा ॥
श्रीभागवतपूजा च श्रवण च विधानतः ।
दानादीनां विवेकश्च भक्तानां पूजनं तथा ॥
श्रवणं कीर्त्तनं चैव स्मरणं पादसेवनं ।
अर्च्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनं ॥
अभक्तान्नस्य संत्यागः कर्मत्यागस्तथैवच ।
अभक्तसंगोपन्नैव त्याज्यो ह्यन्तर्वहिस्तथा ॥

भक्ति के साधन समूह श्रीभागवत में कहे हुए हैं । श्रीभागवत में कही हुई साधनाओं से भक्ति होती है । किन्तु रसरूपा भक्ति, बिना साधन से होती है, यह जानना । पादसेवन मात्र पर्य्यवसायी भक्ति एकरूपा है । रसरूपा भक्ति विचित्र तथा वत्सलादि द्वारा परस्पर सापेक्ष उभय प्रधानात्मिका है ॥ २७ ॥

गुरु शरणागति, गुरुसेवा, भगवद्धर्म्मसीखना, भगवद्व्रतकरना, भक्तिचिन्ह धारण, भगवत्स्थान में वास, यावत्प्रयोजन परिग्रह,

इत्थंभूतानि चान्यानि नृत्यादीनि गुरुक्तितः ।
भक्तीप्सुना तु शिष्येण ज्ञातव्यानि विधानतः ॥ २८ ॥
यत्तु-सर्वत्रात्मेश्वरान्वीक्षा सर्वभूतेषु मन्मतिः ।
तत्रापि कोऽपि भक्तः स्यादितिदोषनिवारणम् ॥

अयमर्थः सर्वत्रात्मान्वीक्षां अन्तर्यामितया ईश्वर न्वीक्षां नियन्तृत्वेन कुर्यात् । ततश्च "अन्नं ब्रह्मेत्युपासीतेत्यादि" प्रतीकोपासनवत् फलं वक्तव्यं । यत्तु वैष्णवापराधराहित्यमेव, भविष्यवैष्णव ध्रुवापराधस्योत्तमे स्वीकृतत्वात् । तदुक्तमेकादशस्कन्धेः—

नरेष्वभीक्ष्णं मद्भावं पुंसो भावयतो चिरात् ।
स्पर्द्धासूयातिरस्काराः साहंकारा वियन्तिहि ॥

भक्तेन तु याथार्थ्यमेव ग्राह्यं न स्वारोपितं यथा सप्तमे ।—

तेष्वेव भगवान् राजं स्तारतम्येन वर्त्तते ।
तस्मात्पात्रं हि पुरुषो यावनात्मा यथेयते ॥
तस्माद्यत्र यत्र भक्तेराधिक्यं तत्र तत्र श्रेष्ठत्वमिति ॥२९॥

महाप्रसाद ग्रहण, महोत्सव करना, श्रीभागवत पूजा, विधिपूर्वक भागवतश्रवण, श्रेष्ठभक्तों में द्रव्यादि दान, भक्त पूजा, श्रवण, कीर्त्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन वन्दन, दास्य, सख्य, आत्मनिवेदन, अभक्त-अन्न-त्याग, यज्ञादिकर्म्म त्याग, अभक्तसंग त्याग, प्रभृति साधन समूह भक्ति इच्छुक शिष्य गुरुवाक्य से जानें॥२८॥

सर्वत्र आत्मा वा ईश्वर देखना और सर्वभूतों में मेरी बुद्धि रखना कोई भक्त होता है अतः सर्वदेशी न होने का कारण उसका दोष निवारण हो जाता है। सर्वत्र आत्माभाव, भगवान

अथगुरुपसत्तिः।—भक्तिर्भक्ताश्रया यस्मात्तस्माद्भक्तं गुरुंश्रयेत्।

तदुक्तं पाद्मे।—"अवैष्णवोपदिष्टेन मन्त्रेण नरकं व्रजेत्"।

श्रीभागवते। —"कर्म्माण्यारम्भमाणाना" मित्यादिना वैराग्या-

प्तिमके विवेके सत्यपि न फलप्राप्तिः।

तस्माद्गुरुं प्रपद्येत् जिज्ञासुः श्रेय उत्तमं।

शाब्दे परे च निष्णातं ब्रह्मण्युपशमाश्रये ॥३०॥

गुरुसेवा —दशमे। "एतदेवहि सच्छिष्यैः कर्त्तव्यं गुरुनिः कृते।
यद्वै विशुद्धभावेन सर्वार्थात्मार्पणं गुरौ॥" इति।

आचार्य्यं मां विजानीयान्नावमन्येत कर्हिचित्।

न मर्त्यबुद्ध्याऽसूयेत सर्वदेवमयो गुरुः॥

का "अन्तर्यामित्व" कारण से तथा ईश्वरभाव "नियन्तृत्व" कारण से जानना। "अन्न ब्रह्म की उपासना करें" यहाँ प्रतीक उपासना की तरह फल कहा है। एकादश में कहा है कि—मनुष्यों में निरन्तर मेरा भाव देखने वाला पुरुष का अहंकार के साथ स्पर्द्धा असूया प्रभृति विलीन हो जाता है। यहाँ वैष्णव अपराध राहित्य से जानना। भक्त किन्तु यथार्थ भाव को ग्रहण करता है। सप्तम में कहा है कि—उन्हों में भगवान् तारतम्य भाव से रहते हैं। जहाँ जहाँ भक्ति का आधिक्य वहाँ वहाँ श्रेष्ठत्व है॥ २९॥

भक्ति भक्त का आश्रय है इसलिये भक्तगुरु का आश्रय करें। पद्मपुराण में कहा है अवैष्णव से मन्त्र उपदेश करने से नरक होता है इसलिये विधिपूर्वक वैष्णव गुरु करें॥ ३०॥

भगवद्धर्म- यथा कृतेन कृत्येन भक्तिः स्यादिति शिक्षणं ।
शिक्षणं :— यथास्थानं तु सेवार्थे भक्तस्यान्यस्य कर्म्मणि ॥
व्रतकरणं :— भक्तस्त्वेकादशीं कुर्य्याच्छ्रवणद्वादशीं तथा ।
जन्माष्टमीं हि रामस्य नवमीं च चतुर्द्दशीं ॥
चिन्हविधृति:—येन चिन्हेन सेव्यस्य संबन्धो ज्ञाप्यते नृषु ।
तच्चिन्हंधारणं ज्ञेयं ब्रह्मचारी च सर्वदा ॥
तदुक्तं पाद्मे:—द्विविधं वैष्णवं प्रोक्तं वाह्यमाभ्यन्तरं तथा ।
शंखचक्रादिभिर्वाह्यमान्तरं वीतरागित्वेति ॥
भगवत्स्थान :—ये वसन्ति महाभागे मथुरामितरे जनाः ।
निवास :— तेऽपि यान्ति परां सिद्धिं मत्प्रसादान्न संशयः ॥
यावदर्थपरिग्रह:—यावता भक्तिर्निर्वाहं : स्वीकुर्य्यात्सर्वमेव तत् ।
तदुक्तंद्वितीये:--"अतःकविर्नामसु यावदर्थः स्यादप्रमत्तो व्यवसाय बुद्धिः ॥
एकादशे :— "दारान्गृहान्सुतान्प्राणान्यत्परस्मै निवेदयत् "।

श्रीदशम में कहा है सत् शिष्य अवश्य गुरु सेवा करें। विशुद्ध भाव से समस्त अर्थादिक, और आत्मा का अर्पण गुरु सेवा है।

आचार्य्य मेरा स्वरूप है गुरुको मनुष्य बुद्धि से कभी अनादर तथा असूया न करे कारण गुरु सकल-देवता स्वरूप है।

जिसके करने से भक्ति होती है "जैसे सेवा किम्बा अन्य कर्म्म में स्नानादिक" उस कार्य्य को सीखना भगवद्धर्म्म शिक्षण कहते हैं।

भक्त अवश्य एकादशी, श्रवणद्वादशी, जन्माष्टमी तथा राम नवमी, शिवचतुर्द्दशी प्रभृति व्रत करें ॥

महाप्रसादस्वीकारः ॥—निवेदितस्य चान्नादे भोगः स्वीकारइष्यते॥

महोत्सवकृतिः ॥— मधुमासे सितेपक्षे द्वादश्यां दमनोत्सवः।
आगमोक्तेन मार्गेण कुर्याद्भक्तो ह्यतन्द्रितः॥

दोलोत्सवः ॥— चैत्रे मासि सितेपक्षे दक्षिणाभिमुखं हरिम्।
दोलारूढं समभ्यर्च्य., तथा वसन्तादि

श्रीभागवतपूजा- वैष्णवानि तु शास्त्राणि योऽर्च्चयन्तिगृहे सदा।

स्कान्दे ॥— धन्यास्ते मानवा लोके विष्णुस्तेषां वरप्रदः॥

विधिना श्री- संहिताश्रवणं यत्तु फलरूपतया भवेत्।

भागवत श्रवणं।— तदेव श्रवणं मुख्यमन्यस्मिन्गौणता भवेत

जिस चिन्ह से "सेव्य प्रभुका" सम्बन्ध मनुष्यओं में जाना जाता है वह चिन्ह अवश्य धारण करें, पद्मपुराण में कहा है वाह्य तथा आभ्यन्तर वैष्णवों के दो भेद हैं। शंख चक्रादि चिन्हों से युक्त वाह्य तथा अनुराग से अन्तरंग है। मथुरा में वासकारी इतर व्यक्ति भी मेरी कृपा से परासिद्धि को प्राप्त होता है॥ द्रव्यादिक यावत् परिमाण ग्रहण करने में भक्ति का निर्वाह होय, उसका ग्रहण करना यावदर्थ परिग्रह है।

निवेदित अन्नादिक ग्रहण करना महाप्रसाद स्वीकार है। चैत्र मास शुक्लपक्ष द्वादशी में आगमोक्तविधि से आलस्य रहित होकर दमनोत्सव को करें। चैत्र मास शुक्ल पक्ष में दक्षिणाभिमुख दोलारूढ़ श्री हरि को अर्च्चन कर दोलावे। स्कन्द पुराण में कहा कि-जो लोक वैष्णव शास्त्र समूह की अर्च्चना करते हैं वे सब धन्य हैं। उन सब का विष्णु वरप्रदानकारी होते हैं।

कथायः श्रवणं ज्ञेयं कीर्त्तनं गुणकर्म्मणां ।
स्मरणं भगवद्रूपे पादयोः पादसेवनं ॥
अर्च्चनं न्यासपूर्वं हि षोडशोपकृतिर्यथा ।
अष्टांगैर्वन्दनं प्रोक्तं दास्यं कर्म्मार्पणं तथा ।
विश्वासास्पदता सख्यं देहदानं समर्पणं ॥

दानविवेकः ॥— स्वतः श्रेष्ठेषु भक्तेषु द्रव्यादीनां नियोजनं ।
एतद्द्वारेण भगवान्गृन्हात्येवेति निश्चयात् ।
एतद्दानविवेकः स्यात्यथा सत्पात्रनिर्णये ।
स्वतो हानेषु भक्तेषु द्रव्यादीनां समर्पणं ॥
तद्दानं हीनं विज्ञेयमभक्तेषु तु निष्फलं ॥
भक्तिपोषकत्वाभावात् ॥ ३३ ॥

अवैष्णवान्ननिषेधः— अवैष्णवानां पक्वान्नं पतितानां तथैवच ।
अनर्पितं तथा विष्णोः श्वमांससदृशं भवेत् ॥

फल रूप समझकर भागवतसंहिता श्रवण ही मुख्य श्रवण है अन्यत्र गौण है । कथा का श्रवण, गुण तथा कर्म का कीर्त्तन, रूप का स्मरण, दोनों पादों का पादसेवन, न्यासपूर्वक षोडश उपचारका अर्च्चन, अष्टांग से वन्दन कर्म का अर्पण दास्य, विश्वास योग्यता सख्य, देह का समर्पण आत्म- निवेदन है ॥ श्रेष्ठ भक्तों में द्रव्यादिकों के नियोजन से भगवान् अवश्य ग्रहण करते हैं ऐसा निश्चय दान विवेक है । हीन भक्तों में अर्पण हीन तथा निष्फल होता है ॥ ३३ ॥

अवैष्णव तथा पतितों का पक्वान्न और अनिवेदित वस्तु का ग्रहण श्वान मांस के बराबर जानना एसा पद्म पुराण में कहा है ।

कर्म्मत्याग- यदा यस्यानुगृन्हाति भगवानात्मभावितः ।
स जहाति मतिं लोके वेदे च परिनिष्ठिताम् ॥
तथा—ये त्यक्त लोक धर्म्माश्च मदर्थे तान् विभर्म्यहम् ॥

अभक्त संगत्याग।— अभक्तसंगो देहो त्थो वाचिको मानसस्तथा ।
त्रिविधोऽपि परित्याज्य भक्तिकामनया बुधैः ॥
कायिकः कायसम्बन्धात् वचसा भाषणात्मकः ।
अन्नादिना मानसस्तु परम्पर्योदूर्ध्ववदोषदः ॥

तदुक्तं पाद्मे ।— अवैष्णवास्तु ये विप्राश्चाण्डालादधमाः स्मृताः ।
तेषां संभाषणं स्पर्शा न्नपानादि विवर्जयेत् ॥ ३४ ॥

अथरसव-। रसांगानि ॥— रसज्ञोपसृतिः पूर्वः युगलस्वीकृतिस्ततः ।
तत्सेवा स्वार्पणेनैव रसमार्गस्य रक्षणं ॥

भगवान् जिसको जिस समय अनुग्रह करते हैं यह लौकिक तथा वैदिक निष्ठा को परित्याग करता है एसा श्रीमद्भागवत में कहा है। और भी कहा।— जो लोक मेरे लिये लोक, धर्म्मादिक परित्याग करते है में उनको पोषण करता हूँ। भक्तिइच्छुक देहोत्थ, वाचिक, मानसिक त्रिविध अभक्त संग परित्याग करे देह सम्बन्ध से दैहिक भाषणादिकों से वाचिक, अन्नादिकों से मानसिक जाने क्रम से उपर्युपरि अधिक दोषावह है। पद्मपुराण में कहा है अवैष्णव विप्र चण्डाल से भी अधम है। उसका संभाषण, स्पर्श, तथा अन्न पानादि परित्याग करे ॥ ३४ ॥

रसज्ञ अनुगमन, युगलस्वरूपस्वीकर, सर्वस्व अर्पण पूर्वक युगल सेवा, रसमार्गरक्षा, मथुरावास, रसिकजनों में आशक्ति, प्रियलोक

मधुरायसतिश्चैव रसिकाशक्तिरंगिना ।
युगलस्यैव सेवा च प्रियलोकस्य चान्वहं ॥
तुलसी यमुना श्रद्धा माला धूपस्तदीक्षणं ।
श्रीकृष्णनामविधृतिः श्रीभागवतसेवनं ॥
धर्म्मत्वेक्षावतारेषु तद्भक्तेषु तथैवच ।
शुष्केश्वरस्य हेयत्वं तदीयानां तथैवच ॥
जन्म कर्म्म गुणानां च श्रवणं कीर्त्तनं तथा ।
स्मरणं तद्विषयकं सेवनं पादसेवनं ॥
मधुरस्यानुकूलेन वस्तुनो यो ह्यलंकृतिः ।
तदेव ह्यर्चनं कृष्णे प्रियवर्गसमन्विते ॥
वन्दनं कार्य्यविषये नतु सर्वत्र युज्यते ।
दास्यं तु कर्म्मकरणं सख्यं मित्रत्वमीरितं ।
देहस्य भोग्यताप्राप्तिरिदं त्वात्मनिवेदनं ॥ ३५ ॥

के साथ युगल सेवा, तुलसीश्रद्धा, यमुनाश्रद्धा, माला, धूप, धूपदर्शन, श्रीकृष्णनाम धारण, श्रीभागवत सेवा, अवतारों में धर्म्मत्व दृष्टि, तद्भक्तों में धर्म्मत्व भाव, शुष्क ईश्वर का हेयत्व, तदुपासकों में भी हेयत्व भाव, रसमार्ग का अंग है। श्रीकृष्ण के जन्म कर्म्म तथा गुणों का श्रवण और कीर्त्तन, तद्विषयक स्मरण, पादसेवा सेवन, मधुररसानुकूल वस्तुद्वारा प्रियवर्ग के साथ, कृष्ण की अलंकृति अर्च्चन, कोई कार्य्य विशेष में वन्दन, कर्म्म करना दास्य, मित्रभावसख्यता, श्रीकृष्ण के लिये देह को भोग्यता प्राप्ति आत्म निवेदनादिक हैं ॥ ३५ ॥

तत्र रसज्ञोपसृतिः रसज्ञस्य गुरो रुपसत्तिरित्यर्थः। तथा श्री भागवते "मदभिज्ञं गुरुंशान्तमुपासीत मदात्मकमिति" मदभिज्ञ मिति स्वरुपज्ञमित्यर्थः। अथ च पाद्मवचनं। "वैरणवं शल्यवि मुखं वर्जयेत्ताद्दशं वुधः"।

युगल स्वीकृतिः।— कृष्णराधास्वरुपे च तन्मत्र तत्परिग्रहे।
मुख्यामुख्यसमत्वेऽपि न ह्येकस्यापि बिच्युतिः।
दृश्यते यत्र विच्छेद स्तत्र नैव स्वरुपभाक्

पाद्मे एकोनत्रिंशे — कुलजो वा तपस्वी वा वेदवेदांगपारगः।
यज्ञदानपरो वापि सर्वतीर्थोपसेवकः।
व्रती वा सत्यवादी वा यतिर्वा ज्ञानवानपि।
द्व्यधिकारी न भवेत्प्रयत्नेन विवर्जयेत्॥

अन्यत्रापि रामार्च्चनचन्द्रिकादौ जानकीमन्त्रादौ आवश्यकता।

गुरुसेवा।— गुरुसेवाकृतिभि कार्य्यात्मार्थसमर्पणैः॥ तदुक्तं

रसज्ञ गुरु के आश्रय रसज्ञापसृति है। भागवतमें कहा है "मदभिज्ञ, शान्त, मदात्मक गुरु की उपासना करे।" मदभिज्ञ मेरा स्वरूप जानने वारा है। श्री कृष्ण तथा श्री राधा स्वरूप में दोनो के मन्त्र तथा विग्रहादिक में, मुख्य गौण, किम्वा समता भाव से भी एक को परित्याग न करना युगल स्वीकार है।

पद्मपुराण में कहा है कुलज होय किम्वा तपस्वी, वेदवेदांगपारग, यज्ञदान पर, सर्वतीर्थ सेवक, व्रती, सत्यवादी, यती कोईभी हो दो पृथक् अधिकारी न बने। गुरुसेवा आत्मादि समर्पण पूर्वक जानना रामार्चनचन्द्रिका में कहा है शिष्य कृतकृत्य होकर गुरु के

रामार्च्चन चन्द्रिकायां।— कृत्यकृत्य स्तथा शिष्यः सर्वं तस्मै निवेदयेत्।
नोचेदर्द्धं तदर्द्धं वा तद्दशांशमथापि वा ॥ ३६ ॥

रसमार्गस्य शिक्षणं।— रसमार्गस्य शिक्षा च दशधा परिकीर्त्तिता।
स्नानं ध्यानं तथा धूपो दीपमारत्रिकं तथा।
भोग स्तीर्थस्य यात्रा च नामसेवा विवेचनं।
तथा प्रसादस्वीकारो भावेनैतत्समाचरेत् ॥

स्नानं।— नृत्यगोचारणादिभ्यः श्रमस्यपरिशान्तये।
श्रीकृष्णे स्नानपाद्यादि चरेत्स्वस्मिंश्चशुद्धये ॥

ध्य ।- स्वरूपक्रीड़योश्चैव चिन्तनं ध्यानमुच्यते।
तथा तत्परिवाराणां स्थानस्यापि विभागशः।
ध्यानं विलासविषयं प्रेमरूपं विभावयेत्।
सुखास्पर्शेऽपितद्रूपं सुखमेव विचिन्तयेत

धूपः।— धूपो ह्यगंस्य सुरभीकरणं विविधं मतं।
वस्त्रस्य, वस्तुनश्चापि परिवारस्य च स्फुटं ॥

लिये सर्वस्व निवेदन करे। अर्द्ध किम्बा तदर्द्ध अथच दशमांश भी अर्पण करे ॥ ३६ ॥

रसमार्ग की शिक्षा दस प्रकार की है:— स्नान, ध्यान, धूप, दीप, आरत्रिक, भोग, तीर्थयात्रा, नाम,सेवा,विवेचन, प्रसादस्वीकार है।

नृत्य तथा गोचारणादि कों से श्रमकी शान्ति के लिये श्रीकृष्ण का स्नान तथा पाद्यादि आचरण स्नान है। स्वरूप तथा क्रीडा का चिन्तन ध्यान है। कृष्ण परिवार और लीला स्थलादिक भी जानना। ध्यान विलासविषयक, तथा प्रेमरूप, एवं सुखमय है।

परिवारविषयः सुगन्धः आगमे "ताम्बुल शुद्धवदन" इति। "ताम्बुलपूरितानन" इति च श्रीकृष्णं सेवयेदिति शेषः। नहि शुद्धिं विना स्पर्शयोग्यतेति तात्पर्य्यं। द्वात्रिंशदपराधमध्ये तु ताम्बुलचर्वणं भोगविषयत्वेनापराधः ॥ ३७ ॥

दीप :— दीपस्य विनियोगोहि निर्म्मञ्छनतया मत :।

आरात्रिकं :— क्रूरदृष्टि निवृत्त्यर्थं निर्मञ्छणतया सह।
आरात्रिकमिदं, प्रोक्तं सर्वज्ञैरसवित्तमै :॥

भोग :— श्री कृष्णेणोपभुक्तस्य स्वीकृतीर्भोग उच्यते।
विषयानुरागी भक्तो यो गृहस्थावं करोति चेत्।
तद्व्रत्ते नैचभक्तित्वं न निवर्त्तकता मता ॥

श्रीकृष्ण तथा परिवार के अंग तथा वस्त्रादि-अन्य वस्तुओं का सुरभीकरण धूप है। आगम में कहा है "ताम्बुल से मुख शुद्धि करके" "ताम्बुल से पूर्ण वदन हो कर" श्रीकृष्ण की सेवा करे। विना शुद्धि से स्पर्श की योग्यता नहीं है। ३२ अपराध के बीच में ताम्बुल चर्व्वण का जो अपराध बताया है सो भोगाशक्ति के साथ जानना ॥ ३७ ॥

दीप का विनियोग निर्म्मञ्छनभाव जानना।

क्रूरदृष्टि (नजर) निवृत्ति के लिये आरात्रिक है।

श्रीकृष्ण उपभुक्त वस्तु का स्वीकार भोग है गृहस्थ विषयानुरागी हो कर स्वीकार करे तो भक्ति नहीं है। कारण भगवद्धर्म्म अवश्य पालन करें। अगर भोगादिग्रहण से विषयानुराग हो जाय तो विरक्त रहे।

भगवद्धर्म्मरक्षार्थं संमतौ दृष्टिमाचरेत ।
तदुत्पन्नो बिरक्तः स्यादित्येवं परमार्थता ॥

तीर्थयात्रा:— तीर्थं तु द्विविधंप्रोक्तं क्षेत्राधिष्ठानभेदतः ।
अधिष्ठानं तु वद्री तथा च हरिमन्दिरं ॥
द्वारकाराघवपुरं क्षेत्र तु पुरुषोत्तमं ।
एतेषु गमनं कृष्णवैभवालोकनाय वै ।
रसज्ञावृत्तिसहजा माथुरी परिकीर्त्तिता ॥ ३८ ॥

नामविवेचनं ।—पापनाशविमोक्षादौ सर्वं नाम समर्थकं ।
समं च सर्वकार्य्येषु माधुर्य्यं च पृथक् पृथक् ॥
कृष्णनाम त्रिधा प्रोक्तं गुणकर्म्मरसानुगं ।
स्वरुपं वाचकं चैव भावभावाभिवर्द्धकं ॥

इदमत्रतत्वं कर्म्म सादृगुराय पापनाश मोक्षादौ सर्वं नाम समं । स्वरुपमाधुर्य्यगुणैस्तु भिन्नं भिन्नमेव

तीर्थ दो प्रकार के हैं। क्षेत्र तथा अधिष्ठान। बद्रिकाश्रम, हरिमन्दिर, द्वारका, और अयोध्या प्रभृति अधिष्ठान तथा पुरुषोत्तम, कुरुक्षेत्र प्रभृति क्षेत्र हैं। तीर्थों में गमनादि कृष्ण के वैभव दर्शन के लिये है जानना। किन्तु रसिकों की माथुरी भूमी स्वाभाविक रसमयी तथा सर्वोपरि है ॥ ३८ ॥

यद्यपि पापनाश मोक्ष प्रदानादि सादृगुगाय से समस्त नाम समर्थ हैं किन्तु स्वरूप माधुर्य्य गुणों से पृथक् पृथक् हैं। गुणानुग कर्म्मानुग तथा रसानुग से कृष्णनाम त्रिधा है। स्वरुप सम्बधि नाम, भाव वर्द्धक है। माधुर्य्यादि गुण, स्वरूप से पृथक तथा

वाच्य भेदकाः गुणा माधुर्यादय, वाचकोऽपिविज्ञेयाः। अवतारावतार्यादिविवेक एव तत्र.न्नोऽपि ज्ञेयः। गुणरसानुगं वात्सल्येन वत्सल इत्यादि उक्तं च "वत्सलो व्रजगवां यदगध" इत्यादि। कर्मारसानुगं—"गोवर्द्धनधरो व्रजीदित्यादि" कंसारीत्यादितु वैभव पुरस्कारेण स्वरुपवाचकं "कृष्णेति" धरणीशेषसंवादे।

"सहस्रनाम्नां पुण्यानां त्रिरावृत्त्या तु यत्फलं।
एकावृत्त्या तु कृष्णस्य नामैकं तत्प्रयच्छति ॥

प्रभासखराडे।—नाम्नां मुख्यतरं नाम कृष्णाख्यं मे परंतपेति

अन्यत्रापि।— नाम चिन्तामणिः कृष्णश्चैतन्यरसविग्रहः।
पूर्णः शुद्धो नित्यमुक्तोऽभिन्नत्वान्नामनामिनोरिति

पाद्मे मथुरा- तारकाज्जायते मुक्तिः प्रेमभक्तिस्तु पारकादिति
माहात्म्ये।— तारकं रामेति पारकं कृष्णेति ॥ ३६ ॥

नाम से भी पृथक् है। अवतार तथा अवतारी भेद से नाम का भेद है। गुणरसानुग-वात्सल्य गुण से वत्सल है। यथा कहा है "व्रज गौओं का वत्सल, पीडा नाशक" इत्यादि। कर्म्मारसानुग "गोवर्धन धारी कहा है" इत्यादि। "कंसारि" यहाँ पर वैभव द्योतक है कृष्ण शब्द स्वरूप वाचक है। धरणी शेष संवाद में कहा है सहस्र नाम तीन वार पाठ करने से एक कृष्णनाम के बराबर है। कृष्ण नाम हीं नाम समूहों में से मुख्य यह प्रभासखराड की उक्ति है। और जगह में भी कहा है कि कृष्ण नाम ही चिन्तामणि तथा चैतन्य स्वरुप और पूर्णरसमय विग्रह है। पद्मपुराण की मथुरा महिमा में कहा है तारक से मुक्ति तथा पारक से प्रेमभक्ति होती

सेवाविवेचनं:— सेवा च त्रिविधा प्रोक्ता युग्मे तत्परिवारके ।
तत्स्थानेऽनन्यभावेन रसरूपा सतां मता ॥
उभयोः सपरिवारं सेवनं कृतिभिः स्मृतं ।
कायेन वसतिः स्थानसेवनं परिकीर्त्तितं ॥

प्रसादस्वीकार:—सेव्यनैवोपभुक्तस्य स्वीकृतिं भक्तसंमता ।
विभक्तस्यापि कृष्णस्य न मन्यन्ते हि केचन ॥
ईशस्वरूपं यादृग्वै तादृग्सेव्यं मनीषिभिः ।
अन्यथात्वेन या वृत्तिः सा मोक्षे पर्य्यवस्यति ॥

नहि अन्यथा ज्ञाते रजते तत्ज्ञानं प्रमा। न च रजतत्वेन ज्ञातया शुक्तया भूषणादिव्यवहारो वा। नहि खपुष्पत्वेनोपासिते भगवति फलं। तथा च श्रुतिः। "असन्नेव स भवति असद्ब्रह्मेति चेद्वेदेति" "सन्मूलाः सौम्ये माः प्रजा सदायतनाः सत्प्रतिष्ठा ।४०।

है। यहाँ पर तारक शब्द का अर्थ राम पारक शब्द का अर्थ कृष्ण है ॥ ३६ ॥

सेवा तीन प्रकार की है अनन्यभावसे युगलसेवा, परिवारसेवा, स्थानसेवा रसरूपा है। युगल तथा परिवारसेवा इन्द्रियों द्वारा, एवं स्थानसेवा शरीरद्वारा निवास करना है। जैसा प्रभुका स्वरूप है तैसी ही सेवा करना रसरूपा है। नहीं तो मोक्षादिक में परिणत होजाती है। जैसे माधुर्य्यमय श्रीकृष्ण में माधुर्य्यमयी सेवा होनी चाहिये। रजत वस्तु में अन्यज्ञान से रजतज्ञान नहीं होता है। शुक्ति में रजतज्ञान पूर्वक भूषणादि व्यवहार नहीं होता है। भगवान में खपुष्प भाव से उपासना फल

मथुरावसतिः— अन्येषु पुण्यक्षेत्रेषु मुक्तिरेव महाफलं ।
मुक्तैः प्रार्थ्या हरेर्भक्ति र्मथुरायां तु लभ्यते ॥

रसिकसंगे रंगः—रसिका भगवद्भक्ता युगलोपासकाश्च ये ।
तत्संगतिश्च कर्त्तव्या पुरुषार्थतया बुधैः ॥

तदुक्तंहरि स्वकुलर्द्ध्यै ततो धीमान् स्वयूथानेव संश्रयेत् ।

भक्तिसुधोदये:—

श्रीभागवते च ॥—स्वसखीभ्यो न्यवर्णयन् ॥

युगलसेवा ॥— सेवा च द्विविधा प्रोक्ता मन्त्रद्वयविभागतः ।
एकस्मिन्स्वीकृते मन्त्रे उभयोः स्वीकृतिर्भवेत् ॥
यतो ह्युभयमन्त्रेऽपि न च्युतिर्नामरूपयोः ॥

पाद्मे एक- न्यासद्वयं प्रपत्तिः स्यात्पर्यायेण निबोध में ।
त्रिंशाध्याये ।— द्वयोपदेशपूर्वेण सर्वकर्म्म समाचरेत् ॥
द्वयाधिकारी न भवेत् सर्वमन्त्रेषु नार्हति ॥
वात्सल्ये प्रेमादौ नार्हतीत्यर्थः ।

गौतमीये- दीक्षाया चाधिकारित्वमाप्नोति गुरुसेवकः ।

दायक नहीं है। श्रुति में कहा है। असत की तरह ब्रह्म होता है असत् ब्रह्म जानना। उससे सन्मूलात्मक प्रजा होती है। यहाँ पर असत् से सत की उत्पत्ति असम्भव का कारण ब्रह्म खपुष्प असत् नहीं है किन्तु अव्यक्त जानना ॥ ४० ॥

अन्य पुण्यक्षेत्रों में मुक्ति ही महाफल है। किन्तु मुक्तगणोंसे प्रार्थित श्रीहरिभक्ति मथुरा में मिलती है। युगल उपासक भगवद्भक्त रसिक हैं उनका संग कर्त्तव्य तथा परमपुरुषार्थ प्राप्ति है। हरिभक्तिसुधोदय नामक ग्रन्थ में कहा है बुद्धिमान् स्वकुल

पञ्चमपटले:—

ननु अनेकपरिवारमन्त्र प्रसिद्ध्यभावात्कथं पूजनं सत्यं यत्र तु मन्त्रप्रसिद्धिस्तत्र तेनैव। अन्यत्र तु तन्त्रे "प्रणवादिचतुर्थ्यन्त स्वनामच नमोऽन्तकमि"त्याद्युक्तं। गौतमीये दशमपटले "प्रणवादि नमोऽन्तैर्मन्त्रैस्तान्परिपूजयेत् इति ॥४१॥

प्रियलोकस्य। प्रियास्तु यूथपतयः प्रेममार्गप्रवर्त्तकाः।
सेवा।— तथा रसान्तरे ज्ञेयाः वात्सल्ये मातरोयथा॥
तुलसीश्रद्धा॥— तुलसी वृन्दया साकमैक्यं प्राप्तेति निश्चयः।
तद्वनं केलिसंपत्तीत्येवंवेद्यं मनीषिभिः॥
श्रद्धाकरणे। तुलसीं प्राप्य यो नित्यं न करोति ममार्च्चनं।
निन्दा॥— तस्याहं प्रतिगृन्हामि न पूजां शतवार्षिकीं गारुडे॥

तथोपनिषदि गोपालतापिन्यां "वृन्दायाः वनं वृन्दावनमिति।

स्वयूथका आश्रय करे। भागवत् में है कि "अपनी सखियों को वर्णन किया। तात्पर्य्य यह है स्वजातीय रसिक संग कर्त्तव्य है। सेवा दो प्रकार की है। मन्त्रद्वय विभाग से। एक मंत्र स्वीकार से उभय मन्त्र का स्वीकार जानना। जैसे श्रीकृष्ण मन्त्र में श्रीराधा मन्त्र किम्वा श्रीराधा मन्त्र में श्रीकृष्ण मन्त्र स्वीकार है। दो प्रकार के मन्त्रों में कोई में भी दोनों के नाम रूप की च्युति नहिं है। एक न्यास में दोनों का उपदेश है पद्मपुराण में कहा है। जहाँ पर अनेक परिवारों के मन्त्रों की प्रसिद्धि है तहाँ तहाँ उन् उन् मन्त्रों द्वारा पूजा करे मन्त्र न होय तो प्रणवादि चतुर्थ्यन्त तथा नमः शब्द देकर तत् तत् परिवार समूह की पूजा करे॥४१॥

यमुनाश्राद्ध – इयं तु यमुना साक्षात्कृष्णमाधुर्य्यवाहिनी ।
ब्रह्मानन्दद्रवो ह्यस्यां निर्भरत्वेन संमतः ।

तदुक्तं पातालखण्डे मरीच्यादिसर्गे ।–
रसो यः परमाधारः सच्चिदानन्दलक्षणः ।
ब्रह्मेत्युपनिषद्गीतः स एव यमुना स्वयं ॥
पावनायास्य जगतः सरिद्भूत्वा ससार ह ॥

आदिवाराहे ।– गंगाशतगुणा प्रोक्ता माथुरे मम मण्डले ।
यमुना विश्रुता देवि नात्र कार्य्या विचारणात् ।

पातालखण्डे ।– विशेष एव कालिन्द्यां मृता यान्ति हरेः पदं ।
मथुरा संगतायां तु हरिरेव भवेन्नरः ॥

हरिः मनोहारी सदृश इत्यर्थ । मित्रवदिति यावत् ॥

प्रेममार्ग प्रवर्त्तक यूथपति प्रियजन हैं। जैसे माता यशोदा वात्सल्य रस में सेव्या है। वृन्दा तथा तुलसी एक हैं। वृन्दा का वन केलि सम्पत्ति रूप है। गरुडपुराण में कहा है तुलसी लेकर जो मेरी पूजा नहीं करे उसका शतवत्सर सेवा भी नहीं ग्रहण करता हूँ। कृष्णमाधुर्य्य वाहिनी साक्षात् द्रवमयी ब्रह्म स्वरूपा यमुना हैं। पातालखण्ड में कहा है सच्चिदानन्दलक्षण, परमाधार रसरूप उपनिषद कीर्त्तित ब्रह्म आज साक्षात् यमुना है। जगत पवित्र के लिये नदीरूप हो कर बही हैं॥ आदिवाराह में कहा है कि गंगा से शतगुण यमुना है। इस में कोई अन्य विचार न करें। पाताल खण्ड में भी कहा है यमुना जी में मृत होने से हरिचरण प्राप्ति होती है, तथा मथुरा में यमुना प्राप्त होने से साक्षात हरि स्वरूप

विष्णुपुराणे :— कस्मिदस्मत्कुले जातः कालिन्दीसलिलाप्लुतः ॥
अर्च्चयिष्यति गोविन्दं मथुरायामुपोषितः ॥४२॥

श्री दशमे:— तीर्थं चक्रे नृपोनं यदजनि यदुषु स्वः सरित्पादशौचं
विद्विट् स्निग्धाः स्वरूपं ययुरजितपरा श्रीर्यदर्थे-
न्ययत्नः ।
यन्नामा मंगलघ्नं श्रुतमथगदितं यत्कृतो गोत्रधर्म्मः
कृष्णस्यैतन्न चित्रं क्षितिभरहरणं कालचक्रायुधं-
स्येत्यादि ॥

माला:— पुष्पाहृतिश्च ग्रथनं तथा कृष्णे समर्पणं ।
माला तु त्रिविधा प्रोक्तालङ्कारत्वेन चेद्भवेत् ॥

धूप:— धूपस्तु त्रिविधो ज्ञेयः स्थानवस्तु स्वरूपगः ।

ईक्षणं:— ईक्षणं तु चर्तुभेदं रूपयोः परिवारयोः ।
रसानुभावैं विज्ञेया रसदृष्टिरनेकधा ॥

हो जाता है। विष्णुपुराण में भी कहा है "कोई ऐसा हमारे कुल में जन्म हुआ है जो कि मथुरा में उपवास करता हुआ यमुना सलिल में स्नान पूर्वक गोविन्द का अर्च्चन करेगा ॥ ४२ ॥

पुष्पाहरण, मालाग्रन्थन, तथा कृष्ण में समर्पण त्रिविध प्रकार माला हैं। स्थानगत, वस्तुगत, स्वरूपगत त्रिविध धूप है।

कृष्णरूप, कृष्णपरिवार, राधारूप तथा राधापरिवार दर्शन ईक्षण चार प्रकार हैं।

युगल नाम का धारण नामविधृति है। कर्ण निकट धारण

श्रीकृष्णनाम युगलस्यैव नाम्नो हि धारणं विधृतिः स्मृता।
विधृति— कर्णोपान्ते तु विधृतिः प्रेमाभिव्यञ्जिकामता
तथापाद्मे:— कृष्णनामाक्षरैर्गात्रमङ्कयेच्चन्दनादिना।
स लोकपावनो भूत्वा तस्य लोकमवाप्नुयात्॥

श्रीभागवतश्रवणं रसनिमित्तं।

राधिकावल्लभः कृष्णो रसरूपतया मतः।
क्रीड़ापि रसरूपैव ततो भागवतं तथा।
वक्ता चेत्प्रेमनिपुणस्तदा स्यात् श्रवणाद्रसः॥४३॥

तदुक्तं द्वितीये- इदं भागवतं नाम यन्मे भगवतोदितम्।
संग्रहोऽयं विभूतीनां त्वमेतद्विपुलीकुरू॥
यथा हरौ भगवति नृणां भक्तिर्यतोभवेत्।

प्रेमाभिव्यञ्जक है। पद्मपुराण में कहा चन्दनादिद्वारा कृष्ण नामाक्षरसे शरीर चिन्हित करे।

श्री भागवत श्रवण रस के लिये जानना। जैसे राधिकावल्लभ श्रीकृष्ण रसरूप हैं और उनकी क्रीड़ा रसरूपा है तैसे श्री भागवत रसरूप है। वक्ता प्रेमयुक्त होय तो श्रवण में रस उत्पन्न होता है॥४३॥

द्वितीय स्कन्ध में कहा है—भगवान से कही हुई यह भागवत है। समस्त विभूति का संग्रह रूप जानना। तुम इसका विस्तार करो जिससे मनुष्यों का भगवान् में भक्ति होय। अवतारों में अवतारी श्रीकृष्ण के धर्मत्व देखना ही अवतारधर्मत्वेत्ता है। प्रथम स्कन्ध में कहा है और सब अवतार अंश तथा कलादि रूप हैं

अवतारस्य- श्रीभागवते प्रथमे ।

धर्मत्वेत्ता- एते चांशकलाः पुंसो कृष्णस्तु भगवान्स्वयं ।

तद्भक्तेषु तथा कृष्णभक्तानां धर्म्मता स्मृता ।

अवतारेषु यत्प्रेम कृष्णप्रेमांगमेव तत् ॥

शुष्केश्वरस्य हेयत्वं-क्षुधा पिपासापेक्षा च भयं शीतं तथोष्णता ।

इत्यादि धर्म्महीनत्वं शुष्कत्वं सद्भिरीरितं ।

भक्तार्थमेव तत्सर्वमित्येवं भक्तसंमतं ॥

तद्धेयत्वं तु भक्तयगं श्रीभागवतमानतः ॥

"यद्यज्जनो भगवते विदधीतमानं तच्चात्मने प्रतिमुखस्य यथा मुखश्री" रित्यादिकं तु अविदुषः अ भक्तस्यतु करुणाया वृणीते भक्तस्यतु स्वार्थं वृणीते । नायकाकृत भगवति न किन्तू-भयत्र समं ॥

नायिका कृत शृंगार उभयत्र सुखात्मकं ।

तथा श्रीकृष्णविषयाकृतिर्ज्ञेया मनोषिभिः ॥४४॥

शुष्केश्वरोपा- विष्णुचिन्हांकिता दृश्या गुरुत्वेनापि विश्रुताः ।

सकानाहेयत्वं- अभेदोपासनारताः उपेक्ष्याः कृष्णवल्लभैः ॥

स्वयम् भगवान् श्रीकृष्ण ही सब के अवतारी यानी धर्मी हैं । इस तरह अन्य अवतारों का भक्त समूह में तथा कृष्ण भक्तों में धर्म्मत्व भाव है । अन्य अवतारों में जो प्रेम है उसको कृष्ण प्रेम का अंग जानना । क्षुधा, पिपासा, अपेक्षा, भय, शीत, तथा उष्ण-तादि धर्म से रहित शुष्कत्व है । भगवान् के क्षुधादिक धर्म्म का ग्रहण भक्तों के लिये जाने ॥ ४४ ॥

शुष्केश्वरोपासकेषु भक्तिचिन्हादिकं च यत् ।
आभासं तु विजानीयान्मुख्यगं तु न भावकृत् ॥

श्रवणादिविवेकस्तद्रसे पूर्वोक्तसाधनासाध्यभक्तेराविर्भाव प्रकारंवक्तुं प्रेमस्वरूपमुच्यते ।

चित्तं मसृणतां कुर्वन्मदीयत्वाधिकाग्रहात् ।
श्रीकृष्णविषयो भावः प्रेमशब्देन कथ्यते ॥

यद्वा— अन्तकरणवृत्ति र्या नित्यत्वेन द्रवात्मिका ।
श्रीकृष्णविषया सा तु प्रेमा विद्वद्भिरीरिता ॥

चित्तं किञ्चिन्मसृणतां नयन्ती साधनादरात् ।
श्रीकृष्णविषया वृत्तिर्भावत्वेन प्रकीर्त्तिता ॥

तदुक्तंरसार्णवसुधाकरे–निर्विकारस्य चित्तस्यभावः स्यादादि विक्रिया ॥ साहित्येदर्पणे निर्विकारात्मके चित्ते भावः प्रथमविक्रिया ॥

यद्यपि अवराडो नित्यसिद्ध एव प्रेमा तत्साधकाश्च तथापि अंगागिनोः क्रमेण सम्बन्धस्यैवोत्पत्तिः, सम्बन्धोत्पत्तिरेव सम्बन्धि-

---

विष्णुचिन्हों से युक्त तथा अभेद उपासना रत साक्षात् गुरु का भी परित्याग कर्त्तव्य है। शुष्क ईश्वर उपासकों में जो भाव चिन्ह देखने में आता है उसको आभास जानना, वास्तविक भाव नहीं है। चित्त मसृणता (द्रव) कारी मदीयत्व भाव के आधिक्य युक्त श्रीकृष्ण विषय का भाव ही प्रेम है। किम्वा श्रीकृष्ण विषयक नित्या द्रवात्मिका अन्तकरण वृत्ति प्रेम है। साधन गौरव से चित्त को किञ्चित् मसृणता पूर्वक श्रीकृष्ण में जो वृत्ति यह भाव है। रसार्णवसुधाकर नामक ग्रन्थ में कहा है निर्विकार चित्त में

न्युपचर्य्यते राजासम्बन्धवत् नामादथ्युच्चारेण यत्र लक्षणार्थो हि दृश्यते ।

भावं परं विजानीयान्नतु नामोक्तिमात्रतः ॥ इति सामान्य प्रेमभावयो लक्षणं ॥ ४५ ॥

इदानीमवधिभूतयोर्लक्षणमुच्यते ।

स्वान्तयोः सर्वभावेन सेव्यसेवकयोस्तथा ।
क्षीरनीरवदाश्लेषो विषयाधारता तथा ।
अंगानामपि तादृक्तं स प्रेमा विनिगद्यते ।
द्वाविंशति विधः श्लेषो विज्ञेयोऽत्र सुबुद्धिभिः ॥

तथाहि प्रियवर्ग श्रीकृष्णमनसोः सर्वांशेन संश्लेषः क्षीरनीरवत् ॥ १ ॥ प्रियवर्गश्रीकृष्णयोः संश्लेषः ॥ २ ॥ क्षीरनीरालिगनवत् प्रियवर्गस्य श्रीकृष्णो विषयः ॥३॥ आधारश्च ॥४॥ चन्द्र चन्द्रिका-

---

प्रथम-विक्रिया, भाव है साहित्यदर्पण में भी ऐसी उक्ति है । यदि प्रेम नित्यसिद्ध तथा अखण्ड है तथा प्रेमसाधक भी नित्यसिद्ध और अखण्ड है तथापि अंग-अंगी भाव से सम्बन्धकी उत्पत्ति सम्बन्धिनी में उपचार है जैसे राजा का सम्बन्ध है ॥ ४५ ॥

अब सीमा प्राप्त भाव तथा प्रेमका लक्षण कहते हैं । सेव्य, सेवक दोनोके चित क्षीरनीर मिश्रणके समान २२ प्रकार आश्लेष (मिश्रण) प्रेम है । विषय तथा आधार भेदसे मिश्रण होता है यथा—प्रियवर्ग तथा श्रीकृष्ण दोनों का मनका मिश्रण, प्रियवर्ग तथा श्रीकृष्णका मिश्रण, प्रियवर्ग का श्रीकृष्ण विषय, तथा आधार, श्रीकृष्ण का प्रियवर्ग विषय तथा आधार, प्रियवर्ग

वन् श्रीकृष्णस्य प्रियवर्गः विषयः ॥५॥ आधारश्च ॥ ३ ॥ अन्ययैकतराभावे आभासः स्यात् । प्रियवर्गस्यान्तरस्य श्रीकृष्णो विषयः॥ ७॥ आधारश्च ॥ ८॥ श्रीकृष्णमनसः प्रियवर्गो विषयः ॥ ९ ॥ आधारश्च॥ १० ॥ प्रियवर्गस्य श्रीकृष्णांगं विषयः ॥११॥ आधारश्च ॥ १२ ॥ श्रीकृष्णस्य प्रियवर्गांगं विषयः ॥ १३ ॥ आधारश्च ॥ १४ ॥ प्रियवर्गमनसः श्रीकृष्णांगं विषयः ॥ १५ ॥ आधारश्च ॥ १६ ॥ श्रीकृष्णमनसः प्रियवर्गांगं विषयः ॥ १७ ॥ आधारश्च ॥ १८ ॥ प्रियवर्गस्य मनसः श्रीकृष्णस्य चित्तं विषयः ॥ १९ ॥ आधारश्च ॥ २० ॥ श्रीकृष्णस्य चित्तस्य प्रियवर्गचित्तं विषयः ॥ २१ ॥ आधारश्च । २२। यथा चक्षुः श्रीकृष्णो विषयः श्रीकृष्णचक्षुश्च तद्वत् ॥ ४६ ॥

रसार्णवसुधाकरे— "स प्रेमा भेदरहितं यूनोर्यद्भावबन्धनं ।"

तथोक्तमेकादेश— कपोतौ स्नेहगुणित हृदयौ गृहधर्म्मिणौ ।

दृष्टिं दृष्ट्याऽङ्गमंगेन बुद्धिं बुद्ध्या बबन्धतुः

मनका श्रीकृष्ण विषय तथा आधार, श्रीकृष्ण मनका प्रियवर्ग विषय, तथा आधार, प्रियवर्ग का 'कृष्णांग विषय तथा आधार, श्रीकृष्ण का प्रियवर्ग अंग विषय तथा आधार, प्रियवर्ग मनका श्रीकृष्ण अंग विषय, तथा आधार, श्रीकृष्ण मनका विषय, तथा आधार, मनका श्रीकृष्ण चित्त विषय, तथा आधार। श्रीकृष्ण चित्त का प्रियवर्ग चित्त विषय तथा आधार ॥ ४३ ॥

दोनों का भेदरहित भावबन्धन प्रेम है, रसार्णवसुधाकर में कहा है। एकादशस्कन्ध में वे कबूतर-कबूतरी परस्पर प्रेम बन्धन से बँधे हुए दृष्टि से दृष्टि, अंग से अंग और मन से मन मिलाये

शय्यासनाटनस्थानवार्त्ता क्रीड़ाशनादिकं ।
मिथुनीभूय विस्रब्धौ चेरतुर्वनराजिषु ॥

अथावधिभूतोभावः । स्वान्तयोरीशदर्शेन सेव्यसेवकयोस्तथा ।
एकत्वेनैव यः श्लेषः स भावः परिकीर्त्तितः ॥

उक्तं च तन्त्रे- प्रेम्णस्तु प्रथमावस्था भाव इत्यभिधीयते ।
सात्विकाः स्वल्पमात्राः स्युरत्राश्रुपुलकादयः ॥
भावोत्पत्तौ हि हावः स्योत्ततो हेला प्रवर्त्तते ।
अतः प्रेमप्रवृत्तिस्तु तत्र क्रीड़ात्मिका भवेत् ॥
भ्रू नेत्रादिविकारैस्तु सम्भोगेच्छाप्रवर्त्तकः ।
भाव एवाल्पसंलक्ष्यविकारो हाव इष्यते ॥
हाव एव विलासस्य पूर्णता प्रतिपद्य वै ।
हेला नाम समाख्याता प्रेमपूर्वं गतांगता ॥

हुए रहते थे, और एक साथ ही भ्रमण, बैठना, बातचीत करना, सोना, भोजन करना प्रभृति क्रिया थी। सेव्य सेवक दोनों के चित्तों का किञ्चित् अंश से भेदरहित पूर्वक जो आश्लेष यह भाव है। तन्त्र में कहा है प्रेम की प्रथमावस्था भाव है भाव में सात्विक भाव थोड़ा सा होता है। भाव से हाव तथा हाव से हेला भी होता है इसलिये प्रेम की प्रवृत्ति क्रीड़ामयी है। भावभ्रू तथा नेत्रादिका विकार से सम्भोगेच्छा प्रवृत्ति, तथासात्विक विकारों की ईषत प्रतीति होने से हाव होता है। विलास की पूर्णता प्रकाश होने से होता है। साधन दो प्रकार का है। कृपा तथा श्रवणादिक। किसी का कृष्ण कृपा से तथा किसी का तदीय भक्तों की

तत्रसामान्य- साधनंद्विविधं प्रोक्तं कृपा च श्रवणादिकं ।
भावसाधनं— केषाञ्चित्कृष्णकृपया तदियानामथापि वा ॥
श्रीभागवते- तद्गच्छतं मत्परमौ नलकूबरसादनं ।
संजातो मयि भावो वामीप्सितः परमो भव ॥४७॥
दैत्यपुत्रेऽपि गर्भस्थे नारदस्य प्रसादतः ।
प्रल्हादे बालभावोऽपि भावः कृष्णमयो भवेत ।
स्कान्देच-- अहो धन्योऽसि देवर्षे कृपया तस्य तत्क्षणात् ।
नीचोऽप्युत्पुलकं लेभे लुब्धको रतिमुच्यते । इति ।
अथश्रवणं-- जन्म कर्म्मगुणाख्यानां श्रुतिः श्रवणमिष्यते ।
अन्यनिष्ठाद्यभावेन श्रवणं भावसाधकम् ।
यथा— श्रुत्वा गुणान्भुवनसुन्दर ते निर्विश्य कर्णविवरैर्ह-
रतेऽगंतापं ।

कृपा से जानना । श्रीभागवत में श्रीकृष्ण नलकुवेर चरित्र में ।— भो ! नलकुवेर ! तुम दोनों मेरे कृपा के भाजन हो । मुझ में तुम दोनों का भाव उत्पन्न हो गया है ॥ ४७ ॥

दैत्यपुत्र प्रहलाद गर्भ में से ही श्रीनारदजी की कृपा पाकर बाल्यकाल से कृष्णमय भाव को प्राप्त हुआ था । श्रीकृष्ण कृपासे भगवान नारदजी को भी जानना । स्कन्धपुराण में उक्ति है कि अहो ! देवर्षि तुम धन्य हो । नीच लुब्धक भी पुलकायमान भाव को प्राप्त हुआ है । जन्म, कर्म्म, गुणों का सुनना श्रवण है ।

अन्य निष्ठा के अभाव का कारण केवल भाव साधक है ।— रुक्मिणजी पत्र भेजी । यथा हे भुवन मनोहर आपके गुणों को

रूपं दृशां दृशिमतामखिलार्थलाभं त्वय्यच्युता
विसति चित्तमपत्रपं मे।

यथावा— तत्र न्वहं कृष्णकथाः प्रगायता मनुग्रहेण श्रवणं
मनोहराः।

ताः श्रद्धया मेनुसव विशृण्वतः प्रियश्रवस्यंगममा
भवद्रतिरिति ॥४८॥

श्रवणादिना (तु) भावस्य ह्युत्पत्तिर्भक्तसंमता।
भक्तनिन्दाद्यभावश्चेदन्यनिष्ठाद्यभावतः॥

यन्त्र तन्त्रे तत्तु मर्य्यादासाधनसाध्यो भाव एव न प्रेमा साष्टर्यादिजनकत्व विरोधात्। तथाहि पञ्चरात्रे।

माहात्म्यज्ञानयुक्तस्तु सुदृढः सर्वतोऽधिकं।
स्नेहो भक्तिरिति प्रोक्तस्तया साष्टर्यादि नान्यथा।
हेतुं विना तु यो भावः सहसा यत्र दृश्यते।
दृढैरनुभावैर्गम्य स प्रासादज दृश्यते॥

इदानीं भावज्ञापकाः अनुभावा उच्यन्ते।

अनुभावास्त्रिधा ज्ञेया भावसाधनभेदतः।

सुना कर्णविवर में आकर शरीर का ताप हरण किया। नेत्रधारियों का अखिलार्थ लाभकारी आपका रूप है। हे अच्युत तुम में चित्त प्रवेश कर रहा है। मेरे को लज्जा नहीं है। ॥४८॥

श्रवणादिकों से भाव का होना भक्त संग से यदि भक्तनिन्दा तथा अन्यनिष्ठादि का अभाव होय जानना। एतद्भिन्न तन्त्र में जो दीखने में आया है सो मर्य्यादा साधन से जो साध्य भाव हो उस

श्रवणादिसिद्धो भाव: भक्तकृपासिद्धो भाव: श्रीकृष्णकृपासिद्धो भाव: सभावो द्विविध: माधुर्य्यविषयक: ऐश्वर्य्यविषयक: ऐश्वर्य्यश्रवणादिना ऐश्वर्य्यविषयक: माधुर्य्यश्रवणादिना माधुर्य्यविषयक: ॥४६

श्रवणादीनि भावस्य स्वरूपेणैव कारणं ।
तान्येव स्वादुपूर्वाणि भावकार्य्यं वदन्ति हि ॥

कस्यचिच्छ्रवणाद्भाव: कस्यचित्कीर्त्तनात् कस्यचिद्वैष्णवदर्शनादित्यादि तद्भेदादनुभावभेदोऽपि ज्ञेय: ॥

ते चानुभावा:— श्रवणे कीर्त्तने नृत्ये तस्यैव वसतिस्थले ।
वैष्णवस्य गृहे मालाग्रन्थने तुलसीवने ॥
इत्यादौ सहजाशक्तिर्महोत्सवकृतौ तथा ।
विरक्तिरर्त्तिणकृता मानशुन्यसहिष्णुते
आशाबन्ध: समुत्कराठा प्रार्थना सर्वकर्म्मसु ॥

को जानना प्रेम नहीं है। पञ्चरात्र में कहा है। महिमाज्ञान से दृढ़ता सब से अधिक होती हैं। किन्तु यह भक्ति है उस से साष्टर्यादि मुक्ति होती है किन्तु प्रेम नहीं है। बिना कारण से जो भाव दीखने में आता है सो प्रसाद ज जानना। भावज्ञापक अनुभाव तीन प्रकार है। श्रवणादि से सिद्धभाव, भक्तकृपा से सिद्धभाव कृष्ण कृपा से सिद्धभाव। फिर माधुर्य्यविषयक तथा ऐश्वर्य्यविषयक से दो भेद है। माधुर्य्यश्रवण से माधुर्य्यभाव तथा ऐश्वर्य्यश्रवण से ऐश्वर्य्य भाव होता है ॥४६॥

श्रवणादि भाव उत्पत्ति का स्वरूप कारण है श्रवणादि रसास्वादपूर्वक हो कर भावकार्य्य का प्रकाश करते हैं। किसी का

श्रवणे यथा मम— यदवधि मम कर्णे कृष्णराधेतिशब्दो
न्याविशदतिसतृष्णो माधुरीणां धुरीणः।
तदवधि मम चित्तं लोकवेदातिगं सन्
न गणयति कथञ्चित् कृष्णराधे विहाय ॥

कीर्त्तने यथा। प्रयागतः स्ववीर्याणि तीर्थपादः प्रियश्रवाः
श्रीभावगते— आहूतइव ते शीघ्रं दर्शनं याति चेतसि ॥ ५० ॥

---

*श्रवण से, किसी का कीर्त्तन से, तथा किसी का वैष्णवदर्शनादिकों से भाव उदय होता है। श्रवणादिकों का भेद से अनुभाव भेद भी जानना। अनुभाव-श्रवण में आसक्ति, कीर्त्तन में आसक्ति, नृत्य में आसक्ति, वसति स्थान में आसक्ति, वैष्णवगृह में आसक्ति, मालागूथने में आसक्ति, तुलसीवन में आसक्ति, महोत्सवादिकों में आसक्ति, विरक्ति, अक्षणिकता, मान्यशून्यता, सहिष्णुता; आशाबन्ध, उत्कण्ठा, तथा सर्वकर्मों में प्रार्थनादिक हैं।

श्रवण में।—जब से उत्कंठा पूर्वक मेरे कान में कृष्ण-राधा इस शब्द ने प्रवेश किया तब से मेरा चित्त लोक तथा वेद में अतीत हो कर "कृष्ण तथा राधा" बिना किसी वस्तु को नहीं चाहता है। मेरे पराक्रम को गाने वाले भक्तों के चित्त में शीघ्र दर्शन होता है। श्रीभागवत में श्रीवेयासकि मुखपद्म विनिर्गत माधुर्य्य धारामयी तथा गोपांगनाओं के विलास समूह से उदार-मयी पद्यावली छोड़कर जिह्वा अन्यत्र नहीं जाती है। क्या करूँ ॥ ५० ॥

ममैव— वैयासिके मुखविनिः सृतमाधुरीणां
गोपांगनागुणविकासभरैरुदाराम् ।
पद्यावलीं परिविहाय न कुत्रचिन्मे
जिह्वा सदैव परिधावति किं करोमि ॥

नृत्ये यथा । रासोत्सवात्मकरसे वलते शरीरं
स्वान्तं तथैव सकलेन्द्रियवृत्तिरुद्धा ।
संसारतारकगुणे परमार्थभूते
हेयत्वमेव विपुलो कुरुते दृगादिः ॥ ममैव

वसतिस्थले रुचिः॥—यद्यपि सन्ति सहस्रं पुर्यः परमाद्भुताः पुण्याः ।
तदपि मनोमम मथुरा हरति न जाने कुतः हेतोः ॥
भावतारतम्येन रुचितारतम्यं ॥

वैष्णवगृहे । बहुशो नगरवरेऽस्मिन्यद्यपि धनिनां गृहाः सन्ति ।
तदपि मनो मम रमते वैष्णवसदनेऽति जीर्णेऽपि ॥

श्रीरासोत्सव रस में सरीर डूबा हुआ है मन तथा समस्त इन्द्रियों की वृत्ति भी रुक गई । संसारतारक गुण परमार्थ भूत मुक्ति में हेयत्वभाव बढ़ रहा है यदि हजारों परम अद्भुत नगर मौजूद हैं तथापि नहीं जानताहूँ किस कारण मथुरा मनको हरती है । इस नगर में यदि धनिकों के बहुत गृह मौजूद हैं तथापि अति जीर्ण वैष्णव गृह में मन रम रहा है ॥ कोई कोई भोजन भूलकर माला गूंथ रहे थे कोई कोई तुलसी की रक्षा माता की तरह कर रहे थे ॥ वसन्तादि महोत्सव प्रसिद्ध हैं । अपनी अभिलषित वस्तु जो कि भक्ति की विरोधी हैं उनका त्याग विरक्ति है इतर वस्तु

मालातुलस्यो रुचिः। केचिद्गुम्फन्ति मालां वै विस्मृत्यैव तु भोजनं।
केचित्पुष्णन्ति तुलसीं बालकानिव मातरः ॥

महोत्सव कृतिः।— महोत्सवः वसन्तादिः प्रसिद्धः।

विरक्तिः॥ स्वस्याभिलषितं वस्तु यद्भक्तौ न प्रयुज्यते।
तस्य त्यागो विरक्तिः त्यागेनेतरस्येति मेमतिः॥

अक्षणिकृता। अनुरागोपयोगि यः क्षणः सार्थकः स्मृतः।
सत्रस्थो क्षणिको ज्ञेयोऽन्यत्रस्थः क्षाणिको मतः॥
स्वापादनि वहेद्यस्तु प्रतिबन्धनिरासकं।
स्वापादिघातकश्चैतस्यात् रागमेव विनाशयेत्॥

उक्तमेकादशे। "मुहूर्त्तो क्षणिको भवेदेति"॥ ५१॥

मानशून्यता— गुरुत्वेऽपि ह्यमानित्वं कथिता मानशून्यता।
तं मोपयातं प्रतियान्तु विप्रा गंगा च देवीधृतचित्तमीशे॥
द्विजोपसृष्टः कुहकं स्तक्षको वा दशत्वलं गायत कृष्णगाथाः।

का त्याग विरक्ति नहीं है यह मेरा मत है॥ अनुराग उपयोगी क्षण सार्थक है। जिस क्षण में अनुराग नहीं है सो अक्षणिकृत जानना।॥ ५१॥

बड़े होने पर भी अभिमान से शून्य हो मानशून्यता है। भागवत में यथा—परीक्षितजी कहते हैं-हे विप्रगण! मुझको आक्रमणकारी तक्षक को, मत रोकिये। गंगा देवी है। चित्त ईश श्रीकृष्ण में लगा हुआ है। आप लोक कृष्णचरित्र गाइये।

क्रोधादि के कारण उपस्थित होने पर भी चित्त क्षोभ नहीं होना सहिष्णुता है। जैसे:-दक्ष छत्रक शप्त होकर भी भगवत्प्रिय

सहिष्णुता ॥ क्रोधादि हेतौ संप्राप्ते ऽक्षोभः स्यात्सहिष्णुता ॥

यथा ॥ दक्षेणशप्तो भगवान्नारदो भगवत्प्रियः ।
गायन्हृष्यन्निदं विश्वं प्रपन्नं परिपालयन् ॥

आशाबन्धः ॥ आशाबन्धस्तु कृष्णस्य प्राप्तिनिश्चय उच्यते ॥

यथाश्री रुक्मिणी जर्ह्यम्बुजाक्ष न लभेय भवत्प्रसादं
वाक्यं । जह्यामसून्व्रतकृशान् शतजन्मभिः स्यात् ॥

समुत्कण्ठा ॥- इष्टानवाप्ते रुत्कण्ठा कालक्षेपासहिष्णुता ॥

यथा श्रीदशमे ॥ - अप्यायास्यति गोविन्दः स्वजनान्सकृदीक्षितुम् ।
तर्हि द्रक्ष्याम तद्वक्त्रं सुनसं सुस्मितेक्षणम् ॥

सर्वकर्म्मसुप्रार्थना॥ लौकिकालौकिके पक्षे श्रीकृष्णं प्रार्थयेद्यदा ।
स प्रार्थना तु विज्ञेया भावोद्बोधप्रवर्त्तिका ॥

यथा ॥-दशमे ।- ददुः स्वन्नं द्विजाग्रेभ्यः कृष्णे नो भक्तिरस्त्विति ॥ ५२ ॥

भगवान् नारदजी गान करते हुए हर्षपूर्वक शरणागत विश्व की रक्षा करते हैं । अवश्य भगवत्प्राप्ति होगी यह 'आशाबन्ध' है जैसे रुक्मणि देवी का वाक्य है कमलनेत्र ! यदि आपकी कृपा नहीं होगी तो मैं शतशत जन्म में भी प्राण को परित्याग करूँगी ।

इष्ट की अप्राप्ति में कालक्षेपण नहीं सहना उत्कण्ठा है । यथा दशममें गोविन्द क्या अपने जनों को एक बार भी देखने को आयेंगे । तब हम सब सुन्दर नासा वाले, मन्दहास्यकारी सुन्दर नेत्रयुक्त मुखारविन्द को देखेगें ।

प्रार्थना भावोद्बोधिका है । यथा दशमें में कहा है—श्रीकृष्ण

इदानीं भावाभासो विचार्य्यते ॥

चित्ते द्रवत्वं रोमाञ्चो दृश्यते चेन्मुमुक्षुषु ।
शान्तानुभावो विज्ञेयो रत्याभासो नवै रतिः ॥
एतादृशेषु भक्तश्चेत् कृपयेन्न द्रुतिर्भवेत् ।
भाग्यं विना न वै तादृगनुभावोऽपि जायते ।
रत्याभासेन पुरुषो मोक्षमेवाप्नुयाद्ध्रुव ॥

उक्तं च साहित्यदर्पणे "शान्तास्तु नारायणो दैवत्या संसारस्या वास्तुतया परमात्मस्वरूपज्ञानवानालम्बनं पुण्याश्रमतीर्थादयउद्दीपनाः अश्रुपुलकादयोऽनुभावा इति" अतो मुमुक्षुषु शान्तरसस्यैवानुभावा न तु रतेरिति । इदानीं प्रेमविवरणं

में हम सब की भक्ति रहै, इसलिये उत्तम ब्राह्मणों को अन्नादि देने लगे ॥ ५२ ॥

अब भावाभास पर विचार करते हैं । मुमुक्षुओं के चित्त में द्रवता तथा रोमाञ्चादिक प्रेमविकार यदि दीखने में आवे तो शान्तरास का अनुभाव जानना । वह रत्याभास है किन्तु रति नहीं है । यदि उन पर किसी भक्त की कृपा हो तो चित्त की द्रवता होती है । किन्तु शान्त का अनुभाव भी बिना भाग्य के नहीं होता है । रति का आभास होने पर मनुष्य मोक्षको अवश्य पाता है । साहित्यदर्पण में कहा है:शान्त रसके देवता श्रीनारायण हैं । संसार की तुच्छता पूर्वक परमात्मस्वरूप जानने वाला आलम्बन, तथा पुण्याश्रम तीर्थादि उद्दीपन, अश्रुपुलकादि अनुभाव हैं । इसलिये मुमुक्षु में शान्तरस का ही अनुभाव है किन्तु रति

षड्गुणापूर्ण सर्वज्ञाव्यापकत्वादयस्तथा ।
श्रीकृष्णे प्रविशन्त्येते प्रेमादावपि कृत्स्नशः ।
यमादय प्रवृत्तस्तु तस्यैवास्वादको भवेत् ।
अन्यस्य गौणता ज्ञेया गुणेष्वेव परस्परं ॥
स्वरूपे चेत्प्रवृत्तः स्याद् गुणास्वादोऽनुषगंजः ।
यथा ब्राह्मण जातीये शिष्यस्त्रीणां स्वभावतः ॥५३॥

अयमर्थः । श्रीकृष्णे षड्गुणाः पूर्णत्वसर्वज्ञत्वादयश्चवर्त्तन्ते माधुर्य्यसौन्दर्य्यादयश्च स्वरूपमेव । यथा चन्द्रे प्रकाशोऽमृतत्वं च । तथा प्रेम्णाप्येते विषयत्वेन प्रविष्टः ततश्च प्रेमैश्वर्य्यादिकं पुरस्कृत्य श्रीकृष्णे प्रवृत्त स्तत्प्रधानप्रेमस्वादं प्राप्नोति । धर्म्मज्ञानाद्या स्वादस्तु तत्संलग्नतया नतु सर्वस्वरूपास्वादः । स्वरूपं पुरस्कृत्य चेत्प्रवृत्त स्तर्हि स्वरूपविषयं प्रेमाणमास्वादयेत् । सर्वं धर्म्मास्तु प्रेम्नि विषय-

---

नहीं हैं । पूर्णता, सर्वज्ञता, व्यापकतादि और षट् गुणादिक धर्म्म श्रीकृष्ण तथा श्रीकृष्ण के प्रेम में प्रवेश करते हैं किन्तु वे सब अनुसंगिसे आस्वादन होता है। जैसे कोई ब्राह्मण में शिष्यत्व आनुषगिक है । किन्तु अपनी स्त्रीके लिये पति स्वरूप है ॥५ ॥

इसका भाव यह है श्रीकृष्ण में षट् गुण समूह तथा पूर्णत्व, सर्वज्ञत्व प्रभृति गुण समूह रहते हैं, माधुर्य्य सौन्दर्य्यादिक स्वरूप सम्बन्धी गुण जानना। जैसे चन्द्र में प्रकाश गुण, तथा अमृतमय भाव हैं। स्वरूप आगे करके यदि आस्वादित किया जाता है तो सम्पूर्ण स्वरूप का आस्वादन होता है। ऐश्वर्य्यादिक आगे रखकर आस्वाद करने पर ऐश्वर्य्यादिक का प्रधान आस्वाद होता है। कारण

त्वेन वर्त्तन्त एव। तत्र दृष्टान्तः यथा ब्राह्मणजातीये विप्रत्वं पाठकत्वं पाचकत्वमित्यादिधर्म्माः सौन्दर्य्यादिकं स्वरूपं दातुर्विप्रत्वमेव मुख्यं शिष्यस्य पाठकत्वं भोक्तुः पाचकत्वं स्त्रियाः स्वरूपं। स्वरूपविषयक प्रेमज्ञापकं पञ्चरात्रे।—

मनोगतिरविच्छिन्ना हरौ प्रेम परिप्लुता।
अभिसन्धिविनिर्मुक्ता भक्तिर्विष्णुवशंकरी॥

अथप्रेमाविर्भावकं—भावानुभावातिशयः प्रेमाविर्भावको मतः।
अनुभावो द्विधाज्ञेयो मर्य्यादारसमार्गतः॥ ५४॥

मर्य्यादारसमार्गाभ्यां भावः द्विविधः भावद्वैविध्यं विषयकृतमेव तदनुभावोऽपि द्विविधस्तज्जनितः प्रेमापि द्विविधः। श्रीकृष्णप्रसादजश्च एवं त्रिविध प्रेमा यद्यपि प्रेम्णि भेदो नास्ति तथापि कारणत्रैविध्यात्त्रैविध्यं परं तु मर्य्यादामार्गेण प्रेमांशप्राप्ति यथा

प्रेम में समस्त धर्म्म मौजूद हैं। जैसे ब्राह्मण जाति में विप्रत्व, पाठकत्व, पाचकत्वादि धर्म्म तथा सौन्दर्य्यादिक स्वरूप सम्बन्धी धर्म्म है। दाता के लिये विप्रत्वधर्म्म शिष्य को पाठकत्व धर्म्म भोक्ता के लिये पाचकत्व धर्म्म मुख्य है किन्तु स्त्रियों के लिये स्वरूप ही मुख्य जानना। स्वरूप विषयक प्रेम का ज्ञापक पञ्चरात्र है। यथा अभिसन्धियों से रहित हरि प्रेम परिप्लुत अविच्छिन्न मनोगति भक्ति भगवत् वशकारिणी है। भाव में अनुभाव का अतिशयत्व ही प्रेमविर्भावक है॥ ५४॥

मर्य्यादा तथा रसमार्ग से दो प्रकार के भाव हैं। दो प्रकार का भेद विषयकृत् जानना। मर्य्यादा तथा रस भेद से अनुभाव भी दो

शीतार्त्तस्य किरणप्राप्ति रेव सूर्य्यप्राप्तिः रसमार्गश्रीकृष्णप्रसाद-
श्यामेक एक प्रेमा। तत्र मर्य्यादामार्गभावानुभावजनितप्रेमाण-
माह। =एकादेश। =कवियोगेश्वरसंवादे।—एवं व्रतः स्वप्रिय-
नामकीर्त्यां जातानुरागो द्रुतचित्तउच्चैः। हसत्यथो रोदिति रौति
गायत्युन्मादवन्नृत्यति लोकबाह्यः॥

रसानुगभावानुभावोत्थ प्रेमा यथा-पाद्मे-

न पतिं कामयेत्किंचित ब्रह्मचर्य्यस्थिता सदा।
तामेव मूर्त्तिं ध्यायन्ती चन्द्रकान्ति वरानना॥
श्रीकृष्णगाथां गायन्ती रोमाञ्चोद्भेद लक्षणा।
श्रीकृष्णप्रसादो- अस्मिन्मन्वन्तरे स्निग्धा श्रीकृष्णप्रियवार्त्तया॥
तथाह दशमे- सूयात्पतिरयं मह्यं धाता तदनुमोदतां।

प्रकार हैं अनुभावजनित प्रेम भी दो प्रकार हैं और श्रीकृष्णप्रसाद
जात भी है। इस तरह त्रिविध प्रेम है प्रेम में कोई भेद नहीं है
तो भी कारण त्रिविध से तीन प्रकार हैं। किन्तु मर्य्यादा मार्ग में
प्रेमांश प्राप्ति होती है। जैसे शीतातुर व्यक्ति को किरण प्राप्ति ही
सूर्य्य प्राप्ति है। रसमार्ग तथा श्रीकृष्णप्रसाद द्वारा प्रेम एक प्रकार
है। मर्य्यादामार्ग को भावानुभावजनित प्रेम कहते हैं। एकादश
में कवियोगेश्वर संवाद में-इस प्रकार शास्त्रबुद्धि से अपनी प्रि नाम
समूह कीर्त्तन करने से अनुराग का उत्पन्न तथा चित्त की द्रवता
होती है। तब भक्त उच्चस्वर से हँसता है तथा रोदन करता है,
फिर चीत्कारादिक करता है, उन्माद युक्त होकर कभी गाता, कभी
नाचता है। रसानुगभावानुभावजनित प्रेम यथा।--चन्द्र कान्ति

इति सर्वाः पृथक् कृष्णे भावेन हृदयंदधुः ॥ भावेन प्रेम्णा यत्र श्रीकृष्णप्रसादजस्तत्र सपरिकर एव न त्वनुक्रमतः अतएवतासां अंग संगादिना कृष्णप्रसादः सुष्ठु स्फुट एव ॥ ५५ ॥

तेनाधीतश्रुतिगणा नोपासितमहत्तमाः ।
अव्रता तप्त-मत्संगान्मामुपागताः ।
एतादृशं तु यत्प्रेम दुर्ल्लभं सर्वसाधनैः ।
रसाध्वनैव संप्राप्यं यतः कृष्णवशंकरं ।

यथा पञ्चमे-- राजन्पतिर्गुरुरलं भक्तां यदूनां दैवं प्रियः कुलपतिः
क्व च किङ्करो वः ।
अस्त्वेवमंग ! भजतां भगवान्मुकुन्दो मुक्तिं ददाति
कर्हिचित्स्मन भक्तियोगं ॥

नाम्नी वरांगना कोई तरह भी पति कामना दिन करती हुई ब्रह्मचर्य्यव्रत धारण पूर्वक उसी श्रीकृष्णमूर्त्ति का ध्यान करती हुई तथा श्रीकृष्ण चरित्र गाती हुई रोमञ्चादि सात्विक भाव युक्त उसी बात की हो कर सरसमयी हो गई है। अब कृष्णप्रसादजात कहते हैं। पति मुझे असूया करे तथा धाता भी अनुमोदन करे किन्तु श्रीकृष्ण में हम ने प्राणादिक सर्वस्व अर्पण किये हैं। ऐसा कह कर श्रीकृष्ण में हृदय अर्पण ॥ ५५ ॥

गोपियाँ वेदादिक नहीं पढ़ीं तथा उन्होंने महत्पुरुषकी उपासना भी नहीं की। किन्तु भगवान् में सहज प्रेम उत्पन्न हुआ॥ ऐसा प्रेम समस्त साधना में दुर्ल्लभ है किन्तु रसमार्ग से प्राप्त होता है जिस से श्रीकृष्ण वश होते हैं। पञ्चम में कहा है-हे राजन्! आप

तन्त्रे च — ज्ञानतः सुलभामुक्तिर्भुक्तिर्यज्ञादिपुण्यतः ।
सेयं साधनसाहस्रैर्हरिभक्तिः सुदुर्ल्लभा ॥
इदक् प्रेम्णा तदंगैश्वसाधकैश्चानुभावकैः ।
सर्वांशेन विरोधोऽस्ति मुक्तीनां साधनैः सह ॥
सामान्यभक्त्या सायुज्यमुक्तेरेव विरोधिता ।

उक्तं च भागवते—आत्मारामाश्चमुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे ।
कुर्व्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थम्भूतगुणो हरिः ॥
"कुर्वन्ति कृतिनः केचिच्चतुर्वर्गं तृणोपमं"
सालोक्यसार्ष्टिसामीप्यसारूप्यैकत्वमप्युत ।
दीयमानं न गृन्हन्ति बिना मत्सेवनं जनाः ।
स एव भक्तियोगाख्य आत्यन्तिक उदाहृतः ॥
इत्यादि ॥५६॥

सब यादवों के श्रीमुकुन्द पति, गुरु देवता, प्रिय, कुलरक्षक तथा किंकर भी हैं। ऐसा है तोभी निज अपने को भगवान् मुकुन्द मुक्ति प्रदान करते हैं कभी भी भक्तियोग नहीं देते हैं। इससे भक्तियोग दुर्ल्लभ तथा ज्ञानादिक सुलभ हो तन्त्र में भी कहा हैः ज्ञानसे मुक्ति सुलभ तथा यज्ञादि पुण्यों से भुक्ति की सुलभता है। किन्तु हरि-भक्ति हजार हजार साधनों से भी महादुर्ल्लभ है। ऐसा प्रेम, तथा प्रेम के अंग, तथा साधक और अनुभावादि से मुक्तियों का साधन तथा अंगादिकों से सर्वांश में विरोध है। सामान्य भक्ति में ही सायुज्यादिक मुक्ति विरोधी है रसरूपा भक्ति में तो क्या कहे ना। आत्माराम मुनिगण भी भगवान् के गुणों से मुग्ध

केचन वैकुण्ठमपि न वाञ्छन्ति-पाद्मे कार्त्तिकमाहात्म्ये ।—
वरं देव मोक्षं न मोक्षावधिं वा न चान्यं वृणेऽहं वरेशादपीह ।
इदं ते वपु र्नाथ गोपालबालं सदा मे मनस्याविरास्तां किमन्यैः ॥
मोक्षावधि वैकुण्ठमित्यर्थः । अत्र सामान्यतः केचन साधनावस्थाया मेकसाधननिष्ठाः केचन बहुसाधननिष्ठाः । तथा प्रेमावस्थायामपि केचनैकानुभावनिष्ठाः केचन बहुलानुभावनिष्ठाः केचिदनियताः ।
यथा— श्री विष्णोः श्रवणे परीक्षिदभवद्वैयासकिः कीर्त्तने
प्रल्हाद स्मरणे तदङ्घ्रिभजने लक्ष्मीः पृथुः पूजने ।
अक्रूरस्त्वभिवन्दने कपिपति र्दास्येऽथ सख्येऽर्जुनः
सर्वस्वात्मनिवेदने बलिरभूदकृष्णाप्तिरेषां परं ॥
श्रीशुकादयोऽनुभावनिष्ठाः अक्रूरबली साधननिष्ठौ । बहुलांगानमेवमे-यथा-सवैमनः कृष्णपदारविन्दयो र्वचांसि वैकुण्ठगुणानुवर्णने
करौ हरे र्मन्दिरमार्जनादिषु श्रुतं चकाराच्युतसत्कथोदये ॥

होकर भक्ति करने लगे। कोई कोई चतुर्वर्ग को तृण के बराबर देखने लगे। मेरे भक्तगण केवल मेरी सेवा बिना दीयमान सालोक्यादि नहीं ग्रहण करते हैं ॥ ५६ ॥

कोई कोई वैकुण्ठ भी नहीं चाहते हैं। जैसे पद्मपुराण में कार्त्तिक महिमा में कहा है। हे देव। वरेश आप से मोक्ष, मोक्षावधि तथा और कुछ भी नहीं चाहता हूँ। आपका सुन्दर यह गोपालबालक शरीर मन में सदा उदय हो। यहाँ पर मोक्षावधि शब्द का अर्थ वैकुण्ठ है। साधन अवस्था में कोई कोई एक साधन-निष्ठ कोई कोई बहु साधन-निष्ठ हैं। तथा प्रेम अवस्था में भी

मुकुन्दलिंगालयदर्शने दृशौ तद्भृत्यगात्रस्पर्शेऽगसंगमं ।
घ्राणञ्च तत्पादसरोजसौरभे श्रीमत्तुलस्या रसनां तदर्पिते ॥५०॥
पादौ हरेः क्षेत्रपदानुसर्पणे शिरो हृषीकेशपदाभिवन्दने ।
कामञ्च दास्ये न तु कामकाम्यया । यथोत्तमं श्लोक
जनाश्रयारति ॥

व्रजेत्वतत्र्चानिष्ठा ।-यथा--

तथा यशोदा रोहिराणावेकं शकटमास्थिते ।
रेजतुः कृष्णरामाभ्यां तत्कथाश्रवणोत्सुके ॥

"अतृप्तमुत्सृज्य यवेन सा ययावुतिरुच्यमाने पयसित्वधिश्रिते" इत्यादौ स्वरुपास्वादे विद्यमानेऽपि श्रवणे दुग्धरक्षणे च निष्ठा ॥

कोई कोई एक अनुभाव निष्ठ कोई कोई बहु अनुभाव निष्ठ हैं। यथा श्रावण में परीक्षित कीर्त्तन में वैयासकि स्मरण में प्रल्हाद चरण भजन में लक्ष्मी पूजा में पृथु वन्दना में अक्रूर दास्य में हनुमान, सख्य में अर्जुन आत्मनिवेदन में बलि महाराज हैं। शुकादि अनुभावनिष्ठ, अक्रूर और बलि साधननिष्ठ हैं। बहु अंग साधन यथा।—श्रीकृष्ण पदारविन्द में मन, भगवद्गुण समूह वर्णन में वाणी मन्दिरमार्जनादि कर्म्मों में हस्तश्रीकृष्ण सत कथा में कर्ण, मुकुन्दचिन्हादि दर्शन में नेत्र, भगवद्दासके अंग स्पर्श में शरीर, कृष्णचरणकमल सौरभ में घ्राण, भगवत् अर्पित तुलसी में रसना ॥ ५० ॥

हरि के क्षेत्र तथा धामादिगमन में चरण, हृषीकेश के चरण वन्दन में मस्तक, दास्य में कामनादिक लगाने लगे। व्रज में अत-

श्रद्धा गुरुप्रसत्तिश्च भजने सर्वथोद्यमः ।
ततो निष्ठा रुचिश्चैव व्यसनं तत्र तत्र ह ।
प्रेममार्गे क्रमोऽयं वै साधकानामुदाहृतः ॥५८॥

इति श्री श्री नारायणभट्टविरचितायां भक्तिरसतरंगिन्यां

प्रथमोल्लासः

इदानीं रसो निरूप्यते—

विभावेनानुभावेन व्यक्तः सञ्चारिणा तथा ।
रसतामेति रत्यादिः स्थायी भक्तरसो भवेत् ॥
सात्विकानुभावरूपत्वान्न पृथगुक्ताः ।
यद्वा— विभावैरनुभावैश्च सात्विकै र्व्यभिचारिभिः॥
स्वाद्यत्वं हृदि भक्तानामानीता श्रवणादिभि ।
एषा कृष्णरतिः स्थायीभावो भक्तिरसो भवेत ॥१॥

क्यं निष्ठा जानना । जैसे--यशोदा तथा रोहिणी एक शकट में स्थित हो कर श्रीकृष्ण तथा राम के साथ श्रीकृष्ण को कथा सुनने में उत्कण्ठा पूर्वक विराजित होने लगी । अतृप्त बालक श्रीकृष्ण को त्याग यशोदा उफने हुए दुग्ध की रक्षा करने को गई । यहाँ पर स्वरूपास्वाद मोजूद रहने से भी दुग्ध रक्षा करने में निष्ठा देखने में आई । साधकों के--श्रद्धा, गुरुशरण, भजन में सर्वथा चेष्टा, निष्ठा, रुचि, व्यसन, यह प्रेममार्ग का क्रम है ऐसा जानना॥५८॥

अब रस निरूपण करते हैं । रत्यादि स्थायीभाव, विभाव, अनुभाव तथा संचारीभाव द्वारा प्रकाश होकर रसको (भक्तिरस) प्राप्त होता है । अनुभाव होने का कारण सात्विक भाव पृथक नहीं कहा गया है ॥ १ ॥

रसोऽखण्डो नित्यः स्वप्रकाशश्च आनन्दमयरूपवांश्च श्रीकृष्ण-वत् प्रतीयते भक्तानां चैतन्यात्मकेष्विन्द्रियेषु । सूर्य्यः कांस्यादिपात्रे-ष्विव "चिन्मात्राणीन्द्रियाण्याहु र्मुक्तानामन्यदेवत्विति" वैष्णवैरुक्तं पौराणिकं पदं । एकादशे च "सात्विकः कारकोऽसंगी रागान्धो राजसः स्मृतः । तामसं स्मृतिविभ्रष्टो निर्गुणो मयपाश्रयः" इति श्रीमुखोक्तं

ब्रह्मानन्दचमत्कारिकोटिं जनयते रसः ।
इदमुक्तिस्तु भक्तानां लज्जां जनयति स्फुटं ॥ ॥

श्रीभागवते ।— तस्यारविन्दनयनस्य पदारविन्द किञ्जल्कमिश्र
तुलसीमकरन्दवायुः
अन्तर्गतः स्वविवरेण चकार तेषां संक्षोभमक्षरयुषा
मपि चित्ततन्वोः ।

रस अखण्ड, स्वप्रकाश, आनन्दमय है तथा श्रीकृष्ण के सदृश रूपवान प्रतीत होता है । भक्तों की सकल इन्द्रियाँ चिन्मय हैं उन चिन्मय इन्द्रिय समूहों में कास्यादि पात्रों में सूर्य्य की प्रतीति की तरह रस प्रतीति होता है "भक्तों के इन्द्रिय समूह चिन्मय है" यह वैष्णवगण कथित पौराणिक वचन है । एकादश स्कन्ध में भी कहा है:-संगरहित सात्विकी, रागसे अन्ध राजसिक, स्मृति से विभ्रष्ट तामसिक, मुझ में निष्ठा करने वाले लोग निर्गुण हैं । रस कोटि-कोटि आश्चर्य ब्रह्मानन्द को जन्म देता है ऐसी उक्ति भक्तों को तुच्छ तथा लज्जा दायिनी है ॥ २ ॥

श्री भागवत में कहा है कमलनेत्र श्रीकृष्ण के चरण कमलों

विषयरसस्यामूर्त्तिमत्त्वं वदन्तः सत्यमेव वदन्ति। रसत्वाभावादेव। रसस्तु भक्तिरस एव मूर्त्तिमान। उक्तं प्रथमे "अनर्थोपशमं साक्षाद्भक्तियोगमधोक्षजे अपश्यदिति" पूर्वेण सम्बन्धः। विषयरसमुक्त्वा-स्थं साहित्यदर्पणे। सत्वोद्रेकादखण्डस्वप्रकाशानन्दचिन्मयः।

वेद्यान्तरस्पर्शशून्यो ब्रह्मास्वादसहोदरः।
लोकोत्तरचमत्कारप्राणः कैश्चित्प्रमातृभिः
स्वाकारवदभिन्नत्वेनायमास्वाद्यते रसः॥ १॥

अखण्ड एको विभावादिरित्यादि प्रकाशसुचमत्कारात्मकः। ततोऽस्य प्रकाशत्वमखण्डत्वं च सिद्धमित्युक्तं। किमु वक्तव्यं भक्तिरसस्य। ततश्चाखण्डो नित्यस्वप्रकाशः स्वतन्त्रः सान्द्रानन्द रूपो भक्तिरसो नित्यसिद्धैर्विभावानुभावसात्विकव्यभिचारिभि

पर चढ़ी हुई तुलसी की मकरन्द-रशि वायु ने अन्तरध्यानपरायण ब्रह्मनिष्ठ ज्ञानियों के नासिका मार्ग में प्रवेश करके उनके चित्त तथा शरीर क्षुब्ध कर दिया। विषयरस को अमूर्त्त कहने वाले सत्य कहते हैं। कारण, विषयरस में रसका अभाव है। मूर्तिमान् भक्तिरस हीरस है। प्रथमस्कन्ध में अनर्थ नाशक भक्ति-योग को देखा ऐसी उक्ति है। विषयरस का परित्याग पूर्वक भग-वत्सम्बन्धिरस का लक्ष्य ही साहित्यदर्पण कार का आशय है। जब लौकिक रस आस्वाद काल में विभावादि द्वारा प्रकाश होकर चमत्कार भाव को धारण करता है तो भक्ति रस का क्या कहना? अखण्ड, नित्य, स्वप्रकाश, स्वतन्त्र, सान्द्रानन्दरूप भक्तिरस नित्य सिद्ध विभाव, अनुभाव, व्यभिचारिभावों के द्वारा भक्तों के

भक्तानां हृदये रज्यमानः स्वाद्यतां प्राप्नोति । केश्चिदेवायं रसः प्रतीयते न सर्व्वैः ये पुन वैष्णवत्वेन भासमानाः । प्रसिद्धाश्चाभेद पर्य्यवसायिनस्ते शृंगारिस खड्गवत्—धातुचित्रितकाष्ठपाषाणवत् ज्ञेयाः ॥ ४ ॥

उक्तं च साहित्यदर्पणे—पुण्यवन्तः प्रमिण्वन्ति योगिवद्रससन्ततिम् । तथा धर्म्मदत्तेनोक्तं !—सवासनानां सभ्यानां रसस्यास्वादनं भवेत् ।

निर्वासनान्तु रंगान्तः काष्ठकुड्यमसंनिभाः इति । अथविभाव उच्यते !—विभावो द्विविधः आलम्बनमुद्दीपनं च । तत्रा-लम्बनं—आलम्बनं द्विधा ज्ञेयं श्रीकृष्णो भक्त एव च ॥ तत्र सामान्यरतेरा-लम्बनस्वरुपं—

रसरूपे स्वरत्यादिज्ञानस्य विषयो हरिः ।
नन्दनन्दन एव स्यादाश्रयो रसवर्त्मसु ॥

हृदय में सरस होकर आस्वादित होता है । अभेद उपासकों के हृदय में चित्र विचित्र खड्ग सदृश तथा चित्रित काष्ठ पाषाण सदृश आस्वादित नहीं जानना ॥ ३।४॥

साहित्यदर्पण में कहा है पुण्यशाली रससमूह का अनुभव करते हैं । धर्म्मदत्त ने भी कहा है !— रसकी वासना जिसमें है ऐसे सभ्यगण का रसास्वादन होता है । जिनकी वासना नहीं है उनकी रंगस्थल में काठ, पत्थर के सदृश जानना । अब विभाव कहते हैं । विभाव दो प्रकार का है । आलम्बन तथा उद्दीपन । श्रीकृष्ण तथा भक्तों में दो प्रकार आलम्बन है । सामान्य रति का आलंम्बन स्वरूप यथा:— रसरूप में अपने रत्यादिज्ञानका विषय

कुत्रचित द्विभुजत्वेन चतुर्भुजतया क्वचित् ।
पूर्णत्वेनैव कुत्रापि बालत्वेनापि कुत्रचित् ॥
अवतारतया क्वापि निर्गुणत्वेन च क्वचित् ।
इत्यादे र्विषयत्वेन तथाधारतयापि च ॥
उभयोरुभयं ज्ञेयं न रतेर्भिन्नता क्वचित् ।
चतुर्भुजादिके प्रायो रतेरंशांशता मता ॥५॥
तत्र ज्ञेया विभावास्तु रत्यास्वाद नहेतवे ।
आलम्बनस्तु कृष्णादिस्तमालक्ष्य रसो भवेत् ॥
कृष्णस्यैव गुणा नाना भक्तानामेकरूपिणः ।
उदासीनानुकूल्याभ्यां नानात्वं भक्तिवर्त्मनि ॥
भक्तिवर्त्मानुकूल्येन गुणानामेकरूपता ।
श्रीकृष्णस्य गुणाः प्रोक्तास्त उच्यन्ते यथाक्रमं ॥

हरि है। रसमार्गमें श्रीनन्दनन्दन ही आश्रय हैं। कहीं पर द्विभुज, कहीं चतुर्भुज, कहीं पूर्णत्व, कहीं कहीं बालत्व, कोई स्थान में अवतार रूप, तथा कहीं निर्गुणरूप कहीं रति का विषय, कहीं पर रति के आधार रूपसे प्रकाशित होते हैं। विषयका आधार तथा आधारका विषय होने से रति से अलग नहीं हैं। चतुर्भुजादि स्वरूप में प्रायः रति का अंशांश जानना ॥ ५ ॥

रति का आस्वदन हेतु के लिये विभाव जानना जिसको लक्ष्य करके रस उत्पन्न हो, सो आलंबन जानना। जैसे कृष्ण प्रभृति। श्रीकृष्ण का गुण नाना प्रकार का तथा भक्तों का एकरूप का गुण जानना। उदासीन तथा आनुकूल्य से अनेक, और केवल भक्ति

सत्यं शौचं दया क्षान्तिस्त्यागः सन्तोष आर्जवं ।
शमो दमस्तपं साम्यं तितिक्षोपरतिः श्रुतं ॥
ज्ञानं विरक्तिरैश्वर्य्यं शौर्य्यं तेजो वलं स्मृतिः ॥
स्वातन्त्र्यं कौशलं कान्तिं धैर्य्यं मार्द्दवमेव च ।
प्रागल्भं प्रश्रयः शीलं सह ओजो वलं भगः ॥
गाम्भीर्य्यं स्थैर्य्यमास्तिकयं कीर्त्तिमानोऽनहंकृतिः
एते चान्ये च भगवन्नित्या यत्र महागुणाः ॥
प्रार्थ्या महत्वमिच्छद्भिर्न वियन्ति स्म कर्हिचित् ॥६

इतिप्रथमस्कन्धोक्ताः ।

सत्यशौचे- यथार्थभाषणं सत्य शौचं शुद्धत्वमुच्यते ॥

सत्यं यथा- तस्मान्मच्छरणं गोष्ठं मन्नाथं मत्परिग्रहं ।
गोपाये स्वात्मयोगेन सोऽयं मे व्रत आहितः ।

मार्ग के आनुकूल्य से एकरूप जानना । अब श्रीकृष्ण के गुण समूह कहते हैं—सत्य, शौच, दया, शान्ति, त्याग, सन्तोष, आर्जव शम, दम, तप, साम्य, तितिक्षा, उपरति, श्रुत, ज्ञान, विरक्ति ऐश्वर्य्य, शौर्य्य, तेज, बल, स्मृति, स्वातंत्र्य, कौशल, कान्ति, धैर्य्य, मार्द्दव, प्रागल्भ्य, प्रश्रय, शील, सह, ओज, वल, भग, गाम्भीर्य्य, स्थैर्य्य, आस्तिक्य, कीर्त्तिमान, अहंकार, प्रभृति, गुण, तथा और महागुण समूह भगवान में विराजित हैं, वे गुण समूह नित्य तथा महद्गण द्वारा प्रार्थित है ॥ ६ ॥

यथार्थ भाषण सत्य, तथा पवित्रता ही शौच है। सत्य-यथा-इसलिये मेरे में शरण आने वाले तथा मैं हूँ जिनके रक्षक, मुझसे

शौचं यथा— अथ कृष्णश्च रामश्च कृतशौचौ परंतप ।
मल्लदुन्दुभिनिर्घोषं श्रुत्वा द्रष्टुमुपेयतुः ।

सर्वैश्वर्ये प्रकटितेऽपि कंसाभिभवितुमिच्छतीति मातुलत्वे न दोषोऽस्माकमिति शुद्धत्वं ।

दया— भक्तदुःखासहिष्णुत्वं दयाशब्देन कथ्यते ॥
यथा— यो नो जुगोप वनमेत्य दुरन्तकृच्छ्राद्दुर्वाससोऽरिरचितादयुताग्रभुग्भ्यः । शाकान्नशिष्टमुपयुज्य यतस्त्रिलोकीं तृप्तामममंस्त सलिले विनिमग्नसंघः ॥
क्षान्तिः— क्रोधहेतौ समुत्पन्ने क्षान्तिश्चित्तस्य संयमः ॥
यथा-माघकाव्ये— प्रतिवाचमदत्त केशवः शपमानाय न चेदिभूभुजे ॥
अनुहुंकुरुते घनध्वनिं नहि गोमायुरुतानि केशरी ।
त्यागः— याचके मुक्तहस्तत्वं त्यागः संकीर्त्तितो बुधैः ।
सन्तोष— स्नेहदत्ते ह्यलंबुद्धिः सन्तोष समुदाहृतः ॥ ७ ॥

अन्य वस्तु न चाहने वाले गोपों (व्रजवासियों) को अपने आत्मयोग से रक्षा करूँगा, यह मेरा व्रत है। शौच-यथा-हे परंतप ! अनन्तर राम और कृष्ण कृतशौच हो कर मल्ल तथा दुन्दुभि शब्द सुन कर रंगभूमि देखने को उपस्थित हुए। समस्त ऐश्वर्य प्रकट करने पर भी मातुल कंस के वध की इच्छा करती निर्दोष तथा शुद्धत्व है। दया-भक्तों के दुःख न सहने को कहते हैं।

क्षान्ति। –क्रोध के कारण उपस्थित होने पर भी चित्त का संयम क्षान्ति है। श्रीकृष्ण ने गालि देने वाले चेदिराज के लिये एक भी उत्तर नहीं दिया। सिंह क्या शृगालों का भूकना सुनता है। याचकों

यथा— पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ॥

आर्जवं— शत्रावपि ह्यवक्रत्वमार्जवं परिकीर्त्तितं ॥

यथा— असौ वृकोदरः पार्थस्तस्य भ्राताऽर्जुनो ह्ययं।
अनयोर्मातुलेय मां कृष्णं जानीहि ते रिपुं ॥

शमः— भक्तेषु मनसः स्थैर्यं श्रीकृष्णे शम ईरितः।

यथा— साधवो हृदयं मह्यं साधूनां हृदयं त्वहं।
मदन्यत्ते न जानन्ति नाहं तेभ्यो मनागपि ॥

दमः— भक्तेषु चेन्द्रियस्थैर्यं श्रीकृष्णेऽयं दमो मतः।
इन्द्रियाणां तथा स्थैर्यं दम इत्यभिधीयते ॥

यथा— साधुभिर्ग्रस्तहृदयो भक्तै भक्तजनप्रियः ॥
अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतन्त्रो इव द्विज ! ॥

के लिये मुक्तहस्त (खोला हाथ) ही त्याग है। स्नेह पूर्वक दी हुई वस्तु में अलंबुद्धि ही सन्तोष है ॥ ७ ॥

जो भक्त, भक्ति पूर्वक पत्र, पुष्प, फल, तथा जलादिक मुझको अर्पण करता है मैं भक्तिदत्त उस वस्तु को ग्रहण करता हूँ। शत्रु में भी सरलता आर्जव है। यथा।—यह वृकोदर पार्थ तथा अपर उसका भ्राता अर्जुन यह है। दोनों के मातुलेय तथा तुम्हारा बैरी कृष्ण मैं हूँ। भक्तों में मन की स्थिरता ही श्रीकृष्ण में शम है। यथा साधुगण मेरा हृदय मैं भी साधुगण का हृदय हूँ।

भक्तों में इन्द्रिय स्थिरता ही दम है। तथा-साधुओं से मैं ग्रस्त हृदय हूँ और पराधीन की तरह उनका अधीन भी हूँ। तप-श्रीकृष्ण

तपः— तपः स्वधर्म्मो भक्तस्य येन रक्षादिकं भवेत् ।
क्रिया प्रकाश्यो धर्म्मः सच भक्तिरक्षणादिः ॥

यथा-प्रथमे— परिभ्रमन्तमुल्काभां भ्रामयन्तं गदां मुहुः ।
अस्त्रतेजः स्वगदया नीहारमिव गोपतिः ॥
विधमन्तं सन्निकर्षे पर्य्यैक्षत क इत्यसौ ।
प्रतिज्ञादयोऽपि क्रियारूपा एव ज्ञेयाः ॥८॥

साम्यं ।— अरिमित्राद्यभावस्तु साम्यं विषयहेतुकः ।

यथा ।— निभृतमरुन्मनोक्षदृढयोगयुजो हृदि य
न्मुनय उपासते तदरयोऽपि ययुः स्मरणादिति
भक्तविषयकस्तु अरिमित्रभावः एव ।

तितिक्षा ।— स्वहेतुकापराधस्य तितिक्षा सहनं स्मृता ॥

यथा ।— नूनं नृपाणां त्रिमदोऽर्थानां महीं मुहुश्चालयतां
चमूभिः ।
वध त् प्रपन्नार्त्तिजिहीर्षयेशो ऽभ्युपैक्षताघं
भगवान्कुरुणाम् ।

का स्वधर्म्म ही तप है जिस से भक्तों का रक्षणादिक होता है ।

उल्का तुल्य भ्रमणकारी अस्त्र तेज समूह को सूर्य्य जैसे अन्धकार को नाश करता है ऐसे अपने गदा द्वारा छिन्न भिन्न करने लगे । प्रतिज्ञादि क्रियारूपा जानना ॥८॥

शत्रु तथा मित्रादि भावका अभाव ही 'साम्य' है । मनोगति रोधपूर्वक दृढ़ समाधिपरायण मुनिगण जिनकी उपासना करते हैं अरिगण स्मरण मात्र से उस भावको प्राप्त हुए हैं । यहाँ पर

उदासीनत्वं ।— वस्तुप्राप्त्यावुपरतिरुदासीनत्वमीरितं ॥
यथा— भूर्य्यप्यभक्तोपहृतं न मे तोषाय कल्पते ।
श्रुतं— श्रुतं शास्त्रविचारः स्यान्मुख्यार्थे ह्यविरोधतः ।
यथा— भगवान्ब्रह्म कार्त्स्न्येन त्रिरन्वीक्ष्य मनीषया ।
तदध्यवस्यत्कूटस्थो रतिरात्मन्यतो भवेत् ॥
ज्ञानविरक्ती— ज्ञानं स्यादात्मविषयं विरक्तिः स्याद्वितृष्णता ॥
ज्ञानंयथा द्वितीये—विशुद्धं केवलं ज्ञानं प्रत्यक् सम्यगुपस्थितं ।
सत्यं पूर्णमनाद्यंतं निर्गुणं नित्यमद्वयम् ॥
वैतृष्ण्यं-यथा- मातामहं तूग्रसेनं यदूनामकरोत्पतिं ॥ ६ ॥
प्रेरितृता तु जीवानामैश्वर्य्यं विनिगद्यते ।

भक्त विषयक अरि मित्र भाव है। स्वहेतुक अपराध का सहना तितिक्षा है। यथा—निश्चय राजा समूह का तीन प्रकार मद होता है। इत्यादि

वस्तु की प्राप्ति में उपरति ही उदासीनत्व है। जैसे—अभक्त द्वारा दिया प्रचुर उपहार भी मेरी प्रसन्नता के लिये नहीं जानना। शास्त्र विचार ही 'श्रुत' है बिना विरोध से मुख्यार्थ ग्रहण ही शास्त्र विचार जानना। भगवान् ब्रह्म इत्यादिक।

आत्म विषयक वृत्ति ज्ञान तथा विषय वितृष्णता विरक्ति है। यथा— भगवान् विशुद्ध, केवल ज्ञानमय, प्रत्यगात्मा, सत्य, पूर्ण, अनादि, निर्गुण, नित्य अद्वय स्वरूप है। वैतृष्ण्यं—मातामह उग्रसेन को यादवों का राजा बनाया ॥६॥

जीवों के प्रेरयिता हि ऐश्वर्य्य है। भागवत में कहे हुए है। भक्त के लिये युद्ध विषयक उत्साह 'शौर्य्य' है। यथा दसम में—

यथा॥ श्रीभागवते—प्रवुद्धकर्म्मदैवेन त्रयं त्रिंशतिको गणः ।

प्रेरितो जनयन्स्वाभिर्मात्राभिरधिपुरुषम् ॥

शौर्य्यं— संग्रामविषयोत्साहः शौर्य्यं मकार्थमरितम् ॥

यथा दशमे— गोपालैः पशुभि मन्दत्रासितैः मिमत्तम् ॥

बलदर्पहा दुष्टानां त्वद्विधानां दुरात्मनाम् ॥

तेजः— तेजः प्रभावा विज्ञेयः दुः प्रधर्षत्वमेव वै ॥

यथा— शाल्वश्च कृष्णमालोक्य हतप्राय बलेश्वरइति ।

बलं— बलं च दुःकरे कार्य्ये शीघ्रकारित्व मीरितं ।

स्मृतिः— कार्य्याकार्य्यविचारो यः सः स्मृतिः परिकीर्त्तिता ।

यथा-दशमे— कृत्यं किमत्रास्य खलस्य जीवनं

न वा ममीषां च सतां विहिंसनम् ।

द्वयं कथं स्यादिति संविचिन्त्य

ज्ञात्वाविशत्तु मशेषविद्धरिः ।

स्वातन्त्र्यं— स्वातन्त्र्यं भक्तिताऽन्यत्राऽपराधीनत्वमीरितं ।

यद्वा— क्रियानपेदय कर्त्तृत्वं स्वातन्त्र्यं परिचक्षते ।

यथा— कालियस्यापि सिरसि नर्त्तनेनाकरोत्कृष्णम् ॥

स्तुवन्तमप्यजं कृष्णो न वक्ति न च हृष्यति ॥१०॥

असहनीय प्रभाव तेज है। जैसे—शाल्व श्रीकृष्ण के दर्शन मात्र ही मृतुल्य हो गया। दुःसाध्य कार्य्य को शीघ्र करना ही बल है। कार्य्य तथा अकार्य्य का विचार स्मृति है। तथा—अन्यत्र न न पराधीन रहना 'स्वातन्त्र्य' है किम्वा क्रिया की अपेक्षा न करता हुआ कर्त्तृत्व हि स्वातन्त्र्य है। जैसे-हरिने कालिय नाग के मस्तक

क्रियया सर्वसन्तोषजननं कौशलं विदुः ॥

यथाश्रीदशमे — प्रेष्ठं नासंसतस्वंस्वं न तत्त्वविद: श्रियः ॥

कान्तिः सौन्दर्य्यमेव स्यादगंस्य स्तावकं च यत् ।

यथाश्रीदशमे—- रूपपेशलमाधुर्य्यहसिताला पवीक्षितैः ।
धर्षितात्मा ददौ सान्द्रमुभयोरनुलेपनम् ॥

अन्याकुलत्वं देहस्य नेत्रादीनां तथैव च ।

धैर्य्यं मनीषिभिः प्रोक्तं मार्दवं चित्तमार्दवं ॥

उभयोर्यथा—- सख्युरंशे भुजाभोगं प्रसार्य्यावस्थितो हरिरिति ।

अतीव कोमलौ तात चरणौ ते महामुने इति भृगुं प्रति प्रसाद विषयं ज्ञानं नूतनं नूतनं भवेत् ।

प्रतिभा शब्दवाच्यं तत् प्रागल्भ्यं परिकीर्त्तितं ।

यथा— विलोक्य लतालये युववतंसहंसं पुर
पय: पतिदिशं विशन्नयमये मया लक्ष्यते ।
वदामि कलहंसकं तरुणि ते पादाश्रितो
हसन्निति स राधया चरतु नोऽजितोऽनुग्रहः ॥११॥

पर नृत्यादि द्वारा कृपा की परन्तु स्तुति परायण ब्रह्मा से न कछु कहा न ऐसे प्रसन्न हुए ॥ १० ॥

कर्म्म द्वारा समस्त जीवों का सन्तोष उत्पादन ही कौशल है। अंगों का सौन्दर्य्य ही कान्ति है

शरीर तथा नेत्रादि अंगों का व्याकुल न होना ही धैर्य्य है। चित्त की मृदुता ही मार्दव है। हरि सखा के कन्धेपर भुजा प्रसारण पूर्वक विराज मान होने लगे। यहाँ पर 'धैर्य्य' है। भृगु

औद्धत्य परिहारो यः क्रियया वचनेन च ।
स एव प्रश्रयो ज्ञेयः विनयापरवाचकः ॥

यथा-दशमे- मयि भृत्य उपासिते भवतो विबुधादयः ।
वलिं हरंत्यवनताः किमुतान्ये नराधिपाः ॥
शीलं भक्ताभक्तस्य चरितं स्वस्मिन येनैवभावतः ।
तेनैव भावतः सर्वं तच्छीलं परिकीर्त्तितं ॥

यथा- रंगस्थितः श्रीकृष्णः एकैक च सथाकृतिः ।
स्वभावतः प्रतीतिस्तु पृथक् सर्वेषु दृश्यते ॥

यथा वा-- मल्लानामशनि र्नृणांनरवरःस्त्रीणां स्मरो मूर्त्तिमान्
गोपानां स्वजनोऽसतां क्षितिभुजां शास्ता
स्वपित्रोः शिशु ।

के चरण प्रहार करने पर आप कहने लगे कि हे महामुने ! तुम्हारे चरण अत्यन्त कोमल हैं मुझ पर प्रहार करने से पीड़ा लगी होगी यहाँ मार्दव है । प्रतिभा शब्द कहना प्रागल्भ्य है ॥११॥

क्रिया किम्वा वचन से उद्धत भाव परित्याग ही प्रश्रय तथा विनय पर्य्यायवाची है। यथा-दशम में:-मैं भृत्य उपस्थित हूं इस पर भी आप सब भय करते हैं देवतागण नीचमस्तक से पूजा करते हैं और राजाओं का तो क्या कहना। जिस भाव से भक्त तथा अभक्त दोनों के विषय भागवान् होते हैं उस भाव को 'शील' कहते हैं। जैसे--एकमात्र श्रीकृष्ण रंगस्थल में एक रुप में स्थित हो कर पृथक् पृथक् व्यक्तिओं के लिये पृथक् पृथक् प्रतीति होने लगे यथा वा-मल्लों के लिये वज्र रुप, मनुष्यों के लिये नर-श्रेष्ठ, स्त्रीओं

मृत्युर्भोजपतेर्विराड् विदुषां तत्वं परं योगिनां
वृष्णीनां परदेवतेति विदितो रंगंगतः साग्रजः ॥
सह ओजो बलं चैव मन इन्द्रियपाटवं ।
पटुत्वं भक्तविषयं सर्वदा ग्रहणं स्मृतं ॥

यथाश्रीभागवते- साधवो हृदयं मह्यं साधूनां हृदयं त्वहं ।
मदन्यं ते न जानन्ति नाहं तेभ्यो मनागपि ॥१२॥

सर्वभोगास्पदत्वं हि भगः स्याच्छ्रीपतित्वतः ।

यथा— प्रस्थापनोपानयनैरपत्यानां महोत्सवान् ।
वीक्ष्य योगेश्वरेशस्य येषां लोका विसिस्मिरे ॥

गाम्भीर्य्यं क्षोभराहित्यं हर्षादिक्रोधहेतुतः ।

यथा— सहदेवस्तु तौ पञ्चान्निन्दायां वैरिणस्तथा ।
श्रीकृष्णाधारकक्षोभो नाविरासीत्कथञ्चन ॥

के कन्दर्प, गोपों के स्वजन, असत् राजाओं को शासक, अपने २ पिता माता के लिए बालक रूप, कंसको मृत्यु पण्डितों को विराट, योगियों को परमतत्व यादवों के परदेवता रूप से प्रतीत होने लगे सहिष्णुता, ओज, तथा बल, मन:तथा इन्द्रियों की पटुता हो भक्त विषयक जानना। यथा श्रीभागवते।- साधुगण मेरा हृदय है तथा मैं भी साधुओं का हृदय हूँ ॥ १२ ॥

समस्त भोगों का आधार ही 'भग' है। भगवान् योगेश्वर श्री कृष्ण के पुत्रों पौत्रों का विवाह तथा उपयन के उत्सवादि देखकर समस्त लोक विस्मित हो गये॥ हर्ष, क्रोधादि कारण से क्षोभ रहित होना गाम्भीर्य्य है। श्रीकृष्णपरायण सहदेवजी वैरीयों की की हुई निन्दा सुनकर भी क्षोभ के लिये नहीं प्राप्त हुए। शैष्णात्रनिन्दा

वैष्णवनिन्दायां तु भवत्येव।

देहेन नियत: स्थानादचल: स्थैर्यमुच्यते।

यथा वाराहे— भूतेश्वरे गर्त्तेश्वरे द्वे कोटी दक्षिणोत्तरे।
नित्यं वसामि वसुधे न त्यजामि कदाचन॥

श्रीभागवते वा— मथुरा भगवान् यत्र नित्यं सन्निहितो हरि:॥
साध्यसाधनकर्त्तादौ श्रद्धा ह्यास्तिक्यमुच्यते।
नारदे कश्यपे दक्षे आस्तिक्यं दर्शनं ददत्॥
कर्म्मादौ भगवान् लोकं प्रवर्त्तयति नित्यश:॥
यश एव हि कीर्त्ति: स्यात् यतस्तुत्यादिकं भवेत्।

यथा श्रीदशमे— राज्ञा सभाजिता: सर्वे सुरमानवखेचरा:।
कृष्णं क्रतुं प्रशंसंत: स्वधामानि ययु मुदा॥१३॥

में क्षोभ होना ठीक है। शरीर द्वारा नियत स्थान से अचल रहना स्थैर्य्य है। यथा-बाराह पुराण में:-भूतेश्वरादि तीर्थों में मैं नित्यवास करता हूँ हे वसुधे कभी भी परित्याग न करूँ। श्रीभागवत में भी कहा है:-मथुरापुरी श्रेष्ठा है जहाँ भगवान् हरि नित्य ही स्थित रहते हैं। साध्य साधनादि में श्रद्धा आस्तिकता है। नारद कश्यप दक्षादिकों में आस्तिकता प्रदान कर कर्म्मादिओं में लोकों को नित्य प्रवृत्ति करते हैं। कीर्त्ति ही यश है जिससे स्तुति प्रभृति होता है। दशम में यथा।-समस्त सुर, मानव, खेचर, राजा युधिष्ठिर द्वारा सन्मानित हो कर कृष्ण तथा यज्ञ की प्रशंसा करते हुए अपने अपने स्थान में गये॥ १३॥

हे गोपप्रिय! तुम्हारा यश रूपी चन्द्रकिरण से समस्त जगत् शुभ्र हो गया है परन्तु श्रीब्रजेश्वर नन्द को कृष्णभाव कैसे उत्पन्न

त्वद्यशः सकलकौमुदीरसः शुभ्रभावमभितो जगन्नयन्।
गोपवल्लभ! कथं नु निर्ममे कृष्णभावबलितं व्रजेश्वरं॥
मानः स्याल्लोकपूज्यत्वं गर्वाभावोऽनहंकृतिः।
यथोभयोःश्रीभागवते। "ब्रह्मादयो लोकपाला बहन्ति बलि"
अहो देव महादेव? पापोऽयं स्वेन पाप्मना।
हतः कोनु महत्स्वीश जन्तुर्वै कृतकिल्विषः॥
अथद्वितीयभक्ताख्यमालम्बनोच्यते॥
भक्त्याश्रयस्तु भक्तः स्यात्स एवालम्बनो मतः।
स च पञ्चविधः प्रोक्तः पुरुषस्त्रीपशुस्तथा॥
वृक्षः पक्षीति नित्यत्वाद्भक्तेन विपरीतता॥
प्राकृतरतिवत् न पश्वादिषु भक्तिरतेभावः।
भक्तस्वरुपंपाद्मे—ये कण्ठलग्नतुलसी नलिनाक्षमालाः
ये बाहुमूलपरिचिह्नितशंखचक्राः।
ये वा ललाटपटले लसदूर्द्ध्वपुण्ड्रा
स्ते वैष्णवा भुवनमाशु पवित्रयन्ति॥

कराया। लोकपूज्यत्व, मान तथा गर्वाभाव, 'अनहंकृतित्व' है। दोनों के दृष्टान्त श्रीभागवत में यथा।-ब्रह्मादि लोक पालसमूह जिनकी पूजा ग्रहण करते हैं। हे महादेव! यह पापी अपने पाप से खुद मरगया है। हे स्वामिन्! महत जनों में अपराधी नाश को प्राप्त होता है। अनन्तर द्वितीयभक्ताख्य आलम्बन कहते हैं। भक्तया श्रय भक्त ही आलम्बन है। भक्त-पुरुष, स्त्री, पशु, वृक्ष, पक्षी भेद से पाँच प्रकार के हैं। नित्यता का कारण विपरीतता नहीं है। प्राकृत रति की तरह पशु प्रभृतिओं में भक्ति रति का अभाव

इदं तत्संसर्गेण ज्ञापकं कैकयसुग्रीवमेघपुष्पबलाहकानां नित्यभक्तत्वश्रवणात्। स्त्रीणामपि तथैव। पशुवृक्षपक्षिणां तु भाव एव ज्ञापकः। भावाविर्भावस्तु वैष्णवसंसर्ग एव। उक्तं च शाण्डिल्यस्मृतौ—पशुपुत्रादिकं सर्वं गृहोपकरणानि च।

अङ्कयेच्छङ्खचक्राभ्यां नामकुर्याश्चवैष्णवः॥ १४॥

अथगुणाः— परदुःखासहिष्णुत्वं द्रोहराहित्यमेव च।
सत्यभाषा मृदुत्वं च मत्सरादिविवर्जनं।
भक्त्या सर्वोपकारित्वं कामराहित्यमेव च॥

इत्यादय एकादशाऽन्योक्ताः

तथा तृतीये च— अलम्पटः शीलधरो गुणाकरो हृष्टः परर्द्ध्या
व्यथितो दुःखेषु।
अभूतशत्रुर्जगतः शोकहर्त्ता नैराधिकं ताप
इत्योडुराजः॥

नहीं है। भक्तस्वरूप पद्मपुराण में यथा!—जिनके कण्ठ में तुलसी माला, कपाल में तिलक तथा जो शंखचक्रचिन्हों से युक्त है वह भक्त है। यह सब तत्संसर्ग से जानना। पशु, पक्षि, वृक्ष, मेघ, प्रभृति का भी भाव प्रकाश होता है। भाव का प्राकट्य वैष्णवसंग से जानना। शाण्डिल्यस्मृति में कहा है वैष्णव-पशु, पुत्र, गृहोपकरण प्रभृति समस्त शंखचक्र से अंकित करे तथा भगवत्सम्बन्धि नाम रखे॥ १४॥

परदुःख न सहना, द्रोह से रहित, सत्यबोलना, मृदु, मत्सरादि शून्य, भक्ति से सब का उपकार करना, कामनाओं से रहित होना,

केचिद्भगवद्गुणा अपि ज्ञेयाः । उदाहृतयस्तु प्रसिद्धा विस्तरभयान्न विचार्यन्ते । भक्तानां भेदास्तत्प्रकरणे वक्ष्यामः ॥

आलम्बनभेदाः

आलम्बनश्चतुर्द्धा धीरोदात्तश्च धीरललितश्च ।
धीरप्रशान्त नाम ततश्च धीरोद्धतः ख्यातः ।
इमं चतुर्विधं भेदं भक्तेष्वपि विनिर्दिशेत् ।
यदि स्त्रीपशुवृक्षेषु सर्वाणानि विभागतः ।
न सन्ति तत्र भक्तत्वं भावेनैव विनिर्दिशेत् ।
यथा वात्सल्यकार्य्यं हि मधुरेण प्रदृश्यते ।
मधुरस्यापि तत्तत्र न भक्तत्वे भवेत्क्षतिः ।

ततश्च स्त्री पशु वृक्ष पक्षिषु भावेनैव भक्तव्यवहारः । अतएव सर्वग्रंथेषूत्तम मध्यमप्राकृतव्यवहार आलम्बने श्रीकृष्णभक्तयोस्तु पूर्ण-पूर्णतर पूर्णतमादिव्यवहारः ॥ १५ ॥

एकादशस्कन्ध उक्त गुण समूह भक्तों में होता है । तृतीयस्कन्ध में भी अलम्पट, सुन्दरस्वभाव वाले, गुणों से युक्त, प्रसन्नचित्त वाले, अपर का ऐश्वर्य्य में व्यथा न करने वाले जन समूह, चन्द्र द्वारा ग्रीष्म ताप हरण के तुल्य शोक समूह को हरण करते हैं ।
कोई कोई भगवत्सम्बन्धि गुण भी जानना । उदाहरण प्रसिद्ध है ग्रन्थ विस्तार भय से नहीं विचार हुआ है । भक्तों के भेद, भक्त प्रकरण में वर्णन होगा । अब आलम्बन भेद कहते है । धीरोदात्त, धीरललित धीरप्रशान्त तथा धीरोद्धत भेद से आलम्बन चार प्रकार का है । भक्तों में भी धीरोदात्तादि भेदों का प्रयोग होता

अथ धीरोदात्तः— दयावानतिगम्भीरो विनीतः सत्यसाववान् ।
दृढ़व्रतस्तितिक्षावानात्मश्लाघापराङ्मुखः ।
निगूढ़ाहंकृति धीरैर्धीरोदात्त उदाहृतः ॥

यथा— निरातंकं शक्रे कलयति किलोपद्रवभरं
निगूढ़ाहंकारं समनिदधता भूधरवरं ।
निरर्थाया सन्तं चरणपतितं चानुनयता
न कृष्णेन क्रोधो न परिकलितस्तोषनिवहः ॥

अम्बरीषादिभक्तेषु धीरोदात्तत्वमीरितं ।
तद्गुणा नवमे प्रोक्ताः शुकेनैव विभागशः ॥
राजा तु न कृताहारः प्रत्यागमन कांक्षया ।
चरणावुपसंगृह्य प्रसाद्य समभोजयेदित्यादि ॥

है, स्त्री, पशु, वृक्ष, पक्षि प्रभृतिओं में भक्तव्यवहार को भावद्वारा जानना। इसलिये समस्त ग्रन्थों में उत्तम, मध्यम, प्राकृत व्यवहार है। आलम्बन में श्रीकृष्ण तथा भक्तों का पूर्ण, पूर्णतर, तथ पूर्णतम व्यवहार है ॥१५॥

दयावान्, अतिगम्भीर, विनीत, सत्यवान्, दृढ़व्रत, तितिक्षावान्, आत्म श्लाघासे रहित, निगूढ़ अहंकार युक्त, धीरोदात्त नाम से कथित है। इन्द्र निर्भय होकर उपद्रव समूह करने पर श्रीकृष्ण ने निगूढ़ अहंकार के साथ गोवर्द्धन धारण किया। इन्द्र के पराजित हो चरणों में पतित होने पर न श्रीकृष्ण का कोई क्रोध न प्रसन्नता प्रगट हुई। अम्बरीष प्रभृति भक्तों में धीरोदात्त कथित है। श्रीशुकदेवजी ने नवम स्कन्ध में वर्णन किये है। यथा—राजा

अथ धीरललितः— निश्चिन्तो नवतारुण्यो वनितावशगः कृती।
परिहासकलादिग्धो धीरलालित्य सस्तुतः॥

यथा कस्यचित्— न हानिं न ग्लानिं न निजगृहकृत्यव्यसनितां॥
न घोरं नोद्घूर्णां न किल कदनं वेत्ति किमपि।
वरांगीभिः सांगीकृतसुहृदनंगाभिरभितो
हरिर्वृन्दारण्ये परमनिशमुच्चै विंहरति॥१६॥

अत्र भक्तेषु राधेव परमावधिरिष्यते।
मध्यप्राकृतभेदाभ्यामाश्रयोऽन्योपि संमतः॥

धीरशान्तः— शमः प्रकृतिकः क्लेशसहनश्च विवेचकः।
गम्भीरादिगुणोपेतो धीरशान्त उदाहृतः॥

यथा— नयनयुगलवीक्ष्यालक्ष्यगाम्भीर्यसीमा
वचनरचनरीत्या नीतनीत्यंगभूमा।
व्रजविपिनविहारे कंश्चिदाकल्य भूयं
हरिरिह सखि सौम्यो मन्त्रितामातनोति॥

अम्बरीष ने प्रत्यागमन आकांक्षा से भोजनादिक न करता हुआ तथा चरण धारण पूर्वक प्रसन्न करता हुआ भोजन कराने लगे। निश्चिन्त, नवयुवा वनितावश, क्रियावान परिहासकला युक्त धीरललित है। यथा—न हानि न कोई ग्लानि, न गृहकृतिव्यसनी, न कोई दुःखादिक श्रीकृष्ण में है। परन्तु निश्चिन्त होकर सुहृद् व्रजागंनाओं के साथ निरन्तर श्रीवृन्दावन में बिहारकरते हैं॥१६॥

भक्तों में श्रीराधिका सर्वोपरि है। और और मध्यम तथा प्राकृत भेद से युक्त है। शमप्रकृतिक, क्लेशसहन, विचारयुक्त,

अथधीरोद्धतः— मात्सर्य्यवानहंकारी मायावी रोषणश्चलः ।
आत्मश्लाघी च विविधो धीरोद्धत उदाहृतः ॥

यथातृतीये— सत्यं वयं भावेन गोचरा मृगा युष्मद्विधान्मृगये ग्रामसिंहान्
न मृत्युपाशैः प्रतिमुक्तस्य वीर विकत्थनं तव गृह्णत्यभद्रम् ॥

भीमादयस्तु भक्तेषु भक्ता धीरोद्धताः स्मृताः ।

अथमेभीमवाक्यं—तत्राह्वामर्षितो भीमस्तस्य श्रेयान्वधः स्मृतः ।
न भर्त्तुर्नात्मन अर्थे.................. ..॥१७॥

धीरोदात्तादिका भेदाः श्रीकृष्णस्य गुणात्मकाः ।
विरोधेऽप्यविरोधित्वं विषयस्य विभेदतः ।
तथा धीरविभेदेन नायके वत्सलो यथा ॥

गम्भीरादि गुण शाली धीरशान्त है । यथा ।—हे सखि देख श्रीहरि सौम्यमूर्त्ति धारण पूर्वक मन्त्रणा दे रहे हैं । नयन युगल से गाम्भीर्य्य समुद्र का भाव प्रतीति हो रहा है तथा वचन भंगी से नीति का साक्षात् विग्रह मालुम होता है । मात्सर्य्यवान, अनहंकारी, मायावी, रोषयुक्त, चञ्चल, आत्मश्लाघी धीरोद्धत नाम से कथित है । यथा तृतीय में ।—हम भाव से दृश्य होते हैं । तुम सब को मृग के सदृश्य ढूढ़ते हैं इत्यादिक भीमादि धीरोद्धत नायक है तथा प्रथम में भीमवाक्य है । ॥१७॥

धीरोदात्तादिक भेद श्रीकृष्ण में गुणात्मक जानना । विषय के भेद से परस्पर विरोध होने से भी श्रीभगवान में अविरोध से

तथा च श्रीकृष्णस्य चत्वारो धर्म्माः तेषां चत्वारो विषयाः गुणास्तु विविधास्तत्र न धीरोद्धतगुणस्य धीरललितविषये प्रवेशः। किन्तु धीरोद्धतविषये तस्मादन्यगुणस्यान्यविषये विरोध इति तात्पर्य्यं।

अथ भक्तानां भेदाः-भक्तास्तु द्विविधाः साधकाः सिद्ध श्च।

ये भक्तिसाधनरता अन्यनिष्ठाभिघाततः।
देहादिविषयस्पर्शाः साधकाः परिकीर्त्तिताः॥

यथा— ईश्वरे तदधीनेषु वालिषेषु द्विषत्सु च।
प्रेममैत्री कृपापेक्षा यः करोति स मध्यमइति

अथ सिद्धाः— अनित्यानन्दशून्या ये प्रेमानन्देन संयुताः।
सिद्धास्तु एव विख्याताः कृष्णवद्भक्तिसंश्रयाः॥
वैकुण्ठे पार्षदानां प्रेमनिष्ठत्वं प्रसिद्धमेव।
सिद्धास्तु द्विविधाः नित्यसिद्धाः साधनसिद्धाश्च।
प्रेम्णस्तु नित्यधिष्ठानं नित्यसिद्धाः प्रकीर्त्तिताः।
यतः प्रवर्त्तते भक्तिः सूर्य्यतोरमयो यथा॥

उपस्थित रहते हैं। अनन्तर भक्तों के भेद कहते हैं। साधक, सिद्ध भेद से भक्त दो प्रकार का है अन्यनिष्ठा से रहित हो कर देहादि विषयों का स्पर्श का साथ भक्तिसाधन में रत "साधक" परिकीर्त्तित है। यथा-ईश्वर में ईश्वर के आधीन भक्त,वालिष, द्वेषिजन में क्रम से प्रेम, मैत्री, कृपा, अपेक्षा करने वाले मध्यम भक्त हैं। अनित्य आनन्द से रहित, प्रेमानन्द युक्त, भक्ति आश्रित कृष्णसदृश, सिद्ध नाम से कथित हैं। नित्यसिद्ध, तथा साधनसिद्ध भेद से सिद्ध दो प्रकार के हैं। नित्यसिद्ध भक्तों में प्रेम का नित्य अधिष्ठान है।

आत्मनो सर्वगुणितां कृष्णे प्रीतिं परांगताः।
नित्यानन्द गुणाः सर्वे नित्यसिद्धा मुकुन्दवत्॥१८

अयमभिसन्धिः नित्यानन्दादिगुणः श्रीकृष्णो नित्यानन्दादि गुणाः श्रीकृष्णभक्ता नित्याः सर्वभक्तिरसश्राविणी मूर्त्तिमती नित्य गुणाभक्ति र्नित्या ततश्च श्रीकृष्णो नित्यगुणः वत्सलो रसज्ञः सर्वज्ञः ईश्वरः सुखरूपः धीरोदात्तादिनित्यनायकगुणवान् ततः भक्तं बिना गुणाः स्वरूपं न च निवहति श्रीकृष्णं बिना भक्तत्वं न भक्तिं बिना नोभयो निर्वाह इति त्रिषु स्वातन्त्र्यं निरपेक्षगुणत्वं निरपेक्षस्वरूपं च सिद्ध्यति। परस्परसापेक्षत्वेऽपि समतैव। अन्यतरस्यानित्यत्वे त्रितयानित्यत्वं स्यात्। श्रीकृष्णस्य भक्तभक्ती भक्तस्य श्रीकृष्णो भक्तिश्च भक्तेरालम्बनौ श्रीकृष्णभक्तौ इति सर्वत्र षष्ठ्यर्थस्य गौणत्वं नित्यसिद्धस्य रसस्यावधिभूता लम्बनः श्रीकृष्णः व्रजवासिनश्च त्रितयस्याधिकरणं श्रीमधुपुरी नित्यानन्दरूपा भक्तत्त्वविर्भाविका। तथा श्रीनारदवाक्य—

जिन से भक्ति प्रवृत्त होती है। जैसे सूर्य से किरण हैं। कृष्ण में परप्रीति के प्राप्त तथा नित्यानन्दादि गुणों से युक्त, मुकुन्द-सदृश, नित्यसिद्ध जानना॥ १८॥

भावार्थ यह है जैसे नित्य आनन्दादिगुण स्वरूप श्रीकृष्ण हैं वैसे ही नित्य आनन्दादि गुण स्वरूप भक्त गण हैं तथा समस्तरस-वाहिनी मूर्त्तिमती नित्यगुणमयी भक्ति है। तदनन्तर श्रीकृष्ण वत्सल, रसज्ञ, सर्वज्ञ, ईश्वर, सुखमय, धीरोदात्त प्रभृति नित्यनायक गुणों से नित्यगुणयुक्त है। किन्तु उक्त गुण समूह तथा स्वरूप

तस्मिन्वृन्दावने पुण्यं गोविन्दस्य निकेतनं ।
तत्सेवकसमाकीर्णं तत्रैव स्थीयते मया ॥
भुवि गोविन्दवैकुण्ठः तस्मिन्वृन्दावने नृप ।
यत्र वृन्दादयो भृत्याः सन्ति गोविन्दलालसाः ॥

पाद्मनिर्वाणखण्डे-नित्यां मे मथुरां विद्धि वनं वृन्दावनं तथा ।
यमुना गोपकन्याश्च तथा गोपालबालकानिति-
भगवद्वाक्यं ॥ १६ ॥

तथा श्रीभागवते—मथुरा भगवान् यत्र नित्यं सन्निहितो हरिः ॥

स्वायम्भुवागमे— पञ्चाशीतिपटले श्रीगोपालध्यानप्रस्तावे—
ततो निर्वाणपदवी मुनीनामूर्द्धरेतसां ।
स्मरेत्तु परमव्योम यत्र देवाः सनातनाः ॥
ततोऽनिरुद्धलोकं च प्रद्युम्नस्य यथाक्रमं ।
संकर्षणस्य च तथा वासुदेवस्य च स्मरेत् ॥

बिना भक्त से प्रकाशित नहीं है। तथा बिना श्रीकृष्ण से भक्तोंका भक्तत्व, और बिना भक्ति से भक्त तथा श्रीकृष्ण का निर्वाह नहीं है। इस से तीनों में स्वातन्त्र्य, निरपेक्ष गुणत्व, तथा निरपेक्षस्वरूपत्व, सिद्ध होता है। परस्पर परस्परका सापेक्ष है इससे समता सिद्ध है एक का अनित्य होने से सब अनित्य होते हैं। सो नित्य है जानना। श्रीकृष्ण का भक्त भक्ति है तथा भक्त का श्रीकृष्णभक्ति है भक्ति का आलम्बन श्रीकृष्ण तथा भक्त है। यहाँ पर षष्ठि बिभक्ति का अर्थ गौण है। नित्यसिद्ध रसका अवधिभूत आलम्बन श्रीकृष्ण तथा व्रजवासी गण है। भक्ति, भक्त, तथा कृष्ण का अधिकरण मथुरा भी नित्य आनन्द रूपा है ॥ १६ ॥ सम्बन्ध

श्री वृन्दावन धाम

ततः यमुनाध्यानमुक्ता— स्वात्मानन्दसुखोत्कर्षशब्दादिविषयात्मकं।
वृन्दावनं कुसुमितं नानावृक्षविहंगमैः।
संस्मरेत्साधको विद्वान्विलासैकनिकेतनं
तत्र सिंहासने रम्ये नानारत्नमये सुखे।
धर्मार्थकाममोक्षाख्य चतुःपादे विराजिते॥
ब्रह्मविष्णुमहेशानां शिरोभूषणभूषिते।
यत्र प्रेमभराक्रान्तं किशोरं पीतवाससमिति

वायुपुराणे— चत्वारिंशद्योजनानां ततस्तु मथुरा स्मृता।
यत्र देवो हरिः साक्षात्स्वयं तिष्ठति सर्वदा॥
वत्सैर्वत्सतरीभिश्च सदा क्रीडति माधवः॥२०॥

श्री भागवत में यथा—मथुरापुरी है जहाँ नित्य श्रीहरि स्थित है। स्वायम्भुवागम में ८५ पटल गोपालध्यान प्रस्ताव में कहा है कि तदनन्तर ऊर्द्धरेतस मुनियों का निर्वाण पदवी स्थान है आगे परम व्योम धाम है जहाँ देवता गण, नित्य हैं। तदनन्तर यथाक्रम से अनिरुद्धलोक, प्रद्युम्न लोक, संकर्षणलोक, तथा वासुदेवलोक का स्मरण करे। तदनन्तर यमुना ध्यान वर्णन पूर्वक वृन्दावन का वर्णन है। स्वात्मानन्द सुख पराकाष्ठा मय शब्दादि विषयात्मक वृन्दावन है। नाना वृक्ष तथा पक्षियों से युक्त, विलास मन्दिर है। इस तरह साधक चिन्तन करे। वहाँ नाना रत्नमय सिंहासन विराजित है, धर्म, अर्थ, काम मोक्ष सिंहासन के चारिपाद है। ब्रह्मा, विष्णु, महादेव के शिरोभूषण का भूषण है। जहाँ पर प्रेमाक्रांत, पीताम्बरधारी, किशोर, श्रीकृष्ण विराजित हैं।

श्रुतिश्च । तां वां वास्तून्युष्मसि गमध्यै यत्र गावो भूरिशृंगा अयसाः अत्राहनदूरुगायस्य वृष्णः परमं पदमवभाति भूरि तां तानि-वां रामकृष्णयोः वास्तूनि लीलास्थानानि यद्वा वां श्रीराधाकृष्णयोः तानि वास्तूनि गोकुलसम्बन्धीति वस्तूनि प्रसादत्वेन गमध्यै प्राप्तुम् उष्मसि कामयामहे । तच्छब्दार्थमाह । यत्र गोकुले भूरिशृंगाः दीर्घशृंगा गावः सन्तीति शेषः कथंभूताः अयसः शुभरुपा अयः शुभावहो विधिरिति कोशः अत्र स्थाने भूमौ तत् लोकवेदप्रसिद्धं गोकुलं उरुगायस्य बहुकीर्त्तेः श्रीकृष्णस्य वृष्णः प्रियासु कामान् वर्षतीति वृषा तस्य षष्ठ्या वृष्णः तत् गोकुलपदं स्थानं भूरि अधिकतरं वैकुण्ठादपि अधिकं अवभाति प्रकाशते कीदृशं परमं प्रकृतिकालातीतत्वेनातिप्रियत्वेन च श्रेष्ठं ॥ तैत्तिरियकेऽपि पठ्यते । —ते ते धामान्युष्मसि गमध्ये गावो यत्र भूरिशृंगा अयासः अत्राहनरूरुगायस्य विष्णोः परमं पदमवभाति भूरेः ते तव ते तानि धामानि

वायुपुराण में-४०योजन परिमाण की मथुरा हैं । जहाँ श्रीहरि साक्षात् रहते हैं वत्स, वत्सतरी प्रभृति द्वारा निरन्तर क्रीड़ा करते हैं ॥२०॥

श्रुति-हम सब रामकृष्ण के लीलास्थल किम्वा श्रीराधाकृष्ण के गोकुल सम्बन्धि वस्तुओं की प्रसन्नता पूर्वक प्राप्ति के लिये कामना करते हैं । जिस गोकुल में कल्याणरुपा दीर्घशृंग की गौं रहती हैं । इस भूमि में बहुकीर्त्ति श्रीकृष्ण के लोकवेद प्रसिद्ध प्रियाजन की कामना पूरण कारी वैकुण्ठ से भी अधिक गोकुल नामक स्थान विराजित है । जो कि प्रकृति और कालादिओं से अतीत होने से

स्थानानि कुञ्जयमुनागोवर्द्धनादीनि गमध्यै प्राप्तुं उश्मसि कामयामहे। भूरेः रासोत्सवे बहुत्वेन प्रकटितस्य। शेषं पूर्ववत्॥ २१ ॥

पाद्मे-- सत्यभामां प्रति श्रीकृष्णवाक्यं।

एते हि यादवाः सर्वे मद्गुणा एव भामिनि।
सर्वदा मत्प्रिया देवि! मत्तुल्यगुणशालिनः॥

श्रीदशमे- अहोभाग्यमहोभाग्यं नन्दगोपव्रजौकसाम्।
यन्मित्रं परमानन्दं पूर्णब्रह्मसनातनं॥

अथोद्दीपनविलास-उद्दीपनविभावास्ते रसमुद्दीपयन्ति ये।
उद्दीपनाश्चतुर्धास्युरालम्वनसमाश्रयाः॥
गुणचेष्टालंकृतयस्तटस्थाश्चेति भेदतः॥

तथा परमप्रियता के कारण श्रेष्ठ है। तैत्तिरियकउपनिषद् में भी कहे है। हम यह यह धाम समूह प्राप्ति के लिये कामना करते हैं। जहाँ शुभरूपा, दीर्घशृंगा गौ आँ है। और जहाँ पर आप उरुगाय कृष्ण के परम स्थान समूह विराजित है। उन कुञ्ज, यमुना, गोवर्द्धन प्रभृति स्थान समूहों की प्राप्ति के लिये कामना करते हैं। यहाँ पर भूरिशब्द का अर्थ रासोत्सव में बहुरूप प्रकाशकारी आपके॥२१॥

पद्मपुराण में सत्यभामाके लिये श्रीकृष्ण वाक्य-यथा-हे देवि! यह यादव गण मेरे सदृश गुणशालि और मेरे परम प्रिय है। श्रीदशमस्कन्ध में-श्रीनन्द, गोप तथा व्रज वासियों के अहो भाग्य हैं। जिनों के मित्र परमानन्द श्रीमाधव हैं॥ उद्दीपनविभाव- रस का उद्दीपन कारक उद्दीपनविभाव है। उद्दीपनविभाव, गुण, चेष्टा, अलंकृति, तथा तटस्थ भेदसे चारि प्रकार का है और आलम्बन का

तत्रालम्बनोद्विधा— श्रीकृष्णः प्रियवर्गस्य श्रितास्तत्तद्रसे वदामः।
श्रीकृष्णश्रिताः उच्यन्ते।

तत्र गुणाः— वयो रूपं च लावण्यं सौन्दर्य्यमभिरूपता।
स्मितं च सौकुमार्य्यं चेत्यालम्बनगता गुणाः॥

तत्रवयः— वयः कौमारपौगण्डकैशोरमिति तत्रिधा।
कौमारं पञ्चमाद्वान्त पौगण्डं दशमावधिः।
आषोड़शाच्चकैशोरं कृष्णोऽयं परमावधिः॥
धर्म्म एव हि कालोऽत्र तत्तद्रूपे सहायवान्।
अन्योन्यस्य सहायत्वं न तु कारणकार्य्यता॥
वात्सल्यविषयाकारी जानीता मधुरं रसं।
स्वस्मिस्तथापि हानिर्हि न स्यादन्यस्य संगतः।
वात्सल्ये हि अहं मातुः पुत्रोऽपि अस्याः पतिरिति
अहं पुत्रस्य मातापि पत्युःपत्नीति नविरोधः॥२२॥

आश्रय रूप है। आलम्बन-श्रीकृष्ण आश्रित, तथा प्रियवर्ग आश्रित भेदसे दो प्रकार का है। श्रीकृष्ण आश्रित आलम्बन कहते हैं। वयः, रूप, लावण्य, सौन्दर्य्य, अभिरूप, स्मित, सौकुमार्य्य, आलम्बन प्राप्त श्रीकृष्ण में गुण समूह हैं। कौमार, पौगण्ड, कैशोर भेदसे वयः तीन प्रकार है पांचसालतक कौमार,दश-वर्ष तक पौगण्ड,षोडशवर्ष पर्य्यन्त कैशोर है। कौमार पौगण्डादि का धर्म्म में काल ही सहाय कारी है। धर्म्म तथा कालका परस्पर सहायत्व जानना। किन्तु परस्पर कार्य्य कारणता नहि जानना। वात्सल्य रस में जो मधुर रस है सो अन्य संग से जानना। जैसे मैं माता का पुत्र हो ता हुआ

तत्रकौमारं-- कौमारंपञ्चमाद्वान्तं त्रैविध्यं तत्प्रकीर्त्तितं ।
मुख्यं मध्यं तथान्त्यं च कार्य्यमात्रविभेदतः ।

तत्रमुख्यं-- मातुराधीनता देहे पोषणे रक्षणे सुखे ।
रोदनस्यैव मुख्यत्वं मुख्यं कौमारमीष्यते ॥

यथा-- रुदन्तं सुतमादाय यशोदा गृहशंकिता ।
कृतस्वस्त्ययनं विप्रैः सूक्तैः स्तनमपाययत् ॥

मध्यं-- अव्यक्तोक्ति हुँ हुंकारो जानुपाणिगतिस्तथा ।
मातृहस्ते भुजं चैव कृतो स्वातन्त्र्यमेव च ।
धूलीधूसरता ह्यंगे मध्यं कौमारमिष्यते ॥

यथा-- जानुभ्यां सह पाणिभ्यां रिंगमाणौ विजहतुरित्यादि

चरमं-- पद्भ्यां गतिरनीतिश्च मातृतः कृतिगोपनं ।
मृद्भक्षणादिभिरुचिः कौमारं चरमं स्मृतं ॥

भी इस गोपी का पति हूँ। तथा मैं पुत्र की माता होती हुई भी पति की पत्नी हूँ। यहाँ पर अन्यसंयोग से विरोध नहीं है ॥२१॥

पांच साल पर्य्यन्त कौमार है। जोकि, मुख्य,मध्य, तथा अन्त्य भेदसे तीन प्रकार है शरीर के पोषण रक्षणादिक सब माता के अधीन, तथा रोना ही जिसमें सर्वस्व यह मुख्य कौमार है। यथा।- रोता हुए पुत्र को यशोदाजी ने लेकर डरती हुई विप्रगण द्वारा वेदमन्त्र से स्वस्त्ययन पाठ कराने लगी और दुग्ध(घुटने) पान कराई। अव्यक्तवचन, हूँहूँ कार, जानु तथा हाथोंसे गमन, माता के हाथकी अंगुली पकड़ना,कार्य्य में स्वतन्त्रता,अंगमें धूलि धूसरता प्रभृति कार्य्य विशिष्ट मध्य कौमार है। यथा।—दोनों भुजा के साथ

यथा-

वत्सान्मुञ्चन्क्वचिदसमये क्रोशसञ्जातहासः
स्तेयं स्वाद्वत्त्यथ दधिपयः कल्पितैः स्तेययोगैः।
मर्कान् भोक्ष्यन् विभजति स चेन्नात्तिभाण्डं भिनत्ति
द्रव्यालाभे सगृहकुपितो यात्युपक्रोश्य तोकान् ॥
वात्सल्यरससीमा हि मुख्ये कौमार इष्यते।
अन्यत्र गौणता ज्ञेया प्रीति स्तत्रापि वर्द्धते ॥२३॥

पौगण्डं प्रेयोरसे वक्ष्यते। अथ कैशोरं-यद्यपि किशोरे धर्म्मि धर्म्मभावो नास्ति तथापि शर्करामाधुर्य्ययोरिव गुणगुणिभावमाश्रित्योच्यते। तत्र किशोरः श्रीकृष्ण एक एव त्रैविध्यं तु लौकिककिशोरे आषोडशाब्दं कैशोरं तद्गुणान् प्रवदन्ति--यथा--

वर्णस्योज्वलता ह्यंगे नेत्रान्ते चारुणच्छविः।
रोमावली प्रकटता कैशोरे प्रथमे सति ॥
मूर्त्तामधुरमादृश्य च त्रिवले व्यंक्तिता तथा।
आस्वादयन्ति तान्भक्ता उज्वलस्यानुवर्त्तिनः ॥

जानु दोनों से रिंगण (घुटुअन) पूर्वक विचरण करने लगे। चरण से चलना, अनीति करना, माता से कार्य्य का गोपन, मृद्भक्षण में रुचि प्रभृति चेष्टाशाली शेष कैशोर है। श्रीकृष्ण असमय में वत्सों को खोलना, शोते हुए बालकों को रोवाना, अपने घर किम्बा गोपीयों के घर पर छिप कर दहि खाना, बालक तथा बन्दरों को खिलाना पीछे दहि का भाण्ड फोड़ देना प्रभृति कर्म्म करने लगे ॥ मुख्य कौमार में ही वात्सल्य रसकी सीमा जानना, अन्यत्र गौण है परन्तु गौण में भी प्रीति बढ़ती है ॥२३॥

केचित्तक्तानि चिन्हानि त्रिविधं योजयन्ति हि।
त्रिधा तेनैव संप्राहुः कैशोरं लोकदृष्टितः॥

यथा-वीक्ष्यालकावृतमुखं तव कुण्डलश्रीगण्डस्थलाधरसुधं हसितावलोकं दत्ताभयं च भुजदण्डयुगं विलोक्य वक्षःश्रियैकरमणं च भवाम दास्यः।

प्रथमं— अलङ्कृतिरलंकार्य्यं येन तद्रूपमुच्यते॥

यथा— कृष्णस्य भूषणततिर्मधुरांगमूर्त्तेः
संसर्गतो लभत पुष्पगतं हि भावं।
तत्सेवनात्पुनरभूदपि भूषणत्वं
पश्चादगादुभयतां सखि नातिचित्रं॥ २४॥

पौगण्ड अवस्था सख्यरस में वर्णन होगी। अब कैशोर वर्णन करते हैं॥ नित्य कैशोर के कारण यद्यपि कैशोर में धर्म्मी धर्म्मभाव नही है तो भो शंका तथा उसके माधुर्य्य की तरह गुण गुणीभाव लेकर वर्णन करते हैं। श्रीकृष्ण नित्य एककिशोर अवस्था से युक्त हैं। त्रिविध भेद किन्तु व्यवहारिक किशोर अवस्था में जानना। सोल साल पर्य्यन्त कैशोर है। अब कैशोर गुणसमूह वर्णन करते हैं। अंग में वर्ण की उजलाई नेत्रसीमा में अरुण छवि, रोमावली की प्रकटता प्रथम कैशोर में है। उज्वलरसानुयायीभक्तगण प्रथम मूर्त्ति की मधुरिमा पीछे त्रिवली का प्रकाश आस्वादन करते हैं। कोई२ उक्त चिन्ह समह को तीन प्रकार भेद से योजना करते हैं। इसलिये लोकदृष्टि से कैशोर के तीन भेद हैं। यथा अलक आवृत मुख, कुण्डल द्वारा शोभा प्राप्त गण्ड, अधरसुधा, हास्यावलोकन, अभयदाता भुजयुगल, लक्ष्मी की विलास

लावण्यं ।— मुक्ताफलेषु छायायास्तरलत्वमिवान्तरा
प्रतिभाति यदंगेषु लावण्यं यदिहोच्यते ॥

यथा ।— कृष्णस्य कोमलांगेषु दर्शनीयेषु जृम्भते ।
अमला कोमला कान्ति ज्योत्स्नेव प्रतिबिम्बिता ॥

यथा वा ।— गोविन्दचन्द्रकान्त्या पुरतः सखि पुण्डरीकाणि ।
तपनतनूजापुलिने नलिनायन्ते विचित्रमिदं ॥

सौन्दर्य्यं ।— अंगप्रत्यंगकानां यः सन्निवेशो यथोचितं ।
सुश्लिष्टसंबन्धः स्यात्तत्सौन्दर्य्यमुदीर्य्यते ॥

यथा ।— मुखं तद्दीर्घाक्षं मरकततटीपीवरमुरो
भुजद्वन्द्वं स्तम्भद्युतिसुवलितं पार्श्वयुगलं ।
परिक्षीणो मध्यः प्रथिमलहरीहारिजघनं
न कस्याः कंसारे हरति हृदयं पंकजदृशः ॥

भूमि वक्षः देखकर हम सब गोपीयाँ दासी हो रही हैं। अलकार का प्रयोग ही अलं (वृथा) उसको रूप कहते हैं। हे सखि मधुर मूर्त्ति श्रीकृष्ण के अंग में अलंकार सकल वृथा है। अलंकार समूह श्रीकृष्ण की सेवा करके अलंकार आख्या पाते हैं ॥ २४ ॥ मुक्ताफल कान्ति की तरलता की तरह अंग समूहों में जो प्रतीति है वह लावण्य है। दर्शन योग्य श्रीकृष्ण के कोमल अंग समूह दर्शन करने पर प्रतिबिम्बित ज्योत्स्ना की कोमल कान्ति प्रतिति होती है। यथा वा।—हे सखि आगे जमुनापुलिन में पद्मसमूह श्रीगोविन्दचन्द्र के कान्ति से कुमुदिनी सदृश हो रहे हैं यह विचित्र है। अंग प्रत्यंगों का यथोचित सन्निवेश ही सौन्दर्य्य

यथावा ।— आस्यं शारद शर्व्वरीशसदृशं बाले विशालदृशी
भ्राजेते भुजंगेन्द्रभोगसुख-सौभाग्यभाजौ भुजौ,
वक्षो दक्षतरं कपाटपटलं शोभातिरो-स्कारिणी
तत्सौन्दर्य्य सुधानिधि विजयते गोविन्दचन्द्रःपुरः॥

अभिरूप्य — यत्रात्मीयगुणोत्कर्षै वस्तत्वन्य न्निकटं स्थितं ।
सारूप्यं नयति प्राज्ञैरभिरूप्यं तदुच्यते ॥

यथा— नोद्धवोऽणवपि मन्न्युनो यद्गुणै र्नार्दितः प्रभुः।
अतो मद्वयुनं लोकं गाहयन्निहतिस्वतु ॥ २५ ॥

अथ स्मितं— स्मितं त्वलक्ष्यदशनं दक्कपोलविकाशकृत ।

यद्वा— ईषद्विकसितैर्गण्डैः कपोलैः सौष्ठवान्वितैः ॥

यथा — अखण्डनिर्वाणरसप्रवाहै र्विखण्डिताशेषरसान्तराणि
अयन्त्रितोद्वान्तसुधार्णवानि जयन्ति शीतानि तव स्मितानि ॥

है। यथा कृष्णका दीर्घनेत्र विशिष्ट मुख, मरकतशिला का सदृश विस्तार वक्ष, स्थूल मरकत स्तम्भसदृश भुज युगल, क्षीणकटी, विस्तारित जंघा, देख कर कौन रमणी का हृदय हरण नहि होता है। यथावा।— हे बाले शारच्चन्द्रमा तुल्य मुख, विशाल नेत्र, सर्प राज के शरीर तुल्य भुजा तथा कवाट समूह की शोभा तिरस्कारि वक्षः है। आज सौन्दर्य्य सागर श्रीकृष्ण आगे विराजमान है। जब आत्मसम्बन्धि गुणों से निकटस्थित वस्तु को आपना सारूप्य करते हैं विज्ञगण उसको अभिरूप्य कहते हैं। यथा।— उद्धव मेरे से अणु मात्र ही न्यून नहीं है।

अथसौकुमार्य्यं— यत्स्पर्शासहतांगेषु कोमलस्यपि वस्तुनः ।
तत्सौकुमार्य्यं विख्यातं मार्द्दवं त्वपरं विदुः ॥

यथा— यत्ते सुजातचरणाम्बुरुहं स्तनेषु
भीताः शनैः प्रियदधीमहि कर्कशेषु ।
तेनाटवीमटसि तद्व्यथते न किंस्वित्
कूर्पादिभिर्भ्रमति धीर्भवदायुषांनः उत्तरार्द्धं

अथ चेष्टा— देहेन्द्रियक्रियाचेष्टा तत्तद्भावानुसारतः ।
तास्तु रासादिलीला सा तथा कंसवधादिच ॥ तांच
तत्तत्प्रकरणे वक्ष्यामः

अथालकृति— चतुर्द्धालंकृति र्वासो भूषामाल्यानुलेपनैः ।

तत्रवासः— नारंगस्य हरिद्रागाः काश्मीरस्यापि संनिभं ।
कृष्णस्य नियतं वासो न स्यागोऽस्यान्यधारणे ।
युग्मं चतुष्कं षट्कं च भूयिष्टं परिकीर्त्तितं ॥

तत्रयुग्मं— संव्यानं परिधानं च युग्मरुग्मुदीरितं ।
भोजनादौ सुप्रसिद्धं चतुष्कं नृत्यभेदगं ॥ ३६ ॥

दन्त का अलक्ष्य रहना नेत्र तथा कपाल का विकाश 'स्मित' है । किम्वा गण्ड का ईषत् विकास, कपोल की सौष्ठवता स्मित है यथा ।—अपर्य्याप्त निर्वाण रस धाराओं से अशेष अन्यरस समूह तिरस्कारि, निरन्तर सुधासमुद्र उद्गारण शील शुभ्रवर्ण आपके स्मित समूह जय प्राप्त हो । अत्यन्त कोमल वस्तु के संलग्न से अंग की जो असह्यता है यह सौकुमार्य्य है । अपर कोई कोई मार्द्दव के लिये सौकुमार्य्य कहते हैं । आपके सुन्दर चरण कमल जिनको

चतुष्कं— शिरोवेष्टनं भेदश्च द्वयं वक्ष्याश्रयं तथा।
उत्तरीयं तथा ज्ञेयं चतुष्कं परिकीर्त्तितं।
भाषया काछ-चोलना-टिपारो उपरेना

षट्कं— तुन्दबन्धो घटी चेति कञ्चुकं कटिवेष्टितं।
अंगाच्छादनकोष्णीषे लास्यादौ षट्कमीरितं॥

यथा— अम्बरमम्ब नितम्बे लुण्ठतपुरतद्युतिप्रकटं।
नवरुचितृछवि तदुपरिदधदम्भोजलोचनो जयति॥

पुरटवहुलशोभानिन्दिवस्त्रं नितम्बे
ह्युपरि च नवमर्कं निन्दयन्संदधानः।
प्रतिनिधिमिव सर्वं रागकान्त्यदिवर्णां
प्रणयतु सुदृशो मेऽभीष्टपुरं मुरारिः॥ इत्याद्युह्य

हम सब स्तनों में धीरे से भी रखने में डरते हैं ऐसे आप मुक्तपादुक वन-वन में भ्रमण करते हैं। काँटे तथा तृणों से क्यों व्यथा नहीं होती, और आपही जीवन जिनके ऐसी हम सबों हृदय में क्या व्यथा नहीं होती। देह तथा इन्द्रियों के क्रिया ही चेष्टा है। रासादिलीला तथा कंसवधादिक जानना। वास, भूषा, माला, अनुलेपन भेद से अलंकृति चार प्रकार है। नारंगी के समान पीतरंग तथा काश्मीर की कान्ति के सदृश श्रीकृष्ण का वस्त्र है, और वस्तु धारण में भी परित्याग नहीं होता है। युग्म, चतुष्क, षट्क तथा भूयिष्ठ भेद से वस्त्र चार प्रकार के हैं। दो वस्त्र परिधान ही युग्म है यह भोजनादिकों में प्रसिद्ध हैं। चतुष्क नृत्यादिकों में व्यवहृत हैं॥ २६॥

अथ भूषा द्विविधा—आकल्पं मण्डलं भूषा द्विधा सा परिकीर्त्तिता।

आकल्पं— नियोंग पाशपत्रं च लगुडं गैरिकादिकं।

शृंगवंश्यौ तथा पिञ्छं गुञ्जेत्याकल्पमिष्यते॥

नियोंगपाशौपकृतलक्षणयो विचित्र गोवत्सयोः पानबन्धनरज्जुः। गवां धर्षणार्थं पाशः यथा श्रीदशमे "नियोंगपाशकृतलक्षणयोर्विचित्र" पत्रं वादित्रार्थं भूषणार्थं च प्रसिद्धमेव। लगुडं वेत्रं त्रिहस्तं गैरिकादिकं आरक्तवर्णादिप्रसिद्धमेव॥ २७॥

शृंगं— शृंगं तु माहिषं ह्याजं गावयं मार्ममित्यपि।

अग्रपश्चान्निबद्धं तु हेमरत्नैस्तु त्रिविधा॥

दो प्रकारका शिरोवेष्टन कटिवेष्टन, तथा उत्तरीय भेद से चतुष्क चारिप्रकार हैं। भाषा में क्रम से काछनी, चोलना, टिपार, उपरेना नाम से प्रसिद्ध है। तुन्दबन्ध, घटी, कञ्चुक, कटिवेष्ठन, अंगाच्छादन, उष्णीष, पट्क है, लास्यादिओं में व्यवहृत है। हे अम्ब! सुवर्णकान्तिप्रकाशि वस्त्र नितम्बदेश में तथा उसके उपरान्त नवीनसूर्य्य की कान्ति के बराबर वस्त्र धारण पूर्वक कमल लोचन श्रीकृष्ण जय युक्त हो रहे हैं। आकल्प, मण्डल भेद से भूषा दो प्रकार है। नियोंग, पाशपत्र, लगुड़, गैरिकादिक, भृंग, वँशी, पिञ्छ, गुञ्जा, आकल्प है। गौओं को वान्धने के लिये पाश है। दशम में कहा कि—नियोंगपाशदिलक्षणों से विचित्र हो कर। पत्र-बजाने के लिये तथा भूषणादिओं के लिये जानना। तीन हस्त परिमाण वेत्र लगुड़ है। इषद् रक्तिमादि गुणयुक्त गैरिकादिक है॥ २७॥

अथ वंशी— वंशी तु त्रिविधा प्रोक्ता मुरली वेणुवंशिका ।

तत्रमुरली— हस्तद्वयमितायामा मुखरन्ध्रसमन्विता ।

चतुःस्वरा च्छिद्रयुक्ता मुरली चारुनादिनी ॥

अथवेणुः— द्वादशांगुलदीर्घस्तु स्थौल्येऽङ्गुष्ठमितस्तथा ।

षड्भिरन्ध्रैः सुसंयुतो वेणुरित्यभिधीयते ॥

वंशी— शिरो वेदांगुलिमितं पुच्छमंगुलिभिस्त्रिभिः ।

नवच्छिद्रान्विता वंशी तारघोषप्रवर्त्तिका

अंगुलैः सप्तदशभिः परिच्छिन्ना बुधैर्मता ॥

अथपिच्छं— चन्द्रकध्वजदण्डैश्च स्तबकैः पिच्छं चतुर्विधं ।

स्वतन्त्रैरन्यमिश्रैर्वा कल्पते रसिकैर्मता ॥

गुञ्जाप्रसिद्धैव— "विभ्रद्वेणुं जठरपटयोः शृंगवेत्रे च कक्षे

सर्वोदाहरणं— वामे पाणौ मसृणकवलं तत्फलान्यंगुलीषु ।

तिष्ठन्मध्ये स्वपरिसुहृदो हासयन्नर्मभिः स्वैः

स्वर्गेलोके मिषति बुभुजे यज्ञभुग्बालकेलिः ॥ ८८ ॥

आगे तथा पीछे हेम और रत्न से खचित माहिष सम्बन्धी अज तथा गौ सम्बन्धी त्रिविध शृंग है। मुरली, वेणु, वंशिका भेद से वंशी तीन प्रकार है। चारि स्वर तथा चारि छिद्रों से युक्त, मुख में छिद्र विशिष्ट, दो हात परिमाणक मुरली है तथा सुन्दर नाद-शाली है। दीर्घ में द्वादश अंगुल, एक अंगुल स्थूल में तथा षड् रन्ध्र से युक्त वेणु हैं। शिरो भाग चारि अंगुल, पुच्छ तीन अंगुल नवछेद युक्त वंशी है तथा सप्तदश छेद से युक्त घोर शब्द शाली है। चन्द्रक, ध्वज, दण्ड, छाल से पिच्छ चतुर्विध है। वे सब स्वतन्त्र

यथा वा ।— नौमीड्य तेऽभ्रवपुषे तडिदम्बराय
गुञ्जावतंसपरिपिच्छलसन्मुखाय ।
वन्यस्रजे कवलवेत्रविषाणवेणु
लक्ष्मीश्रिये मृदुपदे पशुपांगजाय ॥

अथ मण्डनं ।— मण्डनं रत्नहेमाभ्यां वस्त्रपुष्पैश्च त्रिधा ।
हारांगुलीयवलयचतुष्कीनूपुराणि च ।
किरीटकुण्डले चाथ केयूराद्यं च मण्डनं ॥

माल्यं पुष्पमालादि । अनुलेपनं चन्दनादि प्रसिद्धमेव । अथ तटस्थाः गवांक क्षेत्र तुलसी भक्तास्तच्छ्रवद इत्यपि । गो लिखित

तथा अन्य द्वारा मिश्रित हो कर व्यवहृत है । गुञ्जा प्रसिद्धि है । यथा ।—जठरपट में वेणु, कक्ष में शृंग तथा वेत्र, वामहस्त में अन्नग्रास अंगुलीयों में फलादि धारण पूर्वक अपने सुहृद सखा मण्डलीओं के मध्य में विराजित हो कर नर्म्म परिहास द्वारा अपने सखा गणों का हर्ष प्रदान पूर्वक बालक्रीडा कर रहे हैं ॥ ८८ ॥

हे पूज्य ! मेघ का सदृश शरीर, विद्युत वस्त्र, गुञ्जा, अवतंस तथा पिच्छादिओं से शोभित मुख वनमाला धारी कवल वेत्र-विषाण, तथा वेणु चिन्ह से शोभित, कोमल चरण पशुपालक गोपबालक आपको नमस्कार करता हुँ, रत्न तथा सुवर्णों से और वृक्षलता के छाल, तथा पुष्पों से मण्डन निर्माण होता है। हार, अंगुलीय, वलय, चतुष्की, नूपुर, किरीट, कुण्डल, तथा केयूरादि समूह मण्डन है । पुष्प मालादिक माल्य है । चन्दनादि अनुलेप है । गो चिन्ह, क्षेत्र, तुलसी, तथा भक्तसमूहों के और इन सबों के श्रवण तटस्थ है ।

श्रीकृष्णपदाङ्क श्रीमधुपुरी तुलसी भक्तानां दर्शनात्। तेषां शब्दश्रवणाच्च भक्तिरसस्योद्दीपनं भवति उदाहरणं तु प्रकटमेव विस्तरभयान्न लिख्यते॥ २६॥

इति भक्तिरसतरंगिण्यां श्रीनारायण
भट्टविरचितायां भक्तिरसोद्दीपन
नाम द्वितीयोल्लासः॥

अथ सात्विकाः— कृष्णतद्भक्तसम्बन्धाक्रान्तचित्तमिहोच्यते।
सत्वं तत्प्रभवा ज्ञेयाः सात्विकाः सात्वतैर्मताः॥

ततश्च भगवत्सम्बन्धविशिष्टमन्तःकरणं सत्वमिति फलितोऽर्थः।

ते च — स्तम्भः स्वेदोऽथ रोमाञ्चः स्वरभंगोऽथ वेपथुः।
वैवर्ण्यमश्रुप्रलय इत्यष्टौ सात्विकाः स्मृताः।
ते द्विधा सुविनिर्दिष्टाः मुख्यगौणतया बुधैः।

गो चिन्ह, श्री कृष्णचिन्ह, श्री मधुपुरी, तुलसी, तथा भक्तों के दर्शन तथा श्रवण से भक्तिरसका उद्दीपन होता है। उदाहरण स्पष्ट है। विस्तरभयसे नहि लिखे गये॥ २६॥

कृष्ण तथा तद्भक्तों का सम्बन्ध से आक्रान्त चित्त सत्व है। उस से उत्पन्न सात्विक है। भगवत्सम्बन्ध विशिष्ट अन्तःकरण सत्व है फलितार्थ।—स्तम्भ, स्वेद, रोमाञ्च, स्वरभगं, वेपथु, वैवर्ण्य अश्रु, प्रलय भेद से अष्ट सात्विक भाव है। फिर प्रत्येक मुख्य, गौण भेदसे द्विधा है। भक्ति में मुख्य तथा भक्तिका आभास में गौण है। ऐक्याभिलाष ज्ञानियों के सदाहि भक्त्याभास जानना। सालोक्यादि मुक्तियाँ अभिलाष कारी भक्तों में सात्विकांश है।

भक्तौ मुख्यस्तु विज्ञेया भक्त्याभासे गुणाः स्मृताः ।
ऐक्याभिलाषिणो ज्ञेयो भक्त्याभासः सदैव हि ।
सालोक्याद्यभिलाषे तु सात्विकांशः प्रकीर्त्तितः ॥
पूर्णः सात्विकसिन्धुस्तद्रसज्ञेष्ववतिष्टति: ॥

अत्र स्तम्भाः — स्तम्भश्चेष्टाप्रतीघातो हर्षामर्षविषादतः ।
भयादद्भुतादितश्चैव सिद्धसाधकयोः समः ।
अनुभावास्तु विज्ञेया स्तम्भस्यापि सुबुद्धिभिः ।
वाक्यनिर्म्माणराहित्यं शून्यता निः प्रकम्पता ॥

हर्षाद्यथा ।—यस्यानुरागप्लुतहासरासलीलावलोकप्रतिलब्ध मानाः
व्रजस्त्रियो दृग्भिरनुप्रवृत्तधियोऽवतस्थुः किल कृत्य शेषाः

अमर्षाद्यथा । — यदुपतिनिन्दकवदनं पुरतः प्रसमीक्ष्य चेदिपं पार्थः ।
अतिशयरोषज्वालावलीढ चित्रोऽगमज्जडतां ॥ १ ॥

विषादाद्यथा— कालियवलितशरीरं धीरं नीराशयस्थितं वीक्ष्य ।
गोकुललोकाः शोकाकुलमनसस्तं भमम्यायुः ॥

किन्तु केवल रसज्ञ भक्तों में परिपूर्ण सात्विक समुद्र जानना ॥ हर्ष, अमर्ष, विषाद, भय, तथा अद्भुत भावों से चेष्टा की प्रतीघात स्तम्भ है । और वाक्यनिर्म्माणशून्य, शून्यता, निष्कम्प प्रभृति अनुभाव जानना । हर्ष से तथा ।—जिनके अनुराग परिप्लुत हास्यु,रासलीला सुख नेत्र से दर्शन प्राप्त हो कर व्रजस्त्रियाँ समस्त क्रिया से रहित हो कर बुद्धि शून्या हो गई । अमर्ष-अर्जुन ने यदुपति निन्दक, शिशुपाल को समक्ष में देख कर अत्यन्त रोषरूपी अग्नी से मुग्ध हो कर जड़ता के लिये प्राप्त हो गये ॥ १ ॥

भयाद्यथा— चाणूरमुद्धतमवेद्य तदा जनित्री
कृष्णं प्रति प्रतिभटं भिदुराभमग्रे ।
पूर्वं स्वयं जड़तया परिरम्भिताभू
न्नात्मानमस्मरदथ व्यथिता भयेन ॥

अद्भुताद्यथा— मुरलीनादविनोदे विस्मितहृदया व्रजाम्बुजाक्षी।
निर्निमेषदृगयुग्मा चित्रस्थितपुत्रिकेवासीत् ॥

अथस्वेदः— हर्षश्रमभयक्रोधैः क्लेदः स्वेद इहोच्यते ।
व्यजनग्रहणादिस्तु ह्यनुभावः प्रकीर्त्तितः ॥

अथरोमाञ्चः— रोमाञ्चो विस्मयोत्साहहर्षादयैस्तत्र विक्रिया ।
रोमोद्गमो भ्रमोल्लासगात्रसंस्पर्शनादयः ॥

अथस्वरभंगः— विषादविस्मयामर्षहर्षभीत्यादिसम्भवं ।
वैस्वर्यं स्वरभंगः स्यात् श्रीकृष्णरसभावगं ॥

अथवेपथुः— कृष्णतद्भक्तसम्बन्धे वित्रासामर्षहर्षतः ।
वेपथुर्गात्रकम्पः स्याद्भक्तस्यैव यथायथं ॥

आज गोकुल वासी कालियनाग से वेष्टित निराश्रय के सदृश स्थित, धीर श्रीकृष्ण को देखकर शोकाकुल स्तम्भ जड़ता के लिये प्राप्त हुए। कृष्ण के लिये आक्रमणशाली उद्धत चाणूर मल्ल को देखकर जनित्री देवकी पहिले से ही जड के सदृश हो गई थी। पीछे भय से व्यथित हो कर आपना के लिये भी भूल गई। मुरली शब्द विनोद में विस्मित हृदया व्रजकमलाक्षी श्रीराधा, पलकशून्य नेत्र पूर्वक चित्रस्थित प्रतिमा की सदृश हो गई। हर्ष, श्रम, भय तथा क्रोधों से शरीर का क्लेद स्वेद है तथा व्यजन ग्रहणादि

अथवैवर्ण्यं— विषादामर्षभीत्यादेर्वर्णान्यत्वं विवर्णता ।
तत्रानुभावा भक्तेषु कार्श्याद्याः परिकीर्त्तिताः ॥२॥

अथाश्रुः— विषादरोषहर्षाद्यैरश्रुनेत्रजलोद्गमः ।
शीतं हर्षाश्रु विज्ञेयमुष्णं क्रोधादिजं विदुः ॥
सर्वत्र नयनक्षोभरागसंमार्जनादयः ॥

अथप्रलयः— प्रलय सुखदुःखाभ्यां चेष्टा ज्ञाननिराकृतिः ।
तत्रानुभावा भक्तेषु महीनिपतनादयः ॥
अन्तः करणजन्यत्वात्सर्वे भावास्तु सात्विकाः ।
तथाप्यमीषां सत्वैकमूलत्वात्सात्विकप्रथा ।
ते भावास्तु चतुर्भेदाः कचिद्धूमायिता मताः ।
कचित्तूज्वलिता दीप्ताः कचिदुद्दीपितास्तथा ।

अनुभाव है। विस्मय, उत्साह, हर्षों से विक्रिया रोमाञ्च है, रोमोद्गम, भ्रम, उल्लास, गात्रसंस्पर्श प्रभृति अनुभाव है। विषाद, विस्मय, अमर्ष, हर्ष, भयादिकों से उत्पन्न वैस्वर्य्य स्वरभंग है। विशेष भय, अमर्ष, हर्ष से कृष्ण तथा तद्भक्त सम्बन्ध में गात्रकम्प वेपथु है। विशाद, अमर्ष भीतीओं से वर्णका अन्य प्रकार विवर्णता है कृशता प्रभृति अनुभाव भक्तों में परिकीर्त्तित है ॥ २ ॥

विषाद, रोष, हर्षादिओं से नेत्र में जलका उद्गम 'अश्रु' है। हर्षाश्रु शैत्य तथा क्रोधादि से जात 'अश्रु' उष्ण है। नयनक्षोभ, ज्वलन, तथा मार्जन प्रभृति अनुभाव हैं। सुख दुःखों से ज्ञाननिराकरण चेष्टा 'प्रलय' है। महीपतनादिक अनुभाव भक्तों में होते हैं। अन्तः करण जन्य होने से समस्त भाव सात्विक हैं। तो भी

अथधूमायिता:- मिलिता अद्वितीया वा यत्रेषद्व्यक्तिमागताः ।
अपन्होतुं हि शक्या ये ते भावा धूमसंज्ञिताः ॥

अथज्वलिता:-- द्वित्रास्तु युगपद्याति प्राकट्यं सुविविक्तिमत् ।
शक्याऽकष्टेन निन्होतुं ज्वलितत्वेन कीर्त्तिताः ॥

अथदीप्ता:- चत्वारः पञ्च वा यत्र प्रौढ़ावस्थां यदागताः ।
संवरीतुमशक्याश्च दीप्तास्ते परिकीर्त्तिताः ॥

अथउद्दीप्ता:-- एकदा व्यक्तिमापन्नास्तम्भाद्याः सर्वएवहि ।
परमोत्कर्षतां नीता उद्दीप्ताः परिकीर्त्तिताः ॥३॥

अथसत्वाभासः— ब्रह्मज्ञ कर्मठौ श्रुत्वा श्रीकृष्णस्य विचेष्टितं ।
शुष्कब्रह्मक्रियात्मानौ बिभ्रतः पुलकं बहु ॥

अथनिः सत्वाः— निसर्गसार्द्र हृदये तदभ्यासपरेऽपि च ।
सत्वाभासं विनापि स्युः काप्यश्रुपुलकादयः ॥

सत्वैक मन से सात्विक प्रथा जानना। धूमायित, उज्वलित, दीप्त, उद्दीपित भेदसे सात्विक भाव चारिप्रकार उक्त हैं। एक, किम्वा दो, भाव ईषद् प्रकाशित प्राप्त हो कर गोपन करने के योग्य हों तो यह धूमायित है। एक समय ही दो किम्वा तीन भाव प्रकाश होकर कष्ट पूर्वक गोपन न होए तो ज्वलित है। चारि, किम्वा पाञ्च, भाव प्रौढ़ा अवस्था को प्राप्त होकर, गोपन करने में अशक्त हों तो दीप्त है। समस्त सात्विक भाव एक ही समय प्रकाश हो कर परम उत्कर्षता को प्राप्त हों तो उद्दीप्त हैं ॥३॥

ब्रह्मज्ञ तथा कर्म्मपटु ने श्रीकृष्ण की चेष्टा समूह शुन कर, शुष्कब्रह्म तथा क्रियाशील होने पर भी बहु पुलक समूह धारण

अतीवमृदुतां प्राप्ताः गृहस्था अपि केच न ।
श्रीरामविरहं श्रुत्वा रुदन्त्येव स्वभावतः ॥
नटो भक्तिविहीनोऽपि म्रियतेऽभ्यासपाटवात् ।
पितृरूपानुकारेण श्रीरामगमने सति ॥
प्रतारकेऽपिदृश्यन्ते कम्पादया योषिदादिके ।
चित्रकेताः पुत्रनाशे यथा स्त्रीणां विचेष्टितं ।

अथ प्रतीपाः— श्रीकृष्णस्यारिपक्षेषु प्रतीपाः परिकीर्त्तिताः ।
यथा श्रीकृष्णविषयक क्रोधादिना कंसादिषु कम्पादयः ॥

अथव्यभिचारिणः—विभीइत्युपसर्गौ द्वौ विशेषाभिमुखत्वयोः ।
विशेषेणाभिमुख्येन चरन्ति स्थायिनं प्रति ।
वागागसत्वयुक्ता ये ज्ञेया स्ते व्यभिचारिणः
सञ्चारयन्ति भावस्य गतिसञ्चारिणोऽपि ते॥४॥

करने लगे । बिना सत्वाभास से भी कहीं अश्रु पुलकादि होते हैं । कोई कोई अत्यन्त मृदु प्राप्त गृहस्थ गण भी श्रीरामचन्द्र जी का विरह सुनकर रोते हैं । भक्ति हीन नट भी अभ्यास पटुता वशतः मरण अवस्था प्राप्त होता है । श्रीराम जी का बन-गमन से पिता दशरथ रुप अनुकारी प्रतारक व्यक्ति में भी कम्पादि देखने में आये हैं । स्त्री आदि नाट्य कारों में भी कम्पादि भाव देखने में आये हैं । चित्रकेतु का पुत्र मरने पर जैसी स्त्रियों की चेष्टा हुई । बैरीयों में प्रतीप भाव है । जैसे श्रीकृष्ण विषयक क्रोधादि से कंस प्रभृति बैरीओं में कम्पादि भाव हैं । वि, तथा ऽभि दो उपसर्ग हैं। विशेष तथा अभिमुख से स्थायि के लिये चलते हैं तथा वागंगसत्व

निर्वेदोऽथविषादो दैन्यं ग्लानिश्रमौ च मदगर्व्वौ।
शंकात्रासावेगा उन्मादापस्मृती तथा व्याधिः ॥
मोहो मृतिरालस्यं जाड्यं व्रीडावहित्था च।
स्मृतिरथ वितर्कचिन्तामतिधृतयो हर्षउत्सुकत्वञ्च ॥
औग्र्यामर्षासूयाश्चापल्यञ्चैव निद्रा च।
सुप्तिर्बोध इतीमे भावा व्याभिचारिणः समाख्याताः ॥

अथ निर्वेदः— विवेकार्त्तिप्रवासेभ्यः ईर्ष्यया च प्रकल्पितं।
निर्वेद इति विख्यातं स्वावमाननमेव हि ॥
अत्र चिन्ताश्रुवैवर्ण्यं दैन्यनिश्वसितादयः ॥ इति ॥

यथा— बिना गोविन्दं ये हृतवपुरेतत्समवहन्
सखि ! प्राणान्वाणानिमिह ममावैमिहृदये।
मुकुन्दस्येन्दुश्रीगलदमलपीयूषलहरी
परीतात्मन्येताञ्नगरतरुणीनां सुखमयान् ॥

युक्त व्याभिचारि भाव है भाव का गति सञ्चारित करने से सञ्चारीभी है ॥ ४ ॥

निर्वेद, विषाद, दैन्य, ग्लानि, श्रम, मद, गर्व्व, शंका, त्रास, आवेग, उन्माद, अपस्मार, व्याधि, मोह, मृति, आलस्य, जाड्य, व्रीड़ा, अवहित्था, स्मृति, वितर्क, चिन्ता, मति, धृति, हर्ष, उत्सुकता, उग्रता, अमर्ष, असूया, चापल्य, निद्रा, सुप्ति, बोध, भेद से ३३ व्यभिचारि भाव हैं।

विवेक, आर्त्ति, प्रवास, तथा ईर्ष्यादिओं में अपना अवमानना ही निर्वेद है। चिन्ता, अश्रु, वैवर्ण्य, दैन्य, निश्वसित प्रभृति अनुभाव

अथविषादः— कृष्णानवाप्तितः कृष्णकार्य्यासिद्धे विपत्तितः ।
अपराधपरिज्ञानात्ताप एव विषादता ।
तत्र निश्वास उच्छ्वास सहायान्वेषणादयः ॥ ५ ॥

अथदैन्यं— दुःखत्रासाऽपराधादुद्यैरनौर्जित्यं तु दीनता ।
चाटुमालिन्यचिन्तांगजडिमास्वान्तमन्दता ।

अथग्लानिः— श्रमाधिरतितर्षाद्यैर्ग्लानिर्निःप्राणता मता ।
कम्पः कार्श्यमनुत्साह वैवर्ण्यभ्रमणादयः ॥

अथश्रमः— अध्वनृत्यरतोत्पन्नः खेदः श्रम इतीर्य्यते ।
अंगमर्द्दननिःश्वासौ पादसंवाहन तथा ।
जृम्भणं मन्दयानं च मुखनेत्रविकूणनं ।
सीत्कृतिश्चेति विज्ञेयाः अनुभावाः श्रमोद्भवाः ।

इस में होते हैं। यथा हे सखि ! गोविन्द के बिना मृत्यु प्राप्त शरीर का वहन वृथा है। प्राण समूह मेरे लिये बाण के तुल्य हो रहे हैं। इत्यादिक ॥ श्रीकृष्ण की अप्राप्ति, श्रीकृष्ण के कार्य्य की असिद्धि, विपत्ति, तथा अपना अपराध परिज्ञानों से ताप ही विषाद है। उस में निश्वास का उच्छ्वास, अन्वेषण प्रभृति अनुभाव होता है ॥ ५॥

दुःख, त्रास, अपराधादिकों से औद्धत्य न करना दीनता है। मीठी बात, मालिन्य, चिन्ता, अंगजड़ता, अन्तर में मन्दभावादि, अनुभाव है ॥

श्रम, रति विलास, तथा तर्षादिसे निष्प्राणता ग्लानि है। कम्प, कृशता, निरुत्साह, विवर्णता, भ्रमणादिक अनुभाव है। मार्गगमन, नृत्य, विलासादिकों से खेद श्रम है। अंगमर्द्दन, निश्वास, पादसं

अथमदः— अनंगविक्रियोद्भूतो मधुपानादिजस्तथा।
विवेकहर आनन्दो मद इत्यभिधीयते॥
दृष्टिः स्मेरो मुखे रागः सस्मिताकुलितं वचः।
लुलिता विद्धगत्याद्या श्चेष्टाः स्युः पुष्टिगे मदे॥
अथगर्व्वः— रूपयौवनसौभाग्यगुणैः कृष्णाश्रयैस्तथा।
इष्टलाभादिना चान्यहेलनं गर्व उच्यते।
तत्र सोल्लुण्ठवचनं लीलानुत्तरदायिता।
स्वांगेक्षानिन्हवोऽन्यस्य वचनाश्रवणादयः॥
अथशंका— शंका चौर्य्यापराधादेः स्वानिष्टोत्प्रेक्षणं मतं।
अत्रास्यशोषवैवर्ण्यादिक्प्रेक्षालीनतादयः।
अथत्रासः— त्रासस्तु चित्तविक्षेपः क्रूरसत्वादिनि स्वनैः।
पार्श्वस्थालम्बं रोमाञ्च कम्पस्तम्भभ्रमादिकृत्॥६॥

वाहन, जँभाई, मन्दगमन, मुख और नेत्रका सीत्कार, अनुभाव है। अनंगविकार, तथा मधुपान से विवेकहारी आनन्द 'मद' है।

श्रीकृष्णसम्बन्धि, रूप, यौवन, सौभाग्यादिगुणों से तथा इष्टलाभादिओं से अन्य का हेला करना 'गर्व' है। उच्चहास्य से बोलना, उत्तर न देना, अपना अंग दिखाना, और का गोपन, वचन न सुनना अनुभाव है। चौर्य्य, तथा अपराधों से अपना अनिष्ट देखना शंका है। जिसमें मुख शोषण, विवर्णता दिशाओं के दर्शन, छिपना अनुभाव है। दुष्ट प्राणियों के शब्दों से चित्तविक्षेप त्रास है। अनुभाव पार्श्वालम्बन, रोमाञ्च, कम्प, स्तम्भ, भ्रमणादि है॥६॥

आवेगः— चित्तस्य संभ्रमो यः स्यादावेगोऽयं स चाऽष्टधा ।
प्रियाप्रियानलमरुत्वर्षोत्पातगजारितः ॥

अथोन्मादः— उन्मादो हृद्भ्रमप्रौढानन्दापद्विरहादिजः ।
अत्रातिहासनटनं संगीतं व्यर्थचेष्टितं ।
प्रलापधावनाक्रोशविपरीतक्रियादयः ॥

अथापस्मृतिः— धातुवैषम्यदुःखाभ्यामुद्भूताश्चित्तविप्लवः ।
अपस्मारोऽत्र पतनं धावनास्फोटनादयः ॥

अथव्याधिः— दोषोद्रेकवियोगाद्यैर्ज्वरात्मा व्याधिरत्रतु ।

अथमोहः— आपद्भीतिवियोगाद्यै मोहश्चित्तस्य मूढ़ता ।
विक्रियास्तत्र विज्ञेया इन्द्रियाणां च शून्यता ॥

अथमृतिः— स्पष्टार्थः ॥

अथालस्यं:— इन्द्रियाणां तु सामर्थ्ये कृतौ विमुखता हि या ।
तृप्तिश्रमादिजनिता तदालस्यमिहेष्यते ॥

चित्तका संभ्रम 'आवेग' है। प्रियोत्थ, अप्रियोत्थ, अग्नि, पवन, वर्षा, उत्पात, गज, वैरिओं से उत्थित, आवेग अष्ट प्रकार हैं। अत्यन्त आनन्द, आपद् विरहादिकों से हृदय का भ्रम उन्माद है। अतिहंसना, नृत्य, संगीत, व्यर्थ चेष्ठा, प्रलाप, धावन, आक्रोश, विपरीत क्रिया अनुभाव जानना। धातुविषमता तथा दुखों से चित्तका विप्लव 'अपस्मार' है। महीपतन, भागना, आस्फोटादिक अनुभाव है। दोषों को होना तथा बियोगादिकों से उत्पन्न ज्वरादिक 'व्याधि' है। आपद, भय, वियोगादिकों से चित्त की मूढ़ता मोह है। इन्द्रियों की शून्यता अनुभाव है।

अथजाड्यः— जाड्यमप्रतिपत्तिः स्यादिष्टानिष्टार्थयोःश्रुते
दृष्टेवा विरहादेश्च क्रिया तत्रानिमेषता ॥

व्रीडाः— अकार्य्यकरणावज्ञा स्तुति नूतनसंगमैः ।
अधृष्टता भवेद्व्रीडा तत्र मौनावगुण्ठने ॥७॥

अवहित्था— अवहित्थाकारगुप्ति र्जैह्म्यप्राभवभीतिभिः ।
लज्जासाध्वसदाक्षिण्यप्रागल्भ्यापजयादिभिः ।

स्मृतिः— स्वस्थचित्तादृढाभ्याससदृशालोकनादिभिः ॥
स्मृतिः पूर्वानुभूतार्थप्रतीतिस्तत्रविक्रिया ॥
कम्पभ्रू विक्षेपादयः ॥

वितर्कः— संशयादे र्विचाराच्च वितर्क स्तूह इष्यते ।
तत्राङ्गुलिसंचारादयः ॥

चिन्ता— इष्टवस्त्वपरिप्राप्ते रनिष्टाप्ते स्तथैव च ।
चिन्ता ध्यानमितिज्ञेयं तत्र कार्श्यादयो मताः ।

मरण-स्पष्ट है। तृप्ति तथा श्रमादिकों से इन्द्रियों के कार्य्य में समर्थ होते हुए भी न कर सकना आलस्य है। इष्टार्थ तथा अनिष्टार्थ का सुनना किम्वा देखना, तथा विरहादिकों से अचेष्ट क्रिया जाड्य है। निमेष हीनता जिसमें अनुभाव है। अकार्य्यकरना, अवज्ञा, स्तुति तथा नवसंगमों से धृष्टता न करना व्रीडा है। मौन तथा नत-मुख जिस में अनुभाव है ॥७॥

जृम्भण, भय, लज्जा साध्वस, दाक्षिण्य, प्रागल्भ्य, अपजय, स्वस्थचित्त, दृढ़ाभ्यास, सदृशवस्तु दर्शनादि से आकार गोपन अवहित्था है। पूर्वानुभूतार्थ प्रतीति स्मृति है। कम्प भ्रू विक्षेप जिसका

मतिः— नानाशास्त्रार्थमथनादर्थनिर्द्धारणं मतिः ॥

धृतिः— ज्ञानविज्ञानगुर्व्वादिभक्तिनानार्थसिद्धिभिः।
लज्जादिभिश्च चित्तस्य नैस्पृहत्वं धृतिरुच्यते ॥

हर्षः— मनः प्रासादो हर्षः स्यादत्र नेत्रास्यफुल्लता ।

उत्सुकता— कालाक्षमत्वमौत्सुक्यमिष्टवस्तु वियोगतः।

औग्र्यं— अपराधावमानादेर्जातं चण्डत्वमुग्रता ॥

अमर्षः— अधिक्षेपावमानाद्यैः क्रोधोऽमर्ष इतीर्य्यते ॥८॥

असूयाः— परसौभाग्यसम्पत्तिविद्यासौन्दर्यादिहेतुभिः।
गुणेऽपि दोषारोपः स्यादसूया तत्र विक्रिया ॥
मुखावबर्त्तनादयः ॥

अनुभाव है। संशयादि तथा विचारों से तर्क करना वितर्क है। अंगुलि चालनादिक अनुभाव हैं। इष्ट वस्तु की अप्राप्ति, अनिष्ट प्राप्ति से ध्यान ही चिन्ता है। कृशता प्रभृति जिस में अनुभाव है। नाना शास्त्र समूह मथन से अर्थ निर्द्धार मति है। ज्ञान, विज्ञान, गुर्वादि भक्ति, नानार्थ सिद्धि, लज्जादि से चित्त की निस्पृहता धृति है। मन की प्रसन्नता हर्ष है। नेत्र तथा मुख का विकास अनुभाव है। इष्ट वस्तु के वियोग से काल व्यतीत न सहना उत्सुकता है। अपराध तथा अपमानादि से उत्पन्न चण्डभाव ही उग्रता है। अधिक्षेप तथा अवमाननादि से क्रोध होना अमर्ष है ॥ ८ ॥

दूसरे के सौभाग्य, सम्पत्ति, विद्या, सौन्दर्यादि दर्शन से गुण में भी दोषारोपण असूया है। मुखफिराना प्रभृति अनुभाव हैं। राग, द्वेषादिकों से चित्त की लघुता चापल है। अविचार, कठोरता,

चपलता:— रागद्वेषादिभिश्चित्तलाघवं चापलं भवेत्।
अत्राविचारपारुष्यस्वच्छन्दाचरणादयः ॥

निद्रा:— मनो निमीलनं निद्रा श्रमादेः परिकीर्त्तितं।
घूर्णादिविक्रिया ॥

सुप्तिः— उद्रेक एव निद्राया सुप्तिः स्यात्तत्र विक्रिया।
इन्द्रियोपरति नैत्रमीलनं सन्नगात्रता ॥

बोधः— अविद्यामोहनिद्रानां ध्वसाज्ज्ञानं प्रवुद्धता ॥ इति

त्रयस्त्रिंशद्व्यभिचारिणः यद्यप्यन्ये दृश्यन्ते मात्सर्य्यादयस्तथा प्युक्तेस्वेवांतर्भावाः ज्ञेयाः। तथाहि असूयामात्सर्य्ययो त्रासोद्वेगयोः, अवहित्थादम्भयोः, इर्ष्यामर्षयोः वितर्कनिर्णययोः दैन्यक्लैव्ययोः, क्षमाधृत्योः, औत्सुक्यकुतुकोत्कराठ्योः, लज्जाविनययोः, संशयतर्कयो : धार्ष्ट्य चापलयो रैक्यं ज्ञातव्यं। एषां सञ्चारिणां मध्ये कश्च-

---

स्वच्छन्दाचरण प्रभृति अनुभाव हैं। श्रमादिकों से मन की निवृत्ति निद्रा है। नेत्र का मूंदजाना प्रभृति अनुभाव है। निद्राकी वृत्ति का न रहना सुप्ति है। अनुभाव इन्द्रियों का विराम, नेत्र मूंद जाना, शरीर गिरना प्रभृति है॥ अविद्या, मोह, तथा निद्रादिकों का ध्वंस से ज्ञान होना बोध है। मात्सर्य्यादि और और भाव उक्त ३३ व्यभिचारिभाव के अन्तर्गत जानना। जैसे असूया मात्सर्य्य का, त्रास उद्वेग का, अवहित्था दम्भका, इर्ष्या अमर्षका, विवेक निर्णय का, दैन्य क्लैव्य का, क्षमा धृति का, औत्सुक्य कौतुक तथा उत्कण्ठा का, लज्जा विनय का, संशय तर्क का, धार्ष्ट्य चापल की एकता जानना।

चित् कश्चिद्विभावोऽनुभावश्च भवेत् यथा निर्वेदे इर्ष्यायाविभावत्व-मेवमन्यत्र तेऽपि सञ्चारिणः कुत्रचित् स्वातन्त्रेण रतिं पुष्णन्ति कदाचित्पराधीनतया ॥९॥

अथसन्धिः— भावानां स्वतन्त्राणां मेलनं सन्धिः ।

यथा— पूतनामखिलबालकृतान्तां गोपराजगृहिणी विनिशाम्य ।
आकलय्य पुरतो विहसं तं स्वांगजं जडतया बलिताभूत् ॥

अत्रप्रियाप्रियेक्षणाज्जाड्ययोः सन्धिः । तथान्यत्र

तथाशाबल्यमपि— द्वित्राणां पञ्चषाणामेकत्रमेलनं शाबल्यं ।

त्रयस्त्रिंशदिमेऽष्टौ स्थायिन इत्येकचत्वारिंशद्धि श्रीकृष्णविषयिणी रतिरेव पुष्यते । कश्चित्साहजिको भावः कश्चिदागन्तुकस्तथा ।
यस्तु साहजिको भावः सव्याप्यान्तर्बहिः स्थितः ।
यत्र स्वागन्तुको भावो न विभावोऽस्ति तत्र हि ।

इन संचारि भावों में कोई किसी का विभाव तथा अनुभाव भी होता है जैसे निर्वेद में इर्ष्या का विभाव अन्यत्र सञ्चारि भाव से है । यह भाव कहीं स्वतन्त्र तथा कहीं परतन्त्र रति का पोषक है ॥९॥

स्वतन्त्र भावों का मिलन सन्धि है, यथा—समस्त बालक नाशिनी पूतना की बात सुनकर, तथा सामने हँसते अपने बालका को देखकर यशोदा जडता युक्ता हो गई । यहाँ प्रिय तथा अप्रिय दर्शन से जाड्य की सन्धि है । दो, तीन, किम्बा पाँच का एकत्र मिलना शाबल्य है । ये ३३ व्यभिचारि भाव तथा ८ स्थायी भाव, मिलकर ४१ अनुभाव से श्रीकृष्णविषयक रति पुष्ट होती है । इन

ततश्च सहजभावानुगता रतिः।

श्रीकृष्णविषया भक्तिरेकरूपैव सर्वदा।
आगन्तुकैर्विभावाद्यैर्विविधेव प्रतीयते।
चित्ताधीना हि भक्तिः स्याच्चित्तमेव विचार्य्यते।
चित्तं तु द्विविधं ज्ञेयं मृदु कर्कशमेव च।
कर्कशं त्रिविधं ज्ञेयं वज्रं स्वर्णं जतू तथा
पर्वताभं तृणाभं च तूलपिण्डाभमेव च।
त्रिविधं त्रिविधं ज्ञेयं कर्कशं नवधोदितं॥ १०॥
तापसे ज्ञानिनि तथा कर्म्मठेषु विविच्यतां।

अथ मृदुः— अमृतं नवनीतं च मदनं त्रिविधं मृदु।
अमृतं क्षीरधिप्रायं व्रजवासिजनानुगं।

में से कोई साहजिक तथा कोई आगन्तुक है। साहजिक भाव भीतर तथा बाहिर व्याप्त है। जो आगन्तुक भाव है उस में विभावता नहीं है। सहज भावानुगत रति ही जानना। श्रीकृष्ण विषयक भक्ति एकरूपा होती हुई भी आगन्तुक विभावादि द्वारा विविध प्रतीति होती है। भक्ति चित्त के आधीन है। इस लिये अब चित्त का विचार करते हैं। मृदु तथा कर्कश भेद से चित्त दो प्रकार है। कर्कश का भी वज्र, स्वर्ण, लाख भेद से तीन प्रकार हैं। उक्त त्रिविध भेद पर्वताभ, तृणाभ, तथा तूलपिण्डाभ भाव से फिर तीन तीन भेद है। कुल भेद कर्कश के ९ हैं॥ १०॥

तापस, ज्ञानि, तथा कर्म्मपरायणों में यह सब कर्कश जानना। अमृत, नवनीत, तथा मदन भेद से मृदु तीन प्रकार है। अमृत,

मदनं नवनीतं च द्वयं त्रिविधमीरितं ।
समुद्राभं नदीप्रायं पल्वलाभं तथैव च ।
इत्येवं स्वान्तभेदास्तु ज्ञातव्याः सद्विवेकतः ॥
अथस्थायिभावः—विरुद्धानविरुद्धान् वा भावान् यो वशतां नयेत् ।
आस्वादाकुंरकन्दोऽसौ भावः स्थायीति संमतः ॥
विरुद्धैरविरुद्धै र्वा गतैः प्राप्तै स्थापिवा ।
एकरूपेण यस्तिष्ठेत्स स्थायीति निगद्यते ॥
स्थायीभावोऽत्र कृष्णस्य भक्तिरेवाभिधीयते ।
परमानन्दसान्द्रात्मा चित्रोष्णा रतिरुच्यते ।
शीतलै र्बलवद्भावैः पुष्टा शीतायते ह्यसौ ।
सम्यक् युक्तिविशेषेण शर्करा मरिचादिभिः ।
यथा दध्यादिकं द्रव्यं षाण्डवाख्यो रसो भवेत् ।

क्षीरसागर के सदृश तथा ब्रजवासी जन के अनुगत है। मदन, तथा नवनीत, दोनों-समुद्राभ, नदीतुल्य, पल्वलाभ भेद से प्रत्येक तीन प्रकार है। चित्त के भेद इस तरह सद्विवेक से जानना। अब स्थायीभाव वर्णन करते हैं। विरुद्ध तथा अविरुद्ध भाव समूहों को बश में लेने वाला आस्वादाकुंर का बीज स्थायी भाव है। विरुद्ध तथा अविरुद्ध भाव समूह प्राप्त हो कर भी जो एक रुप से ठहरता है उसको स्थायीभाव जानना। यहाँ श्रीकृष्ण की भक्ति ही स्थायी-भाव जानना। परमानन्द सान्द्ररुपा विचित्र उष्णता मयी रति है। बलवान शीतल भाव समूह द्वारा पुष्ट हो कर शीतलता भाव को धारण करती है। जैसे दध्यादि द्रव्य शक्कर तथा मरिचादि द्रव्यों

तदत्र सर्वथा साक्षात् कृष्णादप्यनुभवाद्भुतः ।
प्रौढानन्दचमत्कारो भक्तैः कोऽप्यनुभूयते ॥ ११॥

अंगांगित्वेन सा भक्तिः श्रीकृष्णविषया द्विधा ।
अनुभावता भवेद्यस्याः यत्र कुत्रापि भक्तिषु ।
तदंगत्वं तु विज्ञेयं तस्याश्चैव स्वभावतः ।

अनुभावत्वराहित्यमंगित्वं परिचक्षते । अयमर्थः । अंगिरूपा पञ्चधा अंगरूपा सप्तधा तथा च न कुत्रापि अंगरूपायाः अंगिनः अनुभवत्वेन प्रतीतिः । नहि हास्यरसे सख्यरस्यानुभवत्वेन प्रतीतिः अंगिनि परस्परमंगांगि भावः । वत्सलादौ शान्तस्य यथा ।

अंगिनी पञ्चधा प्रोक्ता सप्तधा चांगरूपिणी ।
शान्तो रसस्तथा प्रीतः प्रेयान्वत्सल इत्यपि ।
उज्ज्वलश्चेत्यमी ज्ञेयाः उज्वलः सर्वराडिति ।

से शीतल खाण्डव नामक (मिखरन) रस होता है । इस तरह श्रीकृष्णानुभव प्रौढानन्दचमत्कारस्वरूप हो कर भक्त जनों द्वारा आस्वादित होता है ॥११ ॥

श्रीकृष्ण विषयक यही भक्ति अंग तथा अंगीभेदसे द्विविध है। जिसकी अनुभावता है सो अंग है जिसकी अनुभावता नहीं है सो अंगी है। अंगीरूपा भक्ति ५ प्रकार तथा अंगरूपा भक्ति ७ प्रकार की है। कहीं भी अंगरूपा की अनुभवता अंगी है। गौण हास्य रस में मुख्य सख्य रस की अनुभवता प्रतीति नहीं है किन्तु अंगीरस में परस्पर अंगांगी भाव है। जैसे वत्सलादि में शान्त का। अंगी रस पाँच है। यथा शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य, मधुर।

हास्योद्भुतस्तथा वीरो रौद्रः करुण इत्यपि।
भयानकश्च बीभत्सः सप्तैते ह्यंगतां गताः।

अयं तु भक्तिरसः केषाञ्चिद्धृदये उदेति न सर्वस्य एक एवाखण्डो रसो अंगानि तु श्रवणादीनि केषांच श्रवणादावेव रसास्वादः केषाञ्चिच्छ्रवणादिद्वारा भक्तिरसास्वादः। यथा चन्द्रे उपासकस्य देवत्वमेव चन्द्रः चन्द्रस्वरुपास्वादकस्य देवत्वं गुणः ॥१२॥

वैराग्यज्ञानदग्धा ये शुष्केश्वरविभावकाः।
मीमांसकविशेषेण भक्त्यास्वादवहिः कृता।
इत्येवं कृष्णरसिकै र्वत्मकश्च वृकादिव॥
रसः श्रीकृष्णविषया रक्षणीयः सदैव हि।

उनमें मधुर रस सबका राजा है। हास्य, अद्भुत, वीर, रौद्र, करुणा, भयानक, वीभत्स भेद से अंगरस ७ प्रकार का है। यह भक्तिरस कोई कोई पुण्य शालों के हृदय में उदय होता है सबके नहीं। रस एक तथा अखण्ड है। श्रवणादि अंग हैं। किसी किसी के श्रवणादिकों में रसास्वादन किसी किसी को श्रवणादि द्वारा भक्तिरसास्वादन होता है। जैसे चन्द्र में उपासकों का देवत्व भाव ही चन्द्र तथा चन्द्र स्वरूप आस्वाद कारियों का देवत्व गुण है ॥१२॥

वैराग्य तथा ज्ञानादिकों से दग्ध, शुष्केश्वरका भावुक, कर्कश मीमांसक प्रभृति विशेष करके भक्ति आस्वादन से वहिर्मुख है इस लिये श्रीकृष्णरसिक गणों को मार्ग में चोरों से महाधन की तरह श्रीकृष्ण विषयक भक्तिरस को गोपन रखना चाहिये। अब आल-

अथालम्बनसंग्रहः-शान्ते ब्राह्मण एव स्यात्प्रीते दासः प्रकीर्त्तितः।
प्रेयसि स्युः सखायोहि यशोदा वत्सले स्मृता॥
मधुरे राधिका ज्ञेया हास्ये स्यान्मधुमगंलः।
सखीयूथोऽद्भुते ज्ञेयो वीरे चारणगोवृषाः।
करुणे वत्सवृद्धादिः जटिलाद्यास्तु रौद्रके।
गोवर्द्धनोऽभिमन्युश्च भयानक उदीरितौ।
तपस्विन्यादयो ह्यत्र वीभत्से परिकीर्त्तिताः।
व्रजस्था नियता ज्ञेया आलम्बनविभावकाः॥१३॥

तत्र शान्तिरतिः- संकल्पेन विकल्पेन रहितं मन एव हि।
शान्तारतिरितिप्रोक्ता शमत्वेनाभिधीयते॥
विभावैरनुभवैश्च शमिनां स्वाद्यतां गता।
स्थायी शान्ति रतिः प्राज्ञैः शान्तभक्तिरसः स्मृतः॥
उत्तमप्रकृति स्वच्छः श्रीनारायणदैवतः॥

म्बन का संग्रह कहते हैं। शान्त रस में ब्राह्मणगण, दास्य में दास गण, सख्यरस में सखागण, वत्सल में श्रीयशोदा, शृंगार में श्री-राधिका आलम्बन है। गौणरस के हास्य में मधुमगंल, अद्भुत में सखीयूथ, वीर रस में चारणगौवृष, करुणा में वत्स तथा वृद्धादि, रौद्ररस में जटिलादि, भयानकरस में गोवर्द्धन तथा अभिमन्यु, वीभत्स में तपस्विनी प्रभृति, व्रज में नित्य आलम्बन हैं॥१३॥

जटिला—श्रीराधिका की सास।
गोवर्द्धन—श्रीचन्द्रावली के विवाहित पति।
अभिमन्यु—श्रीराधिका के विवाहित पति।

उक्तं च साहित्य— शान्तः शमः स्थायिभाव उत्तमः प्रकृतिमतः।
दर्पणे— कुन्देन्दुसुन्दरच्छायः श्रीनारायणदैवतः॥
प्राय आत्मसुखाक्रान्तघनीभूतं सुखं भवेत्। यत्तु
विष्णुधर्मोत्तरे— न यत्र दुःखं न सुखं न चिन्ता न द्वेषरागौ
न च काचिदिच्छा।
रसः स शान्तः कथितो मुनीन्द्रैः सर्वेषु भावेषु
समप्रधानः॥ इत्यादौ तत्तु
लौकिकसुखाद्यभावविषयं अलौकिकस्तु सुखादिवर्त्तत एव।
तत्रालम्बनाः— श्रीकृष्ण ईश्वरत्वेन रसङ्गीकृताश्च ये।
तत्र श्रीकृष्णः— आत्मारामादयो ज्ञेया आलम्बनतयाऽत्र ते॥
नमऽस्तुतेऽध्यात्मपरब्रह्मपरमात्मने ह्यनात्मने स्वात्मविभक्तमूर्त्तये।
सकारणाकारणलिङ्गमूर्त्तये स्वमायया संवृतरुद्धदृष्टये॥
सच्चिदानन्दपूर्णत्वविभुत्वसाम्यादयो गुणाः॥

संकल्प विकल्प से रहित मन की वृत्ति शान्त रति है तथा शम नाम से व्यवहृत है। शान्ति स्थायीरति विभाव तथा अनुभावों से सभ्य भक्तों द्वारा आस्वादित होकर शान्तभक्तिरस नाम से कथित होता है। शान्तभक्तिरस उत्तम स्वभाविक तथा स्वच्छ है। श्रीनारायण जिसके देवता हैं। साहित्यदर्पण में भी कहा है शान्तरस का शम स्थायीभाव तथा उत्तम प्रकृतिक, कुन्द तथा चन्द्र तुल्य, नारायण देवता हैं। प्राय आत्मसुख से आक्रान्त निविड़-सुख शान्तरस में है। विष्णुधर्मोत्तर में कहा है जहाँ न सुख, न दुःख, न चिन्ता, न द्वेष, न राग, न कोई इच्छा है मुनीन्द्रगण उसको

अथभक्ताः — अभेदोपासका केचिद्भक्तसंगेन सेवकाः ।
न मोक्षेण विना भक्तिसुखं निर्विघ्नितं भवेत् ॥
इत्येवं बुद्धियुक्ता ये त एव भक्तना मताः ॥१४॥

यथा — कदा वृन्दारण्ये विपुलविटपिप्रान्त वसति
जरद्वस्त्राच्छन्नो विहितासनफलास्वादनरुचिः ।
हृदि स्मारं स्मारं सकृदपि दृगन्तांगणगतं
चिदानन्दं कृष्णं क्षणमिव विनेष्ये वय इदं ॥

महापुरुषसंग तीर्थादय उद्दीपनाः रोमाञ्चादयोऽनुभावाः निर्वेद हर्षादयो व्यभिचारिणः ॥

(अथप्रीतिभक्तिरसः)

स्वोचितस्तु विभावाद्यैः प्रीतिरास्वाद्यतां गताः ।
प्रियानां हृदये नीता प्रीतभक्तिरसो भवेत् ॥

शान्त कहते हैं । सो लौकिक सुख-दुःख का अभाव जानना अलौकिकरस में सुखादिक अवश्य है । श्रीकृष्ण, ईश्वर हैं ऐसे कहने वाले आत्मारामगण आलम्बन विभाव हैं । श्रीकृष्ण—

सच्चिदानन्द, पूर्णत्व, विभुत्व, तथा साम्यत्व प्रभृति गुण श्रीकृष्ण के हैं । अनन्तर भक्तगणों को कहते हैं ।—मोक्ष बिना भक्ति सुख निर्विघ्न से नहीं होता है, ऐसी बुद्धि रखने वाले तथा भक्तसंग से सेवक भाव प्राप्त अभेद उपासक गण आलम्बन भक्त हैं ॥ १४ ॥

यथा ।—मैं कब श्रीवृन्दावन में विशाल वृक्षों के निकट वास करके जीर्णवस्त्र से युक्त, चने चबा कर हृदय में नेत्र प्रांगण गत चिदानन्द श्रीकृष्ण को स्मरण करता हुआ जीवन बिताऊँगा ।

प्रीतो भक्तिरसो द्विधा हार्देनादरताऽपि च।
हार्देण या रतिः कृष्णे सा स्याद्गोकुलवासिषु ॥
तत्रादरप्रीतो भक्तिरसः प्रियाभिमानिनां कृष्णे प्रीतिरादरपूर्विका।
भावाद्यैः पुष्यमाणेयमादरप्रीति उच्यते ॥
तत्रालम्बनाः— श्रीकृष्णस्तत्प्रियाश्चेति ज्ञेया आलम्बना इह।
श्रीकृष्णस्तु त्रिधा प्रोक्तो भगवान्गोकुलेश्वरः॥
भगवत्ताविशिष्टस्तु बन्धुरित्यादिभेदतः।
भगवन्नारदादौ तु व्रजे स्यात्गोकुलेश्वरः।
युधिष्टिरादिभक्तेषु भगवान्वन्धुरित्यादि ॥१५॥
भगवान्कृष्णोयथा— "यस्यैकनिःश्वसितकालमथावलम्ब्य" इति।
प्रियाअपि तथा ज्ञेयाः आश्रिताधिकृतानुगाः ॥

महापुरुषों के संग, तीर्थादि उसमें उद्दीपन भाव हैं। रोमाञ्चादिक अनुभाव तथा निर्वेद, हर्षादि व्याभिचारी भाव हैं। अब दास्यभक्ति-रस कहते हैं। प्रीति स्थायीभाव आत्मोचित विभावादि भावों से प्रियों के हृदय में जाकर प्रीत-भक्तिरस होता है। हार्द तथा आदर से प्रीत रस दो प्रकार का है। हार्द से जो रति उत्पन्न होती है वह व्रजवासीओं में जानना। आदरयुक्त प्रीति श्रीकृष्ण में प्रियाभिमानियों के विभावादि भावों से पुष्ट होकर आदर-प्रीति-भक्तिरस होता है। श्रीकृष्ण तथा प्रियगण आलम्बन हैं। श्रीकृष्ण तीन प्रकार के हैं। भगवान; गोकुलेश्वर, भगवत्तायुक्त बन्धु भेदों से। नारदादिकों में भगवान्, व्रज में गोकुलेश्वर, युधिष्ठिरादि भक्तों में भगवान्बन्धु हैं ॥ १५ ॥

अत्राश्रिताः— शरणाप्ता ज्ञानिचराः आश्रिताश्चेति ते त्रिधा।
शरणाप्ताः— इहलोके परत्रापि स्वसामर्थ्यं विहाय ये।
उभयोः साधनं कृष्ण इति ते शरणागताः॥

यथादशमे-राजानः—कृष्ण कृष्णाप्रमेयात्मन् प्रपन्नभयभञ्जन।
वयं त्वां शरणं यामो भयभीताः पृथग्धियः॥

तद्दूतवाक्यं च— प्रपन्नाः पादमूलं ते दीनानां शं विधीयताम्।
ज्ञानिचराः— मुमुक्षवस्तु ये पूर्वं मुमुक्षां भक्तसंगतः।
विहाय भजनासक्तास्ते स्युर्ज्ञानिचरा इह॥

यथा— सूत सूत महाभाग वदतो वदतां वर
शौनकादयःप्रथमे—कथां भागवतीं पुण्यां यदाह भगवान् शुकः।
॥ इत्यादिना

मुमुक्षादिकं विहाय कथानिष्ठैव गम्यते।

भगवान् कृष्ण यथा।—जिसके एक निश्वास के समय में ब्रह्माओं के साथ अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड जीवित रहते हैं, ऐसे महाविष्णु जिन श्रीकृष्ण के कला विशेष हैं उन आदिपुरुष गोविन्द को मैं भजता हूँ। कृष्णप्रिय भी तीन प्रकार के हैं: आश्रित, अधिकृत तथा अनुगत। आप्त शरणा ज्ञानिचर भेद से आश्रित दो प्रकार है। इस लोक तथा परलोक में अपने प्राप्त बल पुरुषार्थ छोड़ कर श्रीकृष्ण ही उभय लोक के साधन हैं ऐसे मानने वाले शरणागत हैं। जो मुमुक्षुगण भक्तसंग से मुमुक्षुभाव छोड़ कर भजन में आसक्त हैं वह ज्ञानिचर हैं। यथा—शौनकादिक श्रीसूत जी से कहते हैं। हे सत, हे भाग्यवान् हे ज्ञानिश्रेष्ठ! वह भागवती कथा है

यथाहरिभक्तिसुधोदये-

अहो महात्मन् बहुदोषदुष्टोऽप्येकेन भात्येष भवो गुणेन।
सत्संगमाख्येन सुखावहेन कृताद्यनो येन कृशा मुमुक्षा।

आश्रिता द्विविधा ज्ञेया अनुगा अधिकारिणः।
अनुगा भजनासक्ता मुमुक्षादेरदूषताः॥
आधिके तु नियुक्ता ये तेऽधिकारिण ईरिताः।
प्रह्लादनारदाद्याः ये तेऽनुगाः परिकीर्त्तिताः॥१६॥
ब्रह्मरुद्रयमाद्या ये तेऽधिकारे निरुपिताः॥

अथभगवान्बन्धुः कृष्णः॥ यथा पृथावाक्यं॥-

अप्यद्यनस्त्वं प्रकृते हितप्रभो जिहासि स्वसुहृदोऽनुजीविनः
येषां न चान्यद् भवतः पदाम्बुजात् परायणं राजसुयोजितांहसाम॥

यथा वा दशमे-- तथा मे कुरुतं कामं युवां योगेश्वरेश्वरौ।
भोजराजहतान्पुत्रान् कामये द्रष्टुमागतान्॥

जिसको भगवान् शुक ने कही है। अनुग तथा अधिकारि भेदसे आश्रित दो प्रकार के हैं। मुमुक्षु आदिकों में अदूषण पूर्वक भजनासक्त अनुग तथा आधिक ब्रह्माण्डादिकों में नियुक्त अधिकारी है। प्रह्लाद, नारदादि अनुग हैं॥ १६॥

ब्रह्मा, रुद्र, यम, प्रभृति अधिकारी भक्त हैं। अब भगवान्बन्धु कहते हैं। यथा दशम में पृथादेवी का वाक्य।:—

लाल्य, गौरवयुक्त, पार्षद, अधिकारी, भृत्य, पाल्य प्रभृति प्रिय हैं। प्रद्युम्न, साम्बादि पाल्य, आहुक गौरवित, उद्धवादि पार्षद, चैत्र प्रभृति भृत्य, हैं। अधिकार पाँच प्रकार के हैं।-हस्ती, अश्व, रथ, वाहन, (शिल्प) कारव भेद से। समस्त प्रजागण पाल्य, तथा

अत्र प्रिया— लाल्या गौरविताश्चेति पार्षदाश्चाधिकारिणः।
भृत्या पाल्याश्च ते सर्वे प्रियाह्यत्र प्रकीर्त्तिताः॥
पाल्याः प्रद्युम्नसाम्बाद्याः आहुका गौरवान्विताः।
पार्षदा उद्धवाद्याश्च भृत्या जैत्रादयः स्मृताः॥
अधिकारः पञ्चविधो हस्त्यश्वरथपत्रयः।
कारवश्च तथा सर्वे पाल्याः सर्वा प्रजामताः।
लाल्याः प्रद्युम्नशाम्बानिरुद्धादयः॥
यथा— अतु विस्मित उत्थाय तूर्णमन्यदगाद्गृहं।
तत्र प्याचष्ट गोविन्दं लालयन्तं शतान् शिशूनिति।
गौरवान्विता— उग्रसेना तत् सहरावृद्धादयः।
यथा— मातामहं तूग्रसेनं यदूनामकरोत्नृपतिं।
पार्षदा उद्धवसात्यकि श्रुतदेवादयः। यथोद्धवः॥१७॥

प्रद्युम्न, साम्ब, अनिरुद्ध प्रभृति लाल्य हैं। यथा नारद जी ने विस्मय पूर्वक उठ कर अन्य गृह में जाकर वहाँ भी शत सहस्र बालकों को लालन करने वाले श्रीगोविन्द जी के दर्शन किये। गौरवान्वित भक्त उग्रसेन तथा उनके सहरा बृद्धगण हैं। यथा- मातामह उग्रसेन को यादवों का राजा बनाया। उद्धव, सात्यकी श्रुतदेवादिक पार्षदभक्त हैं॥ २७॥

ऋषी ने जो कहा है:- आपका साचिव्यता सदैव पाती है सो ठीक है।

दारुक, जैत्र, नन्द, उपनन्द, भद्रादिक भृत्य है। यथा श्री भागवत में- अनन्तर भगवान् देवकी सुत, दारुक प्रभृति भृत्यों

यदुक्तमृषिणा देव साचिव्यं पत्ततस्त्वया।
कार्यं पैतृष्वसेयस्य रक्षा च शरणैषिणामित्यादि।

अथभृत्याः— दारुकजैत्र नन्दोपनन्दभद्रादयः।
यथा श्री भागवते- अथादिशत्प्रयाणाय भगवान्देवकीसुतः।
भृत्यान्दारुकमैत्रादीननुज्ञाप्य गुरुन्विभुरित्यादि॥

अथाधिकारिणः— अस्त्राश्वरथपत्त्रयः शिल्पिकाश्च। तत्तदधिकारस्थाः।
यथा— "ततोरथद्विपभटसादिनायकैः करालयापरिवृत-
आत्मसेनया।"

अथ पाल्याः— तमुपश्रुत्य निनदं जगद्भयभयावहं।
प्रत्युद्ययुः प्रजाः सर्वाः भर्तृदर्शनलालसाः।

अथ गोकुलेश्वरः- हार्दप्रीतिरसास्वादो व्रजस्थैर्दृश्यते यथा।
कृष्णः— श्री भागवतपद्येषु तद्वत्संश्रित चेतसा।
विलासैकनिधिः कृष्णो विलासभरलालसः।
विलासिजनसख्यश्च गोकुलेशः प्रकीर्त्तितः।

को चलने के लिये आदेश किये। अस्त्र, अश्व, रथ, वाहन, शिल्पियों के अधिकारी अधिकार भृत्य हैं। अब पाल्य कहते हैं। जगत के भय का भी भय रूप उस शब्द को सुनकर प्रजा समूह स्वामी श्रीकृष्ण के दर्शन लालसा से दौड़ने लगे॥ गोकुलेश्वर श्रीकृष्ण-श्री भागवतपद्य में व्रजवासियों के जो हार्द प्रीति रस का आस्वाद दीखता है। जैसे विलास का निधि, विलास लालस, विलासिजन सखा गोकुलेश आदि प्रकीर्त्तित है यथा-कहीं विविधरंगसंगरूपा श्री राधिका से हँसते हैं। कहीं श्री राधिका से

यथा— क्वचिद्धसति राधिकां विविधरंगभंगेश्वरीं।
तया यदपि निर्जितो ललितया परं गर्वितः।
क्वचिद्सखीमण्डली तदनुरूपलीलां दधत्।
विनोदयति सर्वदा युवतिहारिकुञ्जेश्वरः ॥१८॥

अथ प्रियाः— आश्रिताश्च तथा लाल्याः पाल्याश्चाधिकृताः क्वचित्।
एते पञ्चविधाः प्रोक्ताः प्रिया अनुचरैः सह ॥

तत्राश्रिताः— सूतमागधवन्दिशिल्पिप्रभृतयः ॥

अथ लाल्याः। प्रजाः प्रसिद्धा एव

अथाधिकृताः— नियतस्यैव कार्यस्य वर्गोऽधिकृताः स्मृताः
ते तु द्विधा विनिर्दिष्टाः स्थावरजंगमैस्तथा।
स्थावराणां पुष्पफलादिकमेव कार्यं जंगमाः छत्रादयः॥

अथानुचराः— प्रभुताज्ञानसंयुक्ताः विश्वस्ता विनयान्विताः
निर्देशावशगाः सर्वे दासा ह्यत्र प्रकीर्त्तिताः।

पराजित होकर ललिता द्वारा गर्व कर रहे हैं इस प्रकार मधुर लीलाओं से कुञ्जेश्वर श्रीहरि सखीमण्डली को विनोदित कर रहे हैं ॥ १८ ॥

प्रियभक्त-आश्रित, लाल्य, पाल्य, अधिकृत, अनुचर भेद से पाँच प्रकार के हैं। सूत, मागध, वन्दि, शिल्पि प्रभृति आश्रित हैं। प्रजागण लाल्य हैं। नियत कार्य्य को करने वारे अधिकृत भक्त हैं। स्थावर तथा जंगम भेद से अधिकृत भक्त दो प्रकार के हैं। पुष्प फलादि कार्य्य का समाधान स्थावरों के द्वारा जानना, छत्रादिक जंगम हैं। स्वामीपन के ज्ञानयुक्त, विश्वासपात्र, विनय-

रसदः सारदश्चेति मधुरो वकुलस्तथा।
आनन्दश्चन्द्रहासश्च प्रेमकन्दो विलासवित्।
रसालो मधुकण्ठोऽथ रक्तकः पत्रकस्तथा।
पत्री मधुव्रतश्चेति गर्भदासा इमे स्मृताः।
चित्तानुवर्त्तिनः केचित् केचिदाज्ञानुवर्त्तिनः।
धूर्य्यो धीरश्च वीरश्च शूरश्चेति चतुर्विधाः।
व्रजराजकुमारस्य शुद्रनामाः प्रकीर्तिताः॥

तत्र धूर्य्यः— प्रियेषु द्वादशेष्वेव यथायोग्यं प्रवर्त्तते।
श्रीराधा धुर्य्य इति प्रोक्तः श्रीकृष्णो प्रीतिमान्स्वकः॥

अथ धीरः— श्रीराधाकृष्णयोः गौढां कृपां प्राप्य सुनिर्वृतः।
नान्यं नापेक्षते यस्तु स धीरत्वेन संमतः॥ ॥१६॥

परायण, आज्ञापालक समस्त दास हैं। रसद, सारद, मधुर, वकुल, आनन्द, चन्द्रहास, प्रेमकन्द विलासवित, रसाल, मधुकण्ठ, रक्तक, पत्रक, पत्री, मधुव्रत प्रभृति जन्म से ही दास हैं। इनमें से कोई कोई चित्तानुवर्त्ती, कोई कोई आज्ञानुवर्त्ती हैं। धूर्य्य, धीर, वीर, तथा शूर भेद से श्रीनन्द नन्दन के चारि प्रकार के दासगण हैं। श्री राधाकृष्ण युगल के अत्यन्त कृपापात्र, अन्य निरपेक्षक धीर हैं॥ ६॥

श्री कृष्ण के कृपाप्रार्थी, तथा कृष्णनिष्ठा का गर्व रखने वाले, और को नहीं गिनने वाले शूर हैं। अब दशा वर्णन करते हैं। अधिकार भेद से वियोग में ताप, निरालम्बत्व, जागरण, कृशता, अधृति जड़ता, व्याधि, उन्माद, मूर्च्छा, मरण दश दशा होती हैं। ताप अंगमे,

अथ शूरः— श्रीकृष्णस्य कृपाकांक्षी तन्निष्ठत्वेन गर्व्वितः।
नान्यं तु गणयेद्यस्तु स शूर इति संस्तुतः॥
अधिकारभेदेन प्रीतरसे दशावस्थाः॥
ताप आलम्बराहित्यं जागर्य्यं कृशता तथा।
अधृतिर्जडता व्याधिरुन्मादो मूर्च्छनं मृतिः॥
वियोगे तु भवन्त्येता दशावस्था अमूः स्मृताः।

तापः अंगे चित्तस्यानवस्थितिरालम्बराहित्यं जागर्य्यं प्रसिद्धमेव, कृशता तथैव, अधृतिः शरीरेन्द्रियचित्तानामधैर्य्यं, जडता चेष्टा राहित्यं, व्याधिः प्रसिद्धः, उन्मादः भ्रमः, मूर्च्छितं मूर्च्छा, मृतिः॥

अथ संयोगः— श्री कृष्णविषयो योगः स षोढा परिकीर्त्तितः।
सिद्धिस्तुष्टिः स्थितिर्भोगः क्रीडा स्वाधीनता तथा।

सिद्धिः— उत्कण्ठिते तु कृष्णस्य प्राप्तिः सिद्धिरिहोच्यते।

चित्त की अस्थिरता निरालम्बत्व है। जागरण, कृशता प्रसिद्ध है। शरीर, इन्द्रिय तथा चित्त का अधैर्य्य अधृति है, चेष्टा राहित्य होना जड़ता है। व्याधि प्रसिद्ध है। भ्रम उन्माद, मूर्च्छित होना मूर्च्छा है मरना मृति है। श्री कृष्ण विषयक योग संयोग है। सिद्धि, तुष्टि, स्थिति, भोग, क्रीड़ा तथा स्वाधीनता भेद से छे प्रकार का है। उत्कण्ठा की अवस्था में कृष्ण का प्राप्त होना सिद्धि है। वियोग से पीछे प्राप्ति तुष्टि है। स्वरूप में तथा गृहादि में निवास स्थिति है। सब प्रकार के स्वरूप तथा माधुर्य्य का आस्वाद भोग, नृत्यादिक क्रीडा है। अपनी आज्ञा के वश में रखना स्वाधीनता है॥ १० ॥

अथ शूरः— श्रीकृष्णस्य कृपाकांक्षी तन्निष्ठत्वेन गर्व्वितः।
नान्यं तु गणयेद्यस्तु स शूर इति संस्तुतः॥
अधिकारभेदेन प्रीतरसे दशावस्थाः॥
ताप आलम्बराहित्यं जागर्य्यं कृशता तथा।
अधृतिर्जडता व्याधिरुन्मादो मूर्च्छनं मृतिः॥
वियोगे तु भवन्त्येता दशावस्था अमूः स्मृताः।

तापः अंगे चित्तस्यानवस्थितिरालम्बराहित्यं जागर्य्यं प्रसिद्धमेव, कृशता तथैव, अधृतिः शरीरेन्द्रियचित्तानाम धैर्य्यं, जडता चेष्टा राहित्यं, व्याधिः प्रसिद्धः, उन्मादः भ्रमः, मूर्च्छितं मूर्च्छा, मृतिः॥

अथ संयोगः— श्री कृष्णविषयो योगः स षोढा परिकीर्त्तितः।
सिद्धिस्तुष्टिः स्थितिर्भोगः क्रीडा स्वाधीनता तथा।
सिद्धिः— उत्कण्ठिते तु कृष्णस्य प्राप्तिः सिद्धिरिहोच्यते।

चित्त की अस्थिरता निरालम्बत्व है। जागरण, कृशता प्रसिद्ध है। शरीर,इन्द्रिय तथा चित्त का अधैर्य्य अधृति है, चेष्टा राहित्य होना जड़ता है। व्याधि प्रसिद्ध है। भ्रम उन्माद, मूर्च्छित होना मूर्च्छा है मरना मृति है। श्री कृष्ण विषयक योग संयोग है। सिद्धि,तुष्टि, स्थिति, भोग, क्रीड़ा तथा स्वाधीनता भेद से छै प्रकार का है। उत्कण्ठा की अवस्था में कृष्ण का प्राप्त होना सिद्धि है।वियोग से पीछे प्राप्ति तुष्टि है। स्वरूप में तथा गृहादि में निवास स्थिति है। सब प्रकार के स्वरूप तथा माधुर्य्य का आस्वाद भोग, नृत्यादिक क्रीडा है। अपनी आज्ञा के वश में रखना स्वाधीनता है॥ १० ॥

वियोगानन्तरं प्राप्तिस्तुष्टि रित्यभिधीयते ॥

तुष्टि:— स्वरूपेण गृहादन्यैर्वा वासः स्थितिरिहोच्यते ॥

स्थिति:— भोगः स्वरूपमाधुर्यास्वादः सर्वात्मना मतः ॥

संभोगः— क्रीडा नृत्यादिवा स्वाधीनता स्वाज्ञानुवर्त्तिता ।२०

स्वाधीनतृप्रक्रीडे—

(अथ प्रेयान्भक्तिरसः)

विभावाद्यैः सख्यरतिः सखीनां चित्तसद्मनि ।

पुष्टिं नीता सख्यरसः प्रेयानित्येवमीरितः ।

तत्रालम्बनाः— श्रीकृष्णस्तत्सखायश्च तस्मिन्नालम्बना मताः ।

तत्र श्रीकृष्णः ।—श्रीकृष्णश्च द्विधा मित्रबन्धुभ्यां सखा तथा ।

श्रीकृष्णस्वरूपं ।—नवाम्बुदचयोपमः सकलमाधुरीवारिधिः

स्फुरत्पुरटचम्पकप्रकरनिन्दिपट्टाम्बरः ।

लसन्मुरलिकाधरः सखिकटाक्षसंवीक्षितो

वयस्यवरवेषया व्रजति राधयासौ व्रज ॥

सख्य नामक स्थायी रति, सखाओं के चित्त गृह में विभावादिकों से पुष्ट होकर प्रेयान्-सख्यरस, होता है। श्रीकृष्ण तथा सखा गण आलम्बन है। मित्र तथा बन्धु भाव से कृष्ण दो प्रकार हैं। श्री कृष्ण स्वरूप यथा—नवीनमेघ समूह से उपमाप्राप्त समस्त माधुर्य्य को समुद्र, खिले हुए सुवर्ण चम्पक विनन्दक पीतवस्त्र धारी, अधर में मुरली, कटाक्ष विमोहित, सखा गण द्वारा सुन्दर वेष से विभूषित श्रीकृष्ण श्रीराधिका के साथ व्रज को जा रहे हैं। वयस, वेष, विलासादिकों से तथा गुणों से भी समता प्राप्त, विश्वास से युक्त, सख्य, रति के पात्र सखागण है जो सम, ज्येष्ठ, कनिष्ट भेद से तीन प्रकार

अथ सखाय: ॥—वयो वेषविलासाद्यैर्गुणैश्च समतां गताः।
विश्वासनिभृतात्मानस्तद्वते मित्रतां गताः।
त्रिविधास्ते तु विज्ञेयाः समज्येष्ठकनिष्ठकैः।
तत्रापि त्रिविधा ज्ञेया वयोगुणविशेषतः।
एवं नवविधाः स्थूलाः सूक्ष्मभेदैस्त्वनेकधा ॥

यथा- समाः वया गुणैः १ वयसा समाः गुणै ज्येष्ठाः २ वयसा समाः गुणैः कनिष्ठा ३ वयसा गुणै ज्येष्ठाः १ वयसा ज्येष्ठाः गुणैः समाः २ वयसा ज्येष्ठाः गुणैः कनिष्ठाः ३ वयसा गुणैश्च कनिष्ठा १ वयसा कनिष्ठाः गुणैः समाः २ वयसा कनिष्ठा गुणै ज्येष्ठा ३ एवं नव भेदाः ॥ २१ ॥

यथा श्रीदशमे।— पादसम्वाहनं चक्रुः केचित्तस्य महात्मनः।
अपरे हतपाप्मानो व्यजनैः समवीजयन् ॥

के है। तो भी वयस तथा गुणों का विशेषता से प्रत्येक तीन प्रकार भेद से गुणित होकर स्थूल से ९ प्रकार के हैं। सूक्ष्म भेद से बहु प्रकार के जानना। वयस तथा गुण से समा १ वयस से समा गुण में ज्येष्ठ २ वयस में सम गुण में कनिष्ठ ३ वयस तथा गुण से ज्येष्ठ १ वयस से ज्येष्ठ गुण में समा २ वयस में जेष्ठ गुण में कनिष्ठ ३ वयस तथा गुण से कनिष्ठ १ वयस में कनिष्ठ गुण में सम २ वयस में कनिष्ठ गुण में ज्येष्ठ ३ इस प्रकार नये भेद हैं ॥ २१ ॥

यथा दश में।-कोई कोई महनीय उनकी चरण सेवा करने लगे। और निष्पाप हृदय-वीजन करने लगे। यहाँ पर चरण सम्वाहन कनिष्ठों के द्वारा तथा वीजन (वायु) सम-सखा के द्वारा जानना। ज्येष्ठों का शयन, गानादिक लालन के अन्तर्गत है। अब वयस तथा गुण में सम कहते हैं। अत्यन्त रहस्य वार्त्ता में नियुक्त,

अत्रपादसंवाहनं कनिष्ठानां बोजनं समे, नर्मांगानां ज्येष्ठानां शयनतानाय ताम्रनान्तः पातित्व तु

अथ वयोतुल्य- आत्यन्तिकरहस्येषु नियुक्ता भाववेदिनः।
समाः -- तद्रसाक्रान्तमनसः सखाय समतां गताः।
सुवलोज्वलगन्धर्वाः रसदो रसविरादश्च।
ऋषभश्च विशालश्च वसन्तादयाः प्रकीर्त्तिताः॥

सख्यावधिर्यथा-राधासन्देशहारी मिलति हि सुवलः पश्य पश्यारय कर्णे
कामांगायाश्च लेखं ह्युपहरति तथा स्तोककृष्णो रहस्ये
आभामालां च कण्ठे निकिरति रसदस्त रकादन्नपत्रं
हस्ते दत्ते विलासो विविधसहचरास्तन्वि तन्वन्त सख्यं॥

अथवयसा- श्रीदामा वसुदामा च भद्रसेनोऽथ किङ्किणी
गुणैर्ज्येष्ठाः--- सुदामाद्या इमे गोपा गुणैर्ज्येष्ठाः प्रकीर्त्तिताः।

भावज्ञ, श्रीकृष्ण के भाव रस से आक्रान्त मन वाले सम सखा गण हैं। सुवल, उज्वल, गन्धर्व, रसद, रसज्ञ, ऋषभ, विशाल, वसन्तादिक हैं। सख्यावधि-यथा।-हे सखि देखिये देखिये राधा सन्देश वार्त्ताहारक सुवल श्रीकृष्ण के कर्ण के पास कुछ कह रहे है और स्तोककृष्ण रहस्य-स्थल में अनगं लेख प्रदान कर रहा है रसद श्रीमाला को कण्ठ से अर्पण तथा विलास श्रीकृष्ण के हाथ में पत्र अर्पण कर रहा है। इस प्रकार सहचर गण सख्यता विस्तार कर रहे हैं। श्रीदाम, वसुदाम, भद्रसेन, किङ्किणी, सुदामादि वयस गुण से ज्येष्ठ हैं। अर्जुन, स्तोककृष्ण, दाम, भद्रक, विलासी, पुण्डरीक, विटकांद्यादि वयस में सम गुण में कनिष्ठ हैं; ॥२२॥

वयसा समा गुणैः- अर्जुन स्तोककृष्णश्च दामांशू भद्रकस्तथा।
कनिष्ठाः— विलासी पुण्डरीकश्च विटंकाद्यादयस्तथा।
वयः समा कनिष्ठास्तु गुणैः प्रियतमाः स्मृताः॥२२॥
वयो गुणैर्ज्येष्ठाः— वयो गुणैरधिकतां लावण्ये न्यूनतां गताः।
वात्सल्यगन्धसखाये तेऽधिकाः परिकीर्त्तिताः।
रामश्च मण्डलीभद्रो गोभद्रोऽथ वरुथपः।
भद्रवर्द्धनभद्रांगौ विजयः सुभटस्तथा,
इमे वयो गुणे ज्येष्ठाः गोपा अत्र प्रकीर्त्तिताः॥

सख्यं तु रक्षकाभिमानपूर्वकं।
अथ वयसा ज्येष्ठा—देवप्रस्थस्तथौजस्वी वृषभो मणिबन्धकः
गुणैः समाः— मकरन्दः कुसुमापीडो ज्येष्ठा अपि गुणैः समाः।
वयसा ज्येष्ठाः गुणैः कनिष्ठाः—भद्रवर्द्धनपत्तेन्द्र भट्टकरन्धमादयः।

वयस गुण से अधिक, लावण्य में न्यून, वात्सल्य गन्धमिश्र सखा गण अधिक से परिकीर्त्तित हैं। राम, मण्डलीभद्र, गोभद्र, भद्रवर्द्धन, भद्रांग, विजय, सुभट प्रभृति वय गुण से ज्येष्ठ हैं। रक्षकता अभिमान सख्य है। देवप्रस्थ, औजस्वी, वृषभ, मणिबन्धक, मकरन्द, कुसुमापीड़ वयस में ज्येष्ठ गुण में सम हैं। भद्रवर्द्धन, पत्तेन्द्र, भट्टकरन्धमादि वयस में ज्येष्ठ गुण में कनिष्ठ हैं। दास्य क्रिया में मुख्य, सख्यानन्द से सेवाकारी अर्जुन, कलविंकादिक कनिष्ठ हैं। अंशुमान, बलवीरक प्रभृति वयस में कनिष्ठ गुण में सम तथा तेजस्वि वलोद्रेकादिक वयस में कनिष्ठ गुण में ज्येष्ठ हैं सखाओं में कोई कोई सजातीपन से कोई मित्रता

वयसा गुणैः कनिष्ठाः–दास्यक्रियाप्रधाना ये सख्यानन्दैकसेविनः।
अर्जुनः कलविंकाद्याः कनिष्ठाः परिकीर्त्तिताः ॥

वयसा कनिष्ठाः गुणैः समाः–अंशुमान् बलवीरकादयः।

वयसा कनिष्ठाः गुणैः ज्येष्ठाः–तेजस्विबलोद्रेकादयः।

साजात्येन स्थिताः केचित्सन्मन्त्रित्वेन केचन।
वैहासकोपमाश्चान्ये हासकत्वेन तद्गताः।
प्रागल्भ्येनार्जवेनापि ते ह्यानन्दयत्यमुं।
वामवक्रिमवृन्देन केचिद्विस्मापयत्यमुं।
केचिद्वितण्डां कुर्वन्ति प्रगल्भा अमुना समं।
एवं विविधरूपेण प्रकृत्या मधुरा अपि।
विशुद्धमैत्रीचरितां मुदं कृष्णस्य तन्वते ॥ २३ ॥

अथोद्दीपनाः– विनोदनर्म्मविक्रान्तिवयोरूपादयस्तथा।
प्रियवर्गनिकुञ्जादिर्हरे रुद्दीपना मता इति।

वयः पौगण्डादि। प्रसाधनं धातुभिश्चित्रकरणादि। नियुद्धकेलि नृत्यसर्ववीथीगमनादिचेष्टितं। मण्डनं तु वेत्रवेणुविषाणयष्ट्यादयः

यष्टिः श्यामा त्रिहस्ता च विन्दुयाश्रयरूपिणी।
मणिस्वर्णैस्तु बद्धाग्रा स्वर्णबद्धां भागिनी ॥

भाव से कोई हास्य रस प्रकाश से, कोई चतुर या सरल भाव से, कोई सरल तथा कुटिल भाव द्वारा कोई वितण्डादि द्वारा विविध भाव से श्रीकृष्ण को सुख देते हैं ॥ २३ ॥

विनोद, परिहास, चेष्टा, वयस, रूपादि तथा प्रियवर्ग, निकुञ्ज प्रभृति उद्दीपन हैं। पौगण्डादि वयस, धातुओं से चित्र करणादिक,

अथानुभावाः— जलक्रीड़ा नियुद्धं च कन्दुकं द्यूतवाहकं।
पर्य्यंकासनदोलादि परीहासोऽत्र चित्रकं।
इत्यादिकोऽयं ज्ञेयमनुभावतया हरौ॥
सात्विकाः प्रसिद्धा

एव। अथ स्थायी–गौरवाद्यविनिर्मुक्ता विस्रंभात्समयो द्वयोः॥
सख्यं रतिः स्थायिभावः सा ज्ञेया भक्तिवर्त्मगैः।
इयमेव रतिः प्रणयादिका भवति।

अथवत्सलः॥

विभावैरनुभावैश्च सात्विकैर्व्यभिचारिभिः।
स्थायी पुष्टमुपागम्य वात्सल्यं रस उच्यते॥
एष वत्सलनाम्ना हि कृष्णो भक्तिरसो भवेत्।
तत्रालम्बनाः॥—श्रीकृष्णाश्च तथा वृद्धा अत्रालम्बनतां गताः॥ २५॥

प्रसाधन, जलक्रीडा, नृत्य, मार्ग-गमनादिक चेष्टा हैं। वेत्र, उष्णीष पाश, यष्टी प्रभृति मण्डन द्रव्य हैं। श्यामवर्ण, तीन हाथ प्रमाण, चिवुकाभरण (ठोढी तक लंबी) मणि तथा सुवर्ण से जड़े हुए अग्र भाग सुवर्णमयी यष्टि हैं। जलक्रीडा, युद्ध, कन्दुक, द्यूतवाहक, पर्य्यंकासन दोलादि अनुभाव हैं। सात्विक भाव प्रसिद्ध हैं। गौरवादि कोंसे रहित विस्रंभ से दोनों की समता ही सख्यरति है। सख्यरति प्रणयादि रूप को भी धारण करती है। अथ वत्सलरस कहते हैं। वत्सलता स्थायी–विभाव, अनुभाव, सात्विक, तथा व्यभिचारी भाव से पुष्ट हो कर वत्सल नामक भक्तिरस होता है। श्रीकृष्ण, तथा वृद्धगण आलम्बन हैं॥ २५॥

तत्र श्रीकृष्णः— तावांघ्रियुग्ममनुकृष्य सरीसृपन्तौ
घोषप्रघोषरुचिरं व्रजकर्दमेषु ।
तन्नादहृष्टमनसावनुसृत्य लोकं
मुग्धप्रभीतवदुपेयतु रन्तिमात्राः ॥

प्रायः वात्सल्ये कुमारस्यैव प्राधान्यं ॥

अथवृद्धाः— आधिक्येन रक्षाभ्यां हि लालकत्वादिना तथा ।
रक्षकत्वाभिमानाद्यैर्वृद्धा अत्र प्रकीर्त्तिताः ॥
पितृवर्गो मातृवर्गस्तयोः सख्यं ये समागताः ।
ब्राह्मणाः कुलवृद्धाश्च ते वृद्धाः परिकीर्त्तिताः ॥
नित्यसिद्धाः समाख्याताः व्रजस्था अवधिगताः ।

अथपितृवर्गः— पितामहः पिता चापि पितृव्याश्चापि कीर्त्तिताः ।
तत्र पिता श्रीव्रजेश्वरः परमयुवा श्यामपटो गौरां-
गोन्नततुन्दिलः ।

कृष्ण तथा बलराम दोनों-चरण युगल से (घुटुअन) व्रजकर्दम में चलने लगे। कटि तथा चरणों में पहिने हुए भूषण किंकिणी के शब्द बड़े मनोहर थे। और उन शब्दों से प्रसन्न होते थे। मनुष्यों के पीछे पीछे मुग्ध की तरह दो तीन पग चल कर फिर भय से माता के निकट आजाते थे। प्रायः करके वात्सल्य रस में कौमार अवस्था प्राधान्य है। अब वृद्ध कहते हैं बड़ापन तथा रक्षक भाव और पालक भाव से युक्त वृद्ध गण हैं। पितृवर्ग, मातृवर्ग, उभय के सखा गण, ब्राह्मण गण, कुलवृद्ध प्रभृति वृद्धगण जानना। यह सब व्रजस्थ सीमाप्राप्त नित्यसिद्ध हैं। पितामह, पिता, पितृ-

अथमातृवर्गः— माता मातामही चैव तद्भगिन्यःस्वयस्तथा।
पितृव्यपत्न्यस्तागोप्यो याः पद्म जहृतात्मजाः।

मातुः पितुः सखयस्तासाञ्च। ब्राह्मणाः द्विविधाः कुलगुरवःआश्रिताश्च। वृद्धाः कुलवृद्धा॥ २५॥

अथोद्दीपनाः॥—

वयः कौमारमेवात्र ह्यवधि परमं गताः।
अप्राप्ये प्राप्तिकृतिः शैशवं चापलं तथा।
जल्पितं स्मितलीलाद्या अत्र उद्दीपना मताः॥

अथ कौमारं॥—कौमारं त्रिविधं ज्ञेयमवस्थाभेदमाश्रितं।
श्रीकृष्णस्य किशोरत्वं सर्वत्रानुगतं भवेत्॥
किशोरेऽन्यावस्थानं धर्मधर्म्मि स्वभावतः।

वयगण, पितावर्ग हैं। तन्मध्ये से पिता व्रजराज, परमयुवक श्याम वस्त्रधारी, गौरवर्ण, लम्बा-उदर युक्त श्रीनन्द हैं। माता, मातामहि, उभय की भगिनीगण, पितृव्यपत्नीगण, तथा ब्रह्माद्वारा हरे हुए पुत्रगण जिनके, मातृवर्ग हैं। ब्राह्मणगण दो प्रकार हैं। कुलगुरुगण, आश्रितगण. वृद्ध शब्द से कुलवृद्ध हैं॥ २५॥

वात्सल्य रस में कौमार वयस सीमा प्राप्त है। अप्राप्य वस्तु की प्राप्ति इच्छा, शैशवता, चपलभाव, बोलना, स्मित, लीला प्रभृति उद्दीपन विभाव जानना। अवस्था भेद से कौमार त्रिविध हैं किन्तु श्रीकृष्ण की किशोर अवस्था सर्वत्र अनुगत है। यानी श्रीकृष्ण नित्य किशोर हैं। नित्यकिशोर अवस्था में रहते हुए भी और अवस्था की प्राप्ती धर्म्म धर्म्मि स्वभाव से जानना। आद्य कौमार में मध्यदेश की स्थूलता, अपांग की शुभ्रता तथा थूदो किम्वा तीन दाँतों

कौमार आद्यावस्था—कौमारे स्थूलता मध्ये श्वेतिमापांगयोस्तथा।
दशने द्वित्रिता वापि सर्वांगे व्यक्तमार्दवं॥

कौमारे मध्यावस्था—मुखारविन्दे केशान्तः कर्णयोः छिद्रिता तथा।
कलोक्तिर्नग्नता मध्ये कौमारे रिङ्गणं तथा॥

अथ चरमं॥—कचित्कृशं मध्यमभागे वक्षसः प्रथिमा तथा।
कटीरे फणपट्टं च शिरसः काकपक्षिता।
कौमारं चरमं ज्ञेयमनुभावैस्तथापरैः।

कैशोरादिके तु अपांगयोः रक्तिमा वक्षसि तुंगत्वं रोमावलीत्यादि वत्सान्गुध्नन्कचिदसमये कोशसंजातहास·······इत्यादि बाल्य-चापल्यं। अथानुभावाः पालनं हितादेशः आशीर्वादः लालनं, शिरोघ्राणादिकं सात्विकाः स्तन्यस्रावस्तम्भादयः। अथव्यभिचारिणः हर्षादयः॥ २६॥ इति श्रीनारायण भट्ट विरचितायां भक्तिरस-तरंगिण्यां भक्तिरसप्रकाशस्तृतीयोल्लासः॥

का उठना सर्वांग में मृदुता प्रभृति होता है। मध्य कौमार में मुखार-विन्द पर केश, अलक बिखरना, कानों का छिद्र वा मोठा बोलना, नग्नता, घुटवन प्रभृति है। अन्त्यकौमार में मध्यस्थल की कृशता, वक्षः का विस्तार, कमर में सर्प छाल, मस्तक में काक पक्ष प्रभृति जानना, आदि कैशोर में किन्तु अपांग की लालिमा, वक्षः की उचाई तथा रोमावली का प्रकट है "वत्स गण को अस मय पर खोल देना" प्रभृति श्लोक में बाल्य चापल वर्णन है। पालन, हितोपदेश, आशीर्वाद, लालन, शिरोघ्राणादि अनुभाव, स्तन्य क्षरण, स्तम्भ प्रभृति सात्विक भाव, तथा हर्षादिक व्यभिचा-

क्वमे रूपं राधे कथय रसभृङ्गावलिगतं
क्व ते रंगो यस्मिन्भ्रमति सदयं कृष्णहृदयं
इति भ्रामं भ्रामं भ्रमभरविविदूनो रसनिधे
भ्रमांवानैकैषीन्तव चरणसेवां शुभफलं ॥

अथमधुरोरसः॥—विभावैरनुभावैश्च सात्विकैर्व्यभिचारिभिः।
रतिः स्वादुत्वमापन्ना सैव भक्तिरसो भवेत्॥

तत्र विभावाः द्विविधाः आलम्बना उद्दीपनाश्च उद्दीपना तु वक्ष्यामः आलम्बनाश्च।-अस्मिन्नालम्बनः कृष्णः तथा तस्यच वल्लभाः॥

तत्र श्रीकृष्णः॥—बर्हापीडं नटवरवपुः कर्णयोः कर्णिकारं
बिभ्रद्वासः कनककपिशं वैजयन्तीञ्च मालां।
रन्ध्रान्वेणो रधरसुधया पूरयन्गोपवृन्दै
र्वृन्दारण्यं स्वपदरमणं प्राविशद्गीतकीर्त्तिः॥

ही भाव जानना ॥ २६ ॥ श्रीनारायणभट्टजीविरचित भक्तिरस तरंगिणी का तृतीयोल्लास समाप्त हुआ।

अब मधुररस का वर्णन करते हैं। विभाव, अनुभाव, सात्विक तथा व्यभिचारी भावों से मधुरा नामक राति आस्वादको प्राप्त हो कर मधुर नामक भक्तिरस होता है। आलम्बन, उद्दीपन भेद से विभाव दो प्रकार के हैं उद्दीपन आगे कहेंगें। इस रस में श्रीकृष्ण तथा उनके प्रियागण आलम्बन हैं।

श्रीकृष्ण मयूरपुच्छ निर्म्मित शिरो भूषण, तथा नटवर वेष, कानों में कर्णिकार (पुष्प गुच्छ) गोपीगण कर्त्तृक गीतकीर्त्ति सुवर्ण सदृश वस्त्र तथा वैजयन्ती माला धारण पूर्वक अधर सुधा

तद्गुणाः॥— सुन्दरांगः किशोरश्च रुचिरो नित्यनूतनः ।
सत्कीर्त्तिर्बलवान्धीर उदारो रसविद्स्थिरः ।
मानापनोदनपटुस्तेजस्वी सर्वरञ्जकः ।
युवतीरञ्जकश्चैव वंशीनादे विशारदः ।
इत्यादयो गुणाः ॥१॥

अथ नायकभेदाः—कृष्णश्चतुर्विधोऽसौ धीरोदात्तश्च धीरललितश्च ।
धीरप्रशान्तनामा ततश्च धीरोद्धतः ख्यातः ॥
पतिश्चोपपतिश्चैव वैशिकश्चेति स त्रिधा ।
त्रिभिश्चतुर्द्धा गुणितः कृष्णो द्वादशभेदगः ॥
अनुकूलः शठो धृष्टो दक्षिणश्चेति भेदतः ।
एतैश्च गुणितोऽष्टचत्वारिंशद्भिर्भेदगः ॥
उत्तमो मध्यमोऽन्त्यश्च त्रिभिरेतैर्विभेदितः ।
शताधिकचतुश्चत्वारिंशद्भेदैस्तु भेदितः ॥

से वेणु के छिद्रों को भरते हुए मत्र चरण चिन्हों से प्रीति जनक वृन्दावन में प्रवेश करने लगे।

सुन्दरांग, किशोर, रुचिशील, नित्यनूतन, सत्कीर्ति परायण, बलवान, धीर उदार, रसज्ञ, स्थिर, मान दूर करने में चतुर, तेजस्वी, सर्वरंजक, युवतीरंजक, वंशीनाद में पण्डित प्रभृति गुण हैं ॥१॥

अब नायक भेद वर्णन करते हैं। धीरोदात्त, धीरललित, धीरप्रशान्त, धीरोद्धत भेद से श्रीकृष्ण चार प्रकार के हैं। पति, उपपति, वैशिक भेद से प्रत्येक तीन भेद गुणित होकर श्रीकृष्ण १२ प्रकार हुए हैं। फिर, अनुकूल, शठ, धृष्ट, दक्षिण भेद से प्रत्येक

धीरोदात्तः— दयावानतिगम्भीरो विनीतः सत्यसारवान् ।
दृढव्रतश्तितिक्षावानात्मश्लाघापराङ्मुखः
निगूढाहङ्कृतिर्धीरैर्धीरोदात्त उदाहृतः ॥

यथाः—न पारयेऽहं निरवद्य संयुजां स्वसाधुकृत्यं विबुधायुषापि वः
यामाभजन दुर्जरगेहश्रृङ्खलाः संवृश्च्य तद्वः प्रतियातु साधुना ।

यथा वाः— मम प्रतिभटवरदर्पहारि लीलः
शरणागतावजिरक्षणव्रतोऽसौ ।
सुरगणकृतसंस्तवेन लज्जां
वधुरिमपूरसुधाम्बुधिस्तनोति ॥२॥

अथ धीरललितः—पितृभ्यां गमितोऽत्यन्तं नैश्चिन्त्यं प्रेयसीवशः
विश्रब्धो नवतारुण्यो धीरलालित्यधर्मभाक् ॥

चार प्रकार के हैं। गुणित होकर ४८ भेद हुए हैं फिर उत्तम, मध्यम तथा अधमकनिष्ट भेद से गुणित होकर १४४ प्रकार नायक भेद वाले श्रीकृष्ण हुए हैं। दयावान्, अत्यन्त गम्भीर, विनीत, सत्यवान, दृढ़व्रत, क्षमाशील; आत्मप्रशंसासे विरहित तथा गुप्त अहंकारयुक्त धीरोदात्त है। हेगोपीयों मैं नित्य मत्परायण आप सबोंका ब्रह्मा की परमायु पाकर भी प्रत्युपकार नहीं कर सकूंगा। क्योंकि आप सबों ने अच्छेद्य गृह श्रृङ्खला तोड़कर मुझसे प्रीति किया है।

किम्वा—प्रतिपक्षी योद्धाओं का अभिमान चूर्ण करने वाले, शरणागत भक्तों की रक्षा में व्रती, माधुर्य्य प्रवाह के सागर श्रीकृष्ण आज देवतागण से स्तुत होकर लज्जित हो रहे हैं।

कृष्णसम्बन्धिनः सर्वे नित्या एव गुणास्ततः।
भक्तस्यैव यथाचित्तमाविर्भावो मतो बुधैः ॥

सर्वरसकदम्बः श्रीकृष्णस्तत्र रसराजो मधुरोऽन्ये परिकरास्तथा गुणराजो धीरललितोऽन्ये धीरोदात्तादयः परिकराः श्रीकृष्णे तेषामाविर्भावस्तत्त द्भक्तहृदयानुसारात् । एवं जातिभेदेऽपि अनुकूल एव स्वरूपं शठधृष्टदक्षिणादयस्तु परिकरा इत्याद्युह्यं ।

यथा—नितरां शिशुभावतः पितृभ्यामवलोक्य व्यवहारकृत्यभारः।
सखिभि र्विहरन्नसौ निकुञ्जे वृषभानो स्तनयामलंचकार ॥

अथ धीरप्रशान्तः—नायिका तत्सहायेषु क्लेशितोऽपि समो भवेत्।
विवेचको विनीतश्च धीरशान्त उदीरितः ॥

यथा—राधां वञ्जुलकुञ्जे विनिधाय (ततो)ऽन्यकुञ्ज आत्मानं।
गमयन्नपि कृष्णो नासूयामालिषु प्रापत् ॥

माता पिता से अत्यन्त निश्चिन्त हो प्रियागण के वशवर्त्ती, विदग्ध, नवतरुणाई प्रभृति धर्म धीरललित में है। श्रीकृष्ण सम्बन्धी गुण समूह नित्य हैं। भक्तों के भावानुयायी हो उसका यथोचित आविर्भाव होता है।।

यथा—सर्वदा शिशु भाव से माता पिता द्वारा, गृह कार्य्य तथा व्यवहार प्रभृति का भार न देने के कारण निश्चिन्त होकर सखाओं के साथ विचरण पूर्वक श्रीराधिका को विविध भूषण से भूषित करने लगे। विचारशील, विनीत धीरशान्त नायक हैं। मात्सर्य-

अथ धीरोद्धत:— मात्सर्य्यवानहंकारी मानुजान्यत्र रोषण: ।
मायावी चञ्चलश्चेति धीरोद्धत उदाहृत: ॥ ३ ॥

यथा— चन्द्रावलीवाहुलतावलम्बिनं
विधाय मद्वेशधरं कमप्यहो ।
पक्षं नयन्ती वृषभानुनन्दिनी
नेत्रांगणं किं न जहासि जिह्मतां ।

तत्तद्वेषण सर्वत्र प्रवेशात् । यद्यपि मातसर्य्यादयो दोषास्तथापित । रसविशेषानुभावत्वाद्गुणा एव ॥

अथ पति:— पतिस्तु विधिना पाणिग्राहक: कथ्यते वुधै: ।

कात्यायनि महामायेत्यादिभावापन्नकन्यानां पतिभावा ज्ञेया: सत्यभामादिनां प्रसिद्धमेव ।

अथोपपति:— अनुरागेण बलिना परकीयाबलार्थिना ।
तदीयप्रेमजीवातु: कृष्णस्तूपपति: स्मृत: ॥

युक्त, अहंकार रहित, अन्यत्र क्रोधप्राप्त, मायावी, चञ्चल, धीरोद्धत है ॥ ३ ॥

यद्यपि मात्सर्य्यादि, दोष हैं तो भी रस विशेष पोषण से इन्हें गुण जानना । विधिपूर्वक पाणिग्रह करने वाले पति हैं । कात्यायनि, महामाया, प्रभृति भावयुक्त कन्यायें "पतिमन्या" हैं । सत्यभामादिकों के पतिभाव प्रसिद्ध हैं । अनुराग युक्त, पररमणी इच्छुक, पररमणी प्रेम ही जिनका जीवन, सो उपपति श्रीकृष्ण जानना । गोकुलेन्द्र श्रीकृष्ण कभी मनोहर नारीवेश धारण कर कभी सुन्दर ब्राह्मण मूर्त्ति धारण कर विविध छलों से गोप स्त्रियों

यथा— युवतिसदसि नारीवेषधारी कदाचिद्
द्विजवरवरमूर्त्ति र्दीप्यति कापि कृष्ण:।
इति बहुविधभावै र्गोपकान्ता किशोरीः
कलयति किल साध्वी र्गोकुले गोकुलेन्द्रः ॥

अथ वैशिकः— वेश्योपभोगाच्चतुरो यो भवेत्सतु वैशिकः।
वैशिकत्वादिचातुर्यं ब्रजे नैव प्रदृश्यते।
श्रीकृष्णस्य स्वरूपेऽस्य गुणत्वेन प्रवेशनात्।
जलक्रीड़ावृतं कापि वारमुख्यावलावृतं।
इत्यादौ द्वारकायां तु गुणत्वेन प्रदृश्यते।
चकोरैः स्वादिते चन्द्रे देवत्वं गुणतां व्रजेत ॥४॥

अथानुकूलः— अवधीभुतया रतया सदात्यक्तान्यनानायिकाः।
यस्य नीरवधि प्रेम स तस्यामनुकूलकः।

के दर्शन कर रहे हैं। वेश्या उपभोग में चतुर वैशिक है। ब्रज में श्रीकृष्ण का वैशिकत्व नहीं है। किन्तु श्रीकृष्ण स्वरुप में प्रवेश करने से वैशिक गुण हैं। द्वारका में दृष्ट है। यथा वारमुखी अबलागण से कहीं जलक्रीड़ा कर रहे थे जैसे चकोर से स्वादित होकर देवत्व चन्द्र में गुण है ॥ ४ ॥

अत्यन्त आसक्ति से अन्य नायिका परित्याग पूर्वक एक नायिका में जिसका निरन्तर प्रेम हो वह अनुकूल है जैसे अत्यन्त आसक्ति के कारण अन्य गोपी समूह परित्याग कर केवल श्रीराधा में निरन्तर श्रीकृष्ण का अनुकूल भाव है। रसज्ञ गण श्री सीता देवी में श्रीरामचन्द्र जी का दृष्टान्त देते हैं। श्रीकृष्ण के अन्य

अतिरक्तितया तस्यां सदा त्यक्तान्यनायिकः।
कृष्ण ऽनुकूलो विज्ञेयो राधायामेव नित्यदा ॥
सीतायां रामदृष्टान्तो रघ्वज्ञैयदुदाहृतः।
तद्वदत्रापि विज्ञे गौरतेरद्वैत दर्शनात्।
परां काष्ठां हि संप्राप्ता रतिरत्रैव दृश्यते।
बिन्दुबिन्दुतयान्यासु तस्मादत्रानुकूलता ॥

यथा:— सच्चातुर्य्यदम्बचुम्बितधियो लावण्य सारोज्वला
यस्मिन्गोकुलमण्डले व्रजपतेस्तिष्ठन्ति किं नागनाः।
राधे सुन्दरताशिखामणिरसि त्वं मोदनीकौमुदी
प्रेक्ष्य त्वां हि चकोरकृष्णरसिकस्त्वन्निष्ठ एवाभवत् ॥

अथ शठः— प्रियं वक्ति पुरा ह्यस्यौ शठो गूढापराधकृत् ॥

अथ धृष्टः— नेता त्यक्तान्ययुवति भोगलक्ष्मा पि निर्भयः।
वाग्भंग्या वञ्चकश्चेति धृष्टोऽयं कथितो बुधैः ॥

अथ दक्षिणः— यो गौरवमवं प्रेम दाक्षिण्यं पूर्वयोषिति।
न मुञ्चत्यन्यचित्तोऽपि ज्ञेयोऽसौ दक्षिणो यथा ॥

यद्वा— नायिकास्वप्येनकासु तुल्यो दक्षिण उच्यते ॥४॥

नायिका में बिन्दु भाव से आसक्ति तथा श्री राधा में परकाष्टा आसक्ति होने से अनुकूलता है। क्या श्रीबृजराजके गोकुल मण्डल में चतुरता युक्त बुद्धि, लावण्य सारता से उज्वल अन्य ललनायें नहीं हैं, हे श्री राधे तुम सुन्दरता की शिरो मन्दिर आनन्ददायिनी कौमदी हो अतः श्री कृष्ण रसिक चकोर के समान त्वन्निष्ठ हो रहे हैं। अन्तर में गूढापराधकी तथा सामने प्रियवादी शठ है।

यथा— पाली तिष्ठति मल्लिकाविरचितां मालां तथा लासिका
ताम्बुलं सुविलासिका मलयजं शुद्धांगरागं तथा।
पद्मा प्रेषितपत्रिकां सुरभितां धृत्वेति विज्ञातवान्
श्रीकृष्णः प्रथमोक्तिसाध्वसमना नात्याद्रियत्कामपि ॥

अथसत्वभेदाः—

कृष्णे ह्यष्टौ समाख्याताः सत्वभेदास्तु पौरुषाः ॥
शोभा विलासो माधुर्य्यं धैर्य्यं गाम्भीर्य्यमेवच।
ललितौदार्य्यतेजांसि सत्वभेदास्तु पौरुषाः ॥

तत्र शोभा— नीचे दयाधिके स्पर्द्धा शौर्य्योत्साही च दक्षता।
सत्यं प्रकटतां याति सा शोभेति प्रकीर्त्तिता ॥

शौर्य्यं सत्वसार, उत्साहः धैर्य्यं, दक्षता शीघ्रकारित्वं।

यथा— ब्रह्मन्संत्रासमेनं त्यज नहि मशके क्रोधितासेति सिंहः।

और में चित्त लगने पर भी पूर्व रमणी में गौरव प्रेम दाक्षिण्यादिक न छोड़ने वाले दक्षिण है। किम्वा अनेक नायिकाओं में तुल्य भाव दक्षिण है।

श्रीकृष्ण में पुरुष सम्वन्धि सत्वभेद से अष्टगुण हैं। जैसे शोभा, विलास, माधुर्य्य, धैर्य्य, गाम्भीर्य्य, ललित, औदार्य्य, तेज। नीच जन में दया करने में स्पृहा, शूरता, उत्साही, दक्षता, सत्यवादिता प्रभृति गुणविशिष्ट शोभा है शौर्य्य-सत्वसार, उत्साह धैर्य्य, दक्षता शीघ्रकारित्व जानना।

किन्तु श्रीरामघाव्व्यं प्रवहति परमामप्ययाघेऽपिलज्जां।
तत्राप्येनं दृग्ञ्चने निहितनयनतां कारयन्गर्वभंगं
कुर्वन्नन्द्रीन्द मिन्द्रप्रमदविनशानश्चादधे हंसलीलं ॥

अथविलासः— वृषभस्येव गम्भीरो गतिर्धीरं च दर्शनं।
सस्मितश्च वचो यत्र स विलास इतीर्य्यते॥

यथा— गजवरगति रम्य काननालीं
कमलदलेक्षण ईक्षमाण एषः।
विलसति पुरतो विलासशाली
त्रिभुवनसुन्दरतासमुद्र चन्द्रः॥६॥

तन्माधुर्य्यं— लीलाक्षीणां रसनिधिदृशां कश्चमत्कारकारी
वृष्या गत्या विविधवचसा वञ्चकस्यापि रीत्या
कृष्णस्यैवं स्मितपरिमलैरूर्जितोऽसौप्रमोद
स्तुंगे गोष्ठस्थलपरिसरे राधया तर्कितोऽभूत॥

वृषभके सदृश गम्भीर गमन, धीर-दृष्टि, मन्दहास्य वाणी, विलास है यथा- त्रिभुवन सुन्दरता रूपी सागर से उत्थित श्रीकृष्ण रूपी चन्द विलासी सन्मुख में विलास कर रहे हैं। गजश्रेष्ठ का गमन है जिसमें, तथा कमल नेत्र से कानन समूह को देख रहे हैं॥ ६ ॥

वृषभ सदृश गमन से, सब के वञ्चन शाली विविध वचन से तथा स्मित परिमल से अत्यन्त उर्जित यह कौन है। जो कि रस-समुद्र दृष्टि परायण, चञ्चलाक्षियों को आश्चर्यकारी है। इस प्रकार उच्च गोष्ट स्थल प्रान्त में श्रीराधा द्वारा श्रीकृष्ण तर्कित हुए थे।

वञ्चनक्रिययापि प्रमोदः। कः ममापि चमत्कारीति सखीप्रत्युक्तिः

अथ धैर्य्य— कार्य्याद्चलनं विघ्नैर्धैर्य्यमाहुर्मनीषिणः।

अथ गाम्भीर्य्यं— मनसः क्षोभराहित्यं गाम्भीर्य्यं तदुदाहृतं ॥

अथ ललितं— शृंगारप्रचुरा चेष्टा यत्र तं ललितं विदुः ॥

यथा— अरिष्टेन व्यग्रे विविधकटुपाकं हि मिलिते
तथाप्यग्रे कृष्णः कलयति रसाडम्बरघटां।
अहो राधा कण्ठे सुभगसुमनो राजिरचिता
मुदं चन्द्रोमांचो विरचयति मालां मुररिपुः ॥

अथौदार्य्यं— आत्मना सह सर्व्वस्वं देयमौदार्य्यमुच्यते ॥

अथतेजः— तेजस्वित्वमवज्ञादेरसहिष्णुत्वमुच्यते ॥

अथसहायाः ॥

सखा विदूषकश्चेटः पीठमर्द्दो विटस्तथा।
सहायाः पञ्चधा ज्ञेया स्तत्तद्भेदैस्त्वनेकधा ॥

तत्रसखा— त्रिविधोऽपि वयोगुण सम सुबलादिः ॥ ७ ॥

यहाँ पर छलना करने में भी आमोद दायक, मुझ को अचंभित आने वाले ये कौन है। यह सखी के प्रति श्रीराधिकाजी ने कहे हैं। अत्यन्त विघ्नों के कारण से भी कार्य्य से नहीं हटना 'धैर्य्य' है। मनका क्षोभ राहित्य गाम्भीर्य्य है। जहाँ शृंगार प्रचुर चेष्टा हैं उसको ललित कहते हैं। आत्मा के साथ सर्वस्व देना औदार्य्य है। अन्य का अवज्ञा न सहना तेज है। अब सहाय कहते हैं। सखा, विदूषक, चेट, पीठमर्द, विट भेद से पाँच प्रकार है। प्रत्येक भेद से अनेक प्रकार हैं ॥ ७ ॥

अथा — द्यूतोद्भूतकलेः प्रसाद्ययुवतीं क्रोधाद्गृहं प्रस्थितां
प्रत्यावर्त्य तथा करोत्यविरलं कामस्य चोद्दापिकां।
मालां खिन्नतनुं रतान्तमिलितं विश्रामयन्केशवं
कुत्रायं सुबलोऽधिकारपदवीं नागामिसेवाविधौ।

अथविदूषकः— विकृतांगवचो वेषै र्हास्यकारी विदूषकः।
भोजने कलहे प्रीतो वसन्तादिः प्रकीर्त्तितः।

अथचेटः— सन्धानचतुरश्चेटो गूढ़कर्म्मा प्रगल्भधीः।
भृंगारो भगुरादिश्च प्रसिद्धिं गोकुले गतः॥

अथपीठमर्द्दः— सर्वांशे नायकसमः प्रेम्णैवानुगतो हि सः।
पीठमर्द्दः स कथितः श्रीदामादिश्च गोकुले॥

अथविटः— विटोपचारचतुरो धूर्त्तो गोष्ठीविशारदः।
कामतन्त्रकलावेदी विट इत्यभिधीयते॥

सुबल द्यूतक्रीड़ा की कलह से रोष पूर्वक गृह को प्रस्थान कारिणी युवती को प्रसन्न कर श्रीकृष्ण के पास लौटा दिया है तथा स्वयं कामोद्दीपक माला को बनाने लगा। और क्रीड़ा से श्रान्त तथा खिन्नतन श्रीकृष्ण को विश्राम कराने लगा। इस प्रकार उसे समस्त सेवा में अधिकार प्राप्त हुआ है। विकृत अंग तथा विकृत वचनकारी और हास्यशील, भोजन तथा कलह में प्रसन्न परायण वसन्तादिक विदूषक हैं। सन्धान कर्म्म में चतुर, गूढ़कर्म्मी, प्रगल्भबुद्धिशील-भृंगार भंगुरादिक व्रज में चेट है। सर्वांश में नायक तुल्य, प्रेम से अनुगत, श्रीदामादिक गोकुल में पीठमर्द्द कहे गये हैं। वैश्यानुकूल उपचार में चतुर, धूर्त्त, गोष्ठी में पण्डित,

तेषां गुणाः— देशकालज्ञता भाषामाधुर्य्यं च विदग्धता।
प्रोत्साहने कुशलता यथोक्तकथनं तथा।
निगूढमन्त्रता चेति सहायानामिमे गुणाः ॥८॥

यथा— योषिद्वेषवतामुना रतिकलालुब्धेन राधागृहे
होलीपर्व्वणि शर्व्वरीमुखमियं नीताधुना नागतः।
इत्थं गोपविटैः शुभैरभिहिता गार्गीसुरार्चाघटी
हानिव्याजरुषा समस्तललनामध्याद्धरिं प्रापयत् ॥

अथ श्रीकृष्णवल्लभाः ॥

कृष्णसाधारणगुणैरुपेताः कृष्णवल्लभाः।

ततश्च श्रीकृष्णसाधारणगुणं बिना नायकात्वं न सिध्यति। सिद्धे नायिकात्वे समत्वं समत्वे सर्वासां श्रीकृष्णस्यावतारत्वं तद्वल्लभानामवतारत्वमिति एवं सर्वासम्वतमिति वस्तुतस्तु रसविचारेण श्रीकृष्णस्यावतारित्वं मधुररसेऽवतारित्वस्या प्रवेशात् पूर्ण-

---

कामकलाभिज्ञ विट है। देश काल पात्रज्ञता, मधुरभाषणता, कर्म्म में चतुरता, उत्साह देने में कुशलता, यथा यथ कहना, गुप्त मन्त्रणा करना सहायकारियों का गुण समझ जानना ॥ ८ ॥

यथा—श्रीकृष्ण ने योषिद् वेश धारण पूर्वक रतिकेलि में लुब्ध हो कर इस होलिका पर्व में राधिका के गृह में रात बितायी। अब तक यहाँ पर नहीं आया। गार्गी ने इस प्रकार कह कर गोपबालक गण द्वारा देव पूजा के महूर्त्त की हानि के छल से क्रुद्ध हो कर श्रीकृष्ण को गोपस्त्रीओं के बीच से लाई है। अब कृष्ण-वल्लभागण वर्णन करते हैं। श्रीकृष्ण के साधारण गुण समूह

व्यापकत्वादिवत्। तत्रश्च कृष्णस्य प्रियवर्गाणां च रसप्रवर्त्तकत्व-मेवावतारित्वं न त्वैश्वर्य्येण ॥

अथ सामान्यतः नायिकानां निरूपणं।

स्वकीया परकीया च सामान्या नायिका त्रिधा।
स्वकीया त्रिविधा ज्ञेया प्रौढ़ा मुग्धा च मध्यमा ॥६
धीराधीरा च धीराधीरा चेति भेदतः।
प्रौढ़ा मध्या त्रिधा भिन्नाषट् भेदा उभयो मताः।
ज्येष्ठाकनिष्ठाभेदेन द्वैविध्यं च ततः परं ॥
त्रयोदश भिधा स्वीया मुग्धयासह कीर्त्तिता।
उत्तमाधममध्यैः सा त्रिशन्नवभिदां गता।
द्वादशत्रिशती स्वीया स्वाष्टतादष्टभेदतः ॥

से युक्त कृष्ण वल्लभा हैं। श्रीकृष्ण के बिना साधारण गुणों से नायिकात्व सिद्ध नहीं है। नायिकात्व सिद्ध होने से समान है। समानत्व सिद्ध होने पर वल्लभा गण श्रीकृष्ण के अवतार हुए हैं। वास्तविक रस विचार में श्रीकृष्ण का अवतारीत्व सिद्ध है मधुर रस में अवतारीत्व अन्तः प्रवेश का कारण से जैसे पूर्ण व्यापकत्वादि गुण श्रीकृष्ण में प्रवेश होते हैं। इसलिये श्रीकृष्ण तथा प्रियवर्ग समूह का रस कारण से अवतारित्व है किन्तु ऐश्वर्य्य कारण से नहीं है। अब सामान्य प्रकार से नायिका निरूपण करते हैं। नायिका स्वकीया, परकीया तथा सामान्या भेद से पहिले तीन प्रकार है। फिर प्रौढ़ा, मुग्धा, मध्यमादि भेद से स्वकीया त्रिविध है ॥ ६ ॥

परकीया द्विधा कन्या विवाहिता। विवाहिता पूर्ववत् त्रयोदशधा एवं च कन्यया चतुर्दशधा ततश्चोत्तमादित्रिभेदैः द्विचत्वारिंश द्विद्विधा ततः खण्डितादि अष्टभेदैः त्रिशत्षट् त्रिशत् द्विधा। एवं परकीयावत् सामान्यापि ततश्च सामान्यतः चतुरशीत्यानवशतानि भेदाः ज्ञेयाः। तत्र द्वारकायां स्वकीयासामान्ययोः प्रसिद्धिः दशमे वारमुख्यावला-वृतमित्यत्र कश्चिदोकुलकन्यासु श्रीकृष्णे पतिभावना तासां स्वकीयता सिद्धिरर्चनादेव निश्चिता ॥

अथपरकीया— परकीया द्विधा ज्ञेया कन्योढ़ा चेति भेदतः।
रसस्य परमाकाष्ठा सुस्थिरात्रैव संमता ॥
अन्यथा निर्गुणत्यागी शुकः किमिति वर्णयेत् ॥

धीरा, अधीरा, धीराधीरा भेद से प्रौढ़ा और मध्या दोनों के ६ भेद हैं। प्रत्येक फिर ज्येष्ठा कनिष्ठा भेद से द्विविध है। कुल मुग्धा के साथ स्वकीया १३ प्रकार हुए हैं। प्रत्येक उत्तम, अधम, मध्यम भेद से ३९ प्रकार तथा खण्डितादि आठ प्रकार से गुणित होकर ३१२ प्रकार स्वकीया भेद है। परकीया दो प्रकार है कन्या तथा विवाहिता। विवाहिता पूर्व की तरह १३ प्रकार की है। कन्या एक प्रकार है। कन्या की साथ मिलकर १४ प्रकार विवाहिता है। उत्तम, मध्यम, कनिष्ठ भेद से ४२ प्रकार हैं। फिर खण्डितादि आठ प्रकार से गुणित होकर ३३६ प्रकार की परकीया है। परकीया की तरह सामान्य नायिका भी जानना। कुल ९८४ भेद हैं। द्वारका में स्वकीया तथा सामान्या की प्रसिद्धि है। यथा दशम में "वारमुख्या अवलागण से वृत होकर"। कोई कोई गोकुले कन्या की श्रीकृष्ण

कन्या त्वनूढा सा च त्रिधा मुग्धा मध्या प्रगल्भा चेति। मध्या-प्रगल्भयो: धीरादिभेदेन षट् विधत्वं ततश्च गुणज्येष्ठा कनिष्ठा चेति भेदेन द्विधा ततश्च द्वादशधा। मुग्धाचेति त्रयोदशभेदवती कन्येति यथा दशमे।—

मानयं भो! कृष्णास्त्वां तु नन्दगोपसुतं प्रियं।
जानीमोंग व्रजश्लाघ्यं देहि वासांसि वोपिताः।

आचार्य्यैर्मुग्धादीनामेव वाक्यत्वेन व्याकृतः। वस्तुतस्तु "गान्धर्ववृत्तिः स्वीयात्वे हेतुरार्याचिते किल।
शकुन्तला वन् ज्ञेयो हि विवाहस्याप्यभावतः।

उढ़ास्तु — अनुरागार्पितात्मानो विलासभरलालसाः।
प्रीत्यैव स्वीकृता यास्तु परकीया इति स्मृताः
सर्वानन्दकदम्बेऽपि शरीरे दुर्बलादिकं।

में परिभावना है। कात्यायनी व्रतादिश्रा से उन्हीं के स्वकीयात्व सिद्धि है। अब परकीया वर्णन करते हैं। कन्या तथा ऊढ़ा भेद से परकीया द्विविध है। परकीया से रस की पराकाष्ठा होती है। नहीं तो निर्गुण, त्यागी श्रीशुक जी ने कैसे वर्णन करते॥

कन्या अविवाहिता है। कन्या मुग्धा, मध्या, प्रगल्भा भेद से त्रिविध है। मध्या तथा प्रगल्भा धीरा, अधीरा, धीराधीरा भेद से ६ प्रकार की है। फिर गुण से ज्येष्ठा तथा कनिष्ठा भेद से १२ प्रकार और १ प्रकार मुग्धा मिलकर १३ प्रकार की कन्या है। जैसे दशम में:—

अतः पतीनां देवीनां न भवेत्स्पर्शयोग्यता ।
अतो वीभत्सरोगादेरुपयोगोऽपि दृश्यते ॥
भंग्या वञ्चितशीलेन वञ्चितैः पतिभिः सदा ।
न जातु व्रजदेवीनां संगमो विनयादिभिः ॥
द्विधात्र ता विनिर्दिष्टाः सादयो नादयस्तथा ।
मुनयो लौकिका देव्यः श्रुते च शिरसस्तथा ।
सादयस्तु चतुर्धा स्युरेकधा नादयो मताः ॥
तत्रमुनयः— श्रीकृष्णोपासकाः सर्वे मन्त्रनिष्ठैकमानसाः ।
सौन्दर्य्यं वीक्ष्य रामस्य प्रोत्पन्नरतयस्तदा ।
लब्धभावा व्रजे गोप्यो जाता पाद्मे इतीरितं ॥
भावविशेषेणैव श्रीकृष्णस्वरुपास्वादिता ॥

आचार्य्योंश्रों ने मुग्धादिकों का ··· वाक्य करके कहे हैं। वास्तविक, गान्धर्व्व वृत्ति स्वीया का हेतु है। कात्यायनी अर्च्चन में दृष्ट हैं। जैसे बिना विवाह से भी शकुन्तला है। केवल अनुराग युक्तात्मा होकर विलास समूह में लुब्ध, प्रीति से स्वीकृत परकीया है। समस्त आनन्दकदम्ब से युक्त शरीर में योगमाया द्वारा दुर्बलतादिक प्राप्त है। इसलिये व्रजगोपीयों को पति की स्पर्शयोग्यता नहीं थी। इसी कारण वीभत्स रोगादि की भी उपयोगित दिखने में आई है। छल से विनयादि पूर्वक पतियों से वञ्चित होती थी अर्थात् कभी संग नहीं हुआ था।

गोपियाँ दो प्रकार की हैं। सादि, तथा अनादि हैं। मुनि, लौकिक, देवी, उपनिषद् भेद से सादि चार प्रकार तथा अनादि

उत्तरोत्तरखण्डे पाद्मे पञ्चाशत्तमेऽध्याये—

पुरा महर्षयः सर्वे दण्डकारण्यवासिनः।
दृष्ट्वा रामं हरिं तत्र भोक्तुमिच्छन्सुविग्रहं।
ते सर्वे स्त्रीत्वमापन्ना समुद्भूताश्च गोकुले॥
हरिं संप्राप्तकामेन ततो मुक्ता भवार्णवात्॥

अथलौकिकाः— लौकिकाः साधनैः सिद्धाः द्विविधोपासनानुगाः।
राधोपासनया काश्चित्युगलस्यापि काश्चन।
वृन्दावने चतुर्द्धास्युः सालोक्यादिविभेदतः॥
सालोक्यादिविभेदोऽत्र राधया नतु कृष्णतः।
यतः प्रभुत्वं राधायाः श्रीकृष्णस्यांगता मता॥१२॥

एक प्रकार की हैं। मुनिगण-श्रीकृष्ण उपासक, मन्त्रनिष्ठ बुद्धिशील, मुनिगण श्रीराम का सौन्दर्य्य देख कर उत्पन्न रति से भाव को प्राप्त होकर व्रज में गोपी रूप लेकर जन्मे थे। तथा उन्होंने भाव विशेष से श्रीकृष्ण स्वरूप का आस्वादन किया था। यथा पद्मपुराण में—पहिले दण्डकवन निवासी महर्षिगण ने श्रीहरि रामचन्द्रजीको देखकर सुन्दर विग्रह भोग करने की इच्छा की। वे सब गोकुल में स्त्री रूप हो कर जन्मे तथा श्रीकृष्ण के अनुराग को प्राप्त हुए। श्रीराधा उपासना, तथा युगल उपासना नुयायी साधनों से सिद्धि प्राप्त लौकिक है। सालोक्यादि भेद से चार प्रकार का है। यहाँ पर सालोक्यादि भेद श्रीराधा से जानना, किन्तु कृष्ण से नहीं है। कारण श्रीकृष्ण का अंग (अंश) ही राधा की प्रभुता है॥ १२॥

तथोक्तं पाद्मे कार्त्तिके— वृन्दावनेऽधिपत्यं च दत्तं तस्याः प्रतुष्यता ।
कृष्णेनान्यत्र देवी तु राधा वृन्दावने वने ॥

तथा तत्रैव श्रीराधापूजा युगलपूजा च ।

राधिकाप्रतिमां विप्राः पूजयेत्कार्त्तिके तु यः ॥
तस्य तुष्यति तत्प्राप्त्यै कृष्णो दामोदरोहरिः ।
द्विजं दामोदरं कृत्वा तत्पत्नीं राधिकां तथा ।
कार्त्तिके पूजनीयौ तौ वासोलंकारभूषणैः ॥

अत उपासनया सालोक्य-सामीप्य-सार्ष्टि-सारूप्यानि श्रीराधया । तत्र सालोक्यसामिप्ये त्रिभेदेन सखीत्वेन, दासीत्वेन, दूतीत्वेन च सार्ष्टिसारूप्ययोरेकभेदे सखीत्वनैव ।

अथ देव्यः— देव्यस्तु स्वर्गवैकुण्ठ्यो नतु कर्म्मविनिर्म्मिताः ।
अंशत्वाद्व्रजदेवीनां यथा कृष्णस्य विष्णवः ॥

पद्म पुराण में कार्त्तिक महिमा में कहा है कि उसी राधिका की प्रीति से प्रसन्न श्रीकृष्ण वृन्दावन में उन्हें आधिपत्य दिया है और स्थल में देवी तथा वृन्दावन में राधा ही है। वहाँ श्रीराधिका की पूजा तथा युगल पूजा का विधान है। यथा-जो विप्र कार्त्तिक में भी राधिका प्रतिमा की पूजा करे। इत्यादिक।

उपासना में सालोक्य सामीप्य सार्ष्टि-सारूप्य श्रीराधा के संबन्ध में है। सखी, दासी दूती भेदसे सालोक्य तथा सामीप्य जानना। सार्ष्टि तथा सारूप्य को एक मात्र सखी भाव से जानना। देवी शब्द से स्वर्गवैकुण्ठवासी है किन्तु कर्म्म परायण प्राकृत स्वर्गवासी नहीं हैं। वे सब देवी व्रज गोपियों को अ ा ु।

ननु कथं व्रजदेवीनामंगित्वमन्यासामगंत्वं अर्थापत्तेः पुराणादीनां प्रमाण्याच्च। तथाहि अर्थापत्तिः "एते चांशः कलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान्स्वयमिति स्वयं वेदवेदान्तैरवधित्वेनोक्तं यद्वस्तु तदित्यर्थः। ननु "यस्यावतारा विष्णवादयः स व्यापक वैकुण्ठेश्वरः" श्रीनारायण एव किं न स्यात् न वेदनारायणयोः परस्परवाक्येन नारायणस्यांशत्वावधारणात् ॥ १३ ॥

यथा बृहद्वामन— ब्रह्मानन्दमयो लोको व्यापिवैकुण्ठसंज्ञकः।
पुराणे।— तल्लोकवासी तत्रस्थैस्तुतो वेदैः परात्परः ॥

तल्लोकवासी नारायणः न तु जलशायी वेदैः स्तुतः सन् वरदानार्थमुद्यतस्तं प्रति वेदानां वाक्यं

"नारायणादिरूपाणि ज्ञातान्यस्माभि रच्युतः।
सगुणं ब्रह्म सर्वेदं वस्तुबुद्धि र्न तेषु नः ॥

कृष्ण का अंश विष्णु है। व्रजदेवियों का अंशित्व कैसे सिद्ध है? उत्तर-अर्थापत्ति प्रमाण से। पुराण समूह में प्रमाण भी हैं अर्थापत्ति यह है—और सब अंश तथा कला है श्रीकृष्ण किन्तु स्वयं भगवान हैं। स्वयं शब्द से वेद वेदान्त में अवधि कहे गये है। जिनके अवतार विष्णु प्रभृति हैं सो व्यापक, वैकुण्ठेश्वर, नारायण है। सो नारायण क्यों नहीं है? उत्तर-वेद नारायण का वाक्य से अंशित्व है ॥ १४ ॥

बृहद्वामनपुराण में कहा है जहाँ लोक समूह ब्रह्मानन्द मय है। जिसका नाम ही व्यापीवैकुण्ठ है। वहां वेद समूहो ने तल्लोकवासी श्रीनारायण की स्तुति की है यथा—

तदनन्तर श्रीनारायणजी ने उन सबके वाक्य स्वीकार किये।

ततः श्रीनारायणः स्वीकृत्य दर्शयामास ।—

पूर्वं वृन्दावनं ततः प्रियवर्गं पश्चात्…… ।

नाना रासरसोन्मत्तं यत्र गोपीकदम्बकं ।

तत्कदम्बकमध्यस्थः किशोराकृतिरच्युतः ।

दर्शयित्वेति च प्राह ब्रूहि किं करवाणि वः ॥

यदि अवधित्वं न स्यात्तर्हि एतन्न स्यात् । ततः श्रीकृष्ण एव सर्वावधिः ।

तथा श्रीदशमे :—"चतुर्भुजाः शंखचक्रगदाराजीवपाणय

किरीटिनः कुण्डलिनो हारिणो वनमालिनः ॥

स्वोपास्याः दृष्टाः श्रीकृष्णस्य चेदंशित्वमन्येषामंशत्वं तथा पार्षदादीनामप्यंशांशि भावो ज्ञेयः ॥१४॥

पुराणादयश्च--"श्रयत इन्दिरा शश्वदत्र हि" "गोप्यन्तरेण भुजयोरपि यत्स्पृहा श्रीः" "रमाक्रीडामभून्नृप" त्रैलोक्यसम्मोहन तन्त्रे-

---

यथा पहिले वृन्दावन, तदनन्तर प्रियवर्ग, पीछे गोपीगण मध्यस्थ श्रीकृष्ण यदि अवधि नहीं है तो ऐसा नहीं होता। इसलिये श्रीकृष्ण ही सबकी सीमा है। यथा दशम में चतर्भुज, शंख, चक्र, गदा, पद्मादि धारी अपना उपास्य देव देखा जब श्रीकृष्ण अंशी तथा और सब अंश हैं तो अवश्य व्रजपार्षद अंशी हैं, और सब अंश हैं ॥ १४ ॥

पुराण समूह यथा-लक्ष्मी निरन्तर व्रज में आश्रय ले रही है। व्रज रमा की क्रीडा भूमी है। त्रैलोक्य सम्मोहन तन्त्र में-यथा-हे

इच्छाशक्तिः क्रियाशक्तिः ज्ञानशक्तिः र्येशितुः।
तवांशमात्रमित्येवं मनीषा संप्रवर्त्तते।
मायाविभूतयोऽचिन्त्या अचिन्त्यातर्क्य मायिनः।
परेशस्य महाविष्णोः स्तास्ता सर्वा कलाकलाः।
आनन्दरुपिणी शक्तिस्त्वमीश्वरि न संशयः।
लक्ष्मीः सरस्वती कान्तिरित्याद्या वा वरस्त्रियः।
छायामपि स्पृशंत्याद्याः कदाचिन्नैव लक्ष्यते।
एतैर्वाक्यैः श्रीराधाया अंशित्वमेव निर्णयात॥

अन्यथा लक्ष्म्याः मुख्यत्वे नारायणस्यांशत्वं न स्यात् ब्रह्मण उपासकत्वेन स्वोपास्यानेकदर्शनेन श्रीकृष्णस्योपास्येषु अवधित्वेन उपासकेषु च व्रजौकसामवधित्वेन निर्णीतत्वादन्यथा पारेशु वांछानुपपत्तेः। ततश्चदेव्यः स्वर्गवैकुण्ठस्था एव ज्ञेयाः॥
अथश्रुतयः॥--बृहद्वामनपुराणे श्रुतय ऊचुः॥--

श्रीराधे! इच्छाशक्ति, क्रियाशक्ति, ज्ञानशक्ति समूह आपके प्रेरणा से इच्छा मात्र से प्रवर्त्तित होते हैं तथा आपका अंश है। अचिन्त्य, अतर्क्य मायास्वरुप परेश महाविष्णु की मायाविभूति सकल कला की कला हैं। आप आनन्दरुपिणी शक्ति हो इसमें कोई सन्देह नहीं है। लक्ष्मी, सरस्वती, कान्ति प्रभृति उत्तम स्त्रियाँ आपकी छाया को स्पर्श करती हैं। उनसे भी आप अलक्ष्या हो। इस वाक्य समूह से श्रीराधा का अंशित्व निर्णय है। नहीं तो लक्ष्मी को अंशित्व मानोगे तो नारायण का अंशत्व कैसे सिद्ध होगा। ब्रह्मा ने वह नारायण मूर्त्ति देखी थी। उपास्यों में श्रीकृष्ण

यथा त्वल्लोकवासिन्यः कामतन्त्रेण गोपिकाः ।
भजन्ति रमणं मत्वा चिकीर्षाजनितस्तथा ॥

श्रीभगवानुवाच । आगामिनि विरञ्चौतु जाते सृष्ट्यर्थमुद्यते ।
कल्पं सारस्वतं प्राप्य व्रजे गोप्यो भविष्यथ ॥१५॥

तथा पाद्मे- गोप्यस्तु श्रुतयो ज्ञेयाः ऋषिजा गोपकन्यकाः ।

निर्व्वाणखण्डे- देवकन्याश्च राजेन्द्र न मानुष्यः कथञ्चन ॥

राजेन्द्र अम्बरीषः । अथानादयः ॥-तत्र पाद्मे निर्वाणखण्डे-

नित्यां मे मथुरां विद्धि वनं वृन्दावनं तथा ।
यमुना गोपकन्याश्च तथा गोपालबालकान् ॥

आदिपुराणे- न मां जानन्ति मुनयो योगिनश्च परंतप ॥

(की अवधि तथा उपासकों में व्रजवासीयों की अवधि निर्णीत है। नहीं तो लक्ष्मी द्वारा चरण रेणु की इच्छा कैसे सिद्ध होगी ? इस से देवी शब्द से स्वर्ग वैकुण्ठ वासी है श्रुत-बृहद्वामन पुराण में यथा ॥ १५ ॥

पद्मपुराण में निर्वाणखण्ड में यथा --

राजेन्द्र यानी अम्बरीष महाराज हैं। अब अनादि कहते हैं। यथा-पद्मपुराण निर्वाणखण्ड में--मेरी मथुरा नित्या है तथा वृन्दावन भी नित्य है। और यमुना, गोपकन्या समूह तथा गोपाल बालक गण नित्य जानना। आदि पुराण में श्रीकृष्ण अर्जुन संवाद में कहा है।-गोपीगण जिस प्रकार मुझको जानती हैं उस प्रकार मुनिगण, योगीगण, तथा रुद्रादिक देवतागण नहीं जानते है। मेरी महिमा, मेरी सेवा, मेरी श्रद्धा तथा मेरा मनोगत भाव गोपीयाँ

कृष्णार्जुनसंवादे— न च रुद्रादयो देवा यथा गोप्यो वदन्ति माम् ।
मन्माहात्म्यं मत्सपर्य्यां मच्छ्रद्धां मन्मनोगतं ।
जानन्ति गोपिकाः पार्थ ? नान्ये जानन्ति मर्मणि
वेदान्तिनोऽपि मुनयो नमां जानन्ति तत्वतः ।
यथा मां गोपसुदृशो जानन्ति मम वैभवं ॥
अहमेव परं हर्ष नान्यो जानाति कश्चन ।
जानाति राधिका पार्थ अंशानर्चन्ति देवताः ।
निजांगमपि या गोप्यो ममेति समुपासते ।
ताभ्यः परं न मे पार्थ ! निगूढ़ प्रेमभाजनं ॥
अहं ता गोपीकाः पार्थ ताश्चाहं स्वयंभुवि
उभयोस्तनुभि र्भेदः प्राण एके न संशयः ॥
त्रैलोक्ये पृथिवी धन्या तत्र वृन्दावनं पुरी ।
ताश्चापि गोपिकाः पार्थ तत्र राधाभिधा मम ॥
त्वंमेप्राणाधिको यस्मात्तस्मादेतद्वदाम्यहं
गोपिकानामयं देहः सन्देहो नात्र कश्चन ॥

जानती हैं । और कोई इसका मर्म नहीं जानते हैं जो गोपीगण निज शरीर मेरा है ऐसे जान कर सेवा करते हैं । हे पार्थ ! गोपीयों से निगूढ़ प्रेम-पात्र और कोई भी नहीं है । गोपीयों का मैं देह हूँ इसमें कोई सन्देह नहीं है । अब शास्त्र प्रसिद्धा नित्य प्रिया वर्णन करते हैं । भविष्य पुराण में श्रीकृष्ण युधिष्ठिर संवाद में— यथा--हे राजा युधिष्ठिर ! गोपीयों के प्रधान प्रधान नाम सुनो । गोपाली, पालिका प्रभृति-(सरलार्थ) ॥ १६ ॥

अथशास्त्रप्रसिद्धाः नित्यप्रियाः ।।–भविष्ये श्रीकृष्णयुधिष्ठिर संवादे ।–

गोपीनामानि राजेन्द्र प्राधान्येन निबोध मे
गोपाली पालिका धन्या विशाखा ध्याननिष्ठिका ।
राधानुराधा सोमाभा तारका दशमी तथेति ।।१६

श्रुतिश्चाथर्वाणी–तासां मध्ये हवै श्रेष्ठा गान्धर्व्वी उवाचतथंहि
वै ताभिरेवं विचार्य्य कथं कृष्णः ब्रह्मचारी कथं
दुवाम्बिनं मुनिः
तां हि मुख्यां विधाय पूर्वमनुकृत्य तूष्णीमासुः

ऋग्वेदे— राधया माधवो देवो माधवेनैव राधिका ।
विभ्राजन्ते जनेष्वा

स्कांदे— युधिष्ठिरनारद संवादे वसन्तोत्सवे एक
सप्ततिमेऽध्याये

राधा चन्द्रावली भामा ललिता च तथापरा ।
सुशीला चन्द्राभागा च सन्ध्यावाल्यादयो नृप !
वेषमित्वात्मनो ज्ञास्ताः वैष्णवैः सहिता स्तदा ।
ततो गच्छेत राजेन्द्र ! वसंता नयनं प्रतीति

वैष्णवानवेषयित्वा । गौतमीयतन्त्रे उत्तरभागे पञ्चपञ्चाशत्तमे पटले—

इयं चन्द्रप्रभा नाम ख्याता चन्द्रावली त्वियं
चन्द्रकान्तिरियं ख्याता चन्द्रावलीरियंमताः ।

अथर्वाणी श्रुति यथा—उन सबों के मध्य में श्रेष्ठा गान्धर्वी कहने लगी ।

एता चन्द्रकला नाम चन्द्रलेखा त्वियंश्रुता
एवं चन्द्रांकिता ख्याता सहस्रमिह सुन्दरि।
इयं हि रोहिणी नाम ख्याता चेयं धनिष्ठिका।
विशाखेयं समा ख्याता माधवीयं च विश्रुता
मालतीयमियं श्यामा गोपालीयं शुभानना।
रत्नलेखा समाख्याता सुभद्रा भद्ररेखिका।
सुमुखी सुरतिश्चैव चपला कुञ्जरीति च।
कलावती रतिकला कलहंसी कलापिनी।
हरिणी नाम विख्याता अहं च कमलेक्षणे ॥१७॥
वयं हि गोकुले गोपबाला परमशोभनाः।

अशोकमालिनी सुनन्दा भद्रा रंगावती चन्द्रभासा चित्रगंगा निद्रायमानाक्षी चित्रफला रत्नचूड़ा

एता तु संमोहनतन्त्रे प्रह्लादसंहितायामेकादशेऽध्याये उद्धवं प्रति ललितोवाच। श्यामलोवाच। विशालोवाच। राधोवाच शैव्योवाच। पद्मोवाच। भद्रोवाचेति कण्ठोक्तिः। अथ महाजन प्रसिद्धाः॥

रत्नप्रभा रत्नकला सुभद्रा भद्ररेखिका।
सुमुखी च धनिष्ठा च कलहंसी कलापिनी॥

ऋग्वेदमें यथा—

स्कान्द में यथा—युधिष्ठिरनारदसंवाद में वसन्तोत्सव प्रकरण में १७ अध्याय में राधा, चन्द्रावली, भामा, ललिता इत्यादि।
गौतमीय तन्त्र का उत्तर भाग में ५५ पटल में—

माधवी मालती चन्द्ररेखिका कुञ्जरी तथा ।
हरिणी चपला चेति सुरभिश्च शुभानना ॥
कुरंगाक्षी सुचरिता मण्डिनी मणिकुण्डला ।
चन्द्रिका चन्द्रतिलका कन्दुकाक्षी सुमन्दिरा ॥
रसालिका तिलकिनी सौरसेनी सुगन्धिका ।
रामिला कामनगरी नागरी नागवेल्लिका ॥
मंजुमेधा सुमधुरा सुमध्या मधुरेक्षणा ।
तनुमध्या मधुस्पन्दा गुणचूड़ा वरांगदा ॥
तुंगभद्रा रसोत्तुंगा रंगवाटी सुसंगता ।
चित्रलेखा विचित्रांगा मोदनी मदनालसा ॥
कलकण्ठी शशिकला कमला मधुरेन्दिरा ।
कन्दर्पसुन्दरी कामलतिका प्रेममञ्जरी ।
कावेरी चारुकबरा सुकेशी मञ्जुकेशिका ॥
हारहरा महाहारा हारकण्ठी मनोरमा ।
मंगला विमला लीला कृष्णसारी विशारदा ॥
तारावली चकोराक्षी शंकरी कुंकुमादयः ॥१८॥
सर्वगोपीसमूहेषु राधिवैवे विराजते ।
अस्या एव विनिर्गीतमालाम्बनमथो बुधैः ॥

सम्मोहन तन्त्र में प्रह्लाद संहिता के ११ अध्याय में उद्धव के लिये ।—यथा ललिता ने कहा श्यामला ने कहा इत्यादिक (सरल अर्थ है) अब महज्जनों के द्वारा प्रसिद्ध नाम कहते है । रत्नप्रभा इत्यादिक-(सरल अर्थ है ॥ १८ ॥

अथ राधायाः स्वरूपं—

हृतादृग्णोलक्ष्मीं विरमयति पद्मांशकमलां
मुखोल्लासः कान्तिं जलजमणिवृन्दस्य सहसा।
तथा स्वर्णं व्यर्णं नयति रसिता ह्यांगिकरुचिः
सुताया रूपश्री लसति वृषभानोः सललितम् ॥

अथगुणाः वृन्दावनेश्वरी राधा विनीता चपलाक्षियुक्।
गन्धोन्मादितगोविन्दा वृन्दावनविलासिनी ॥
चारुसौभाग्यरेखाढ्या सर्ववेषविशारदा।
नर्मादिकारणं लज्जाशील भक्तिरसाकरा ॥
विविधाद्भुतभाषवित पुष्पशिल्पविशारदा।
विचित्ररूपकरणी गन्धयुक्ति नियोजिका ॥
करुणार्णवपूर्णा च रासक्रीड़ाधिदेवता।
वाग्भंग्या जितकृष्णा च शरणागतपालिका ॥

समस्त गोपीवर्गों में श्रीराधिका ही श्रेष्ठ तथा आलम्बन करके गावे जाती हैं। अब श्रीराधा के स्वरूप कहते हैं—नेत्र की शोभा पद्माधिष्ठात्री कमला को बलपूर्वक तिरस्कार करती है। इस प्रकार मुख की माधुरी जलजात मणि समूह की शोभा तथा अङ्ग की कान्ति स्वर्ण समूह की शोभा को तिरस्कार कर रही है। आज श्रीवृष-भानु सुता की रूप शोभा लीलापूर्वक सुशोभित है। गुण समूह यथा—श्रीराधा-वृन्दावन कीईश्वरी, विनीता, चञ्चलनेत्रविशिष्टा, गन्ध से गोविन्द उन्मादकारिणी, वृन्दावन विलासिनी, मनोहर सौभाग्य रेखा से युक्ता, समस्त वेष में पण्डिता, नर्मकारिणी,

प्रहेलिकाविधात्री च स्वगीतिहरिमोहिनी ।
लावण्ययौवनाक्रान्ता रूपसौन्दर्य्यसंश्रिता ॥
मृद्वी च सुकुमारी च धैर्य्यादिगुणशालिनी ।
गुणा ऐश्वर्य्यसंश्लिष्टा अन्ये ज्ञेया मनीषिणा ॥१६॥

अथोदाहृतय:— वृन्दावनेसिता—
ईशिता वशवर्त्तित्वमंगोक्तिमनसा रसात् ।
आधरता तु वृन्तादे वनं मूर्त्तिमदीरितम् ।
वृन्तादेरेकतां प्राप्तमित्येवं परमार्थता ।
वनस्य हि रसप्राप्तिरंगेनैव प्रवात्मता ॥
निधिपालकवज्ज्ञेया वृन्ताणां सर्वथैव हि ।

तत्र तत्र प्रियवर्गान्विता गमनविलासोपयोगिरसेन स्थिति:
रिति भाव:

लज्जाशालिनी, भक्ति रस की समुद्ररूपा, विविध भाषा विज्ञा, पुष्पशिल्प में पण्डिता, विचित्ररूपधारिणी, गन्धवती, प्रेरिका, करुणा समुद्र से पूर्णा, रास क्रीड़ा की अधिदेवी, वाणी की भंगी से कृष्ण जय कारिणी, शरणागत पालिका, प्रहेलिका विधायिनी, अपनीगान से हरि-मोहित कारिणी, लावण्य रूपा, युवती, रूपवती, सौन्दर्य्यवती, मृद्वी, सुकुमारी, धैर्य्यवती प्रभृति गुण युक्ता हैं ॥१६॥

वृन्दावन की ईशिता—शरीर, वाणी, तथा मन से वश वर्त्तित्व ईशिता है ।

विनय:—शरीर-वाणी—मनसे औद्धत्य रहित हो विनय है । यथा—सखीओं के अवलोकन में भी देह में वाणी के साथ नयन

विनयः— अङ्गोक्तिमानसौद्धत्यराहित्यं विनयः स्मृतः।

यथा— अवलोकेऽपि सखीनां नयनद्वयसंयुतं चेतः।
प्रत्युद्गतमिव वाचा समभिति देहे किमद्भुतः॥

नयनसमकालमेव मन उत्थितं किं शरीरावयवयोरिति।

नेत्रचापल्यं— विद्युल्लतेयं चलतां पाटिता चक्षुषा तव।
दृक् विद्युता वा किं राधे सर्वं ते हि स्वभावजं॥

गन्धोन्मादितकेशवा-गन्धस्य सम्बन्धस्य उन्मादकत्वं चातुरी विस्मारकत्वं

यथा— चतुर्भुजतया गुप्तो वनमध्ये हरिः क्वचित्।
राधिकाशब्दमात्रेण स्वरूपेण स्थितोऽभवत्॥ २०

वृन्दावनविलासः— क्वचित् दृग्भंगीभिः क्वचिदपि चलापांगविशेषैः
क्वचिद्भ्रूवल्लीभिः क्वचिदपि शिरो मन्दचलनैः।

युगल युक्त चित्त क्या उन्नत है। नेत्रचापल्य—यही विद्युल्लता क्या आपके नेत्रों से चञ्चलासमाना है किम्वा आपके नेत्र ही विद्युत हैं। हे श्रीराधे समस्त आपको स्वभाव से ही है। सम्बन्ध से उन्मादकारिणी चतुरता यह ही गन्धोन्मादित केशवा है। यथा कोई समय श्रीहरि चतुर्भुज होकर छिपने लगे। परन्तु श्रीराधा का शब्द सुन कर अपने द्विभुज स्वरूप में स्थित हो गये॥ २०॥

वृन्दावन विलास-यथा :-कहीं नेत्र भंगी द्वारा कहीं कहीं चञ्चल अपांग से कहीं भ्रूलता से, कहीं मस्तक के मन्द चालन से कहीं अवयव सकल के वक्र भाव द्वारा श्रीराधा सखीवृन्द तथा रसिक श्रीकृष्ण को प्रमुदित कर रहे हैं। शुभरेखा :-चरण में चन्द्ररेखा-दिक समस्त वेष चातुरीमयी है। हे वृन्दा श्रीराधा कहीं नेत्र समूहों

कचिद्भक्तीभावैरवयवविभावैः सहृदयं
सखीवृन्दं राधा प्रमदयति कृष्णं च रसिकं ॥

शुभरेखा— चरणे चन्द्ररेखादिः सर्ववेषचातुर्य्यं ।
कचिद्रुद्धा वेषैः तदनुसखिवेषैश्च वलिता ।
सखीवेशैः कापि कचिदपि च चिह्नानुकरणैः ।
कदाचिद्वश्यात्मा वहति रसभावं मधुपतौ
क राधा श्रीकृष्णं न रमयति वृन्दे व्रजभुवाम् ॥

नर्म्मादिकारणं—नर्म्मणः परिहासादेः कारणं । लज्जाशीला स्पष्टं

भक्तिरसाकरा— भक्तिर्मूर्त्तिमती योक्ता तद्भक्तेराश्रयत्वतः ।
श्रीराधायास्तु खनितामुक्तवानुद्धवः कृती ॥

दृष्ट्या प्रवर्त्तितेत्यादिना सर्वभाषावित् । सर्वदेशपशुपक्ष्यादि

से युक्त तथा कहीं अनुगामि सखी द्वारा शृंगारित, कहीं सखी वश्यता गुण से वश प्राप्त, कहीं चिन्ह अनुकरण कारिणि कभी कभी श्रीमधुपति श्रीकृष्ण में वश्यात्मा पूर्वक रसभाव को वहन कर रही है। इस प्रकार ब्रजगोपीयों को तथा श्रीकृष्ण को रमण करा रही है। परिहासादि के नर्म्मादि कारण हैं। लज्जाशीला स्पष्ट है। भक्तिरसाकरा यथा-मूर्त्तिमती जो भक्ति कही है उसको आश्रयरूपा श्रीराधिका हैं। चतुर उद्धवजी ने श्रीराधा जी को खान (भण्डार) रूप से वर्णन किया है। समस्त देशस्थ पशु पक्षीयों की भाषा जानने वाला सर्वभाषावित् है। संकेतादि में दृष्ट है। पुष्प शिल्प में निपुण विदग्धा है, सब के रूपान्तर सृष्टि जानने में चतुर विचित्ररूपकर्त्तृत्व है। गन्धयुक्त स्पष्ट है ॥ २१ ॥

भाषाविद्राभा। संकेतादौ। पुष्पशिल्पे नैपुण्यं पुष्परचितवस्त्रकंचुकाभरणविदग्धा। विचित्रहारकर्त्तृत्वं सन्ध्य हारान्तरसंवादनचातुर्यमिति। गन्धयुक्तिः स्पष्टं ॥ २ ॥

करुणार्णत्वं- त्वदीयोऽस्मीति यो ब्रूते वाङ्‌मात्रेणापि कश्चन।
साालोक्यादिपदं तस्य ददात्येव न संशयः ॥

रासक्रीड़ाधिदेवता--रासे प्रवेशस्तस्यैव येन राधा प्रपूजिता।
इदमेवाधिदेवत्य न द्वारा कृष्णतो यदि ॥

वाग्भंग्या- उत्तिष्ठाग्रे तरौ मे तरुणि मम तराः शक्तिरारोहणे का
जितकृष्णा—मुग्धे प्रस्तौमि चारु तरुणि मथ का वधूगंन्तुमीष्टे।
वार्त्तेयं नौ प्रसंगे कथमपि भविता नात्रयाःसगमर्था
वार्त्तापीति स्मितास्यं जितगिरमजित राधया राधयामि॥

शरणागत पालिका-स्वारुप्यदानेन पालिकेत्यर्थः।

प्रहेलिकाविधात्री- श्रीकृष्णं प्रति।

करुणासागर।-जो एकबार वाणी से भी तुम्हारा हूँ ऐसा कहता है उसको भी अपना सालोक्यादि पद अवश्य देते हैं। इस में कोई सन्देह नहीं है। रासक्रीडाधिदेवता।-जिसने श्रीराधा की पूजा की उसका रासलीला में अवश्य प्रवेश है कारण श्रीराधा ही रास की अधिदेवी है। वाणी की भंगी से जितकृष्णा।-हे तरुणि। आगे मेरे तरु में (नाव) आरोहण कीजिये। श्रीराधा श्रीकृष्ण को पराजित करने के लिये नाव शब्द को अर्थ को छिपाकर कहने लगी भाग! तरु (वृक्ष) में आरोहण की शक्ति नहीं हैं कि श्रीकृष्ण कहने लगे मुग्धे? मैं तरणी (नाव) को बात कर रहा हूँ।

यथा-लृप्तवर्णं वर्णहीनं श्यामं पीतात्मकं सदा।
अवक्रं सर्ववक्रं यत् तद्ब्रूतत्पण्डितो भवेत् ॥

लृप्तवर्णं त्रिभंगं त्रिप्रत्वादिहीनं रहितं श्यामं पीते आत्मनो यस्य तं। अवक्रं सरलं। सर्वस्माद्वक्रं भिन्नं तत् जानन्पण्डित इत्यर्थः। सकृष्णः एतादृशमर्थमजानन्। प्रतिहेलिका श्रीकृष्णस्य ॥२२॥

प्रतिकूलेन धात्रा तु को भवेद्रसवारिधिः।
तथा तेनानुकूलेन सरसो विरसो भवेत् ॥

धात्रापदेन प्रतिकूलेन धात्रा इति पठितेन पुनः अनेन तकाररहितेन राधा इति पदेन रसवारिधिः को भवेत् कृष्णः। तथा अथ

श्रीराधा ने भी उस अर्थ को दबा कर तरुणी (वधू) भाव ले कर कहा कौन वधू जा सकती है। श्रीकृष्ण ने कहा (नौ) नाव का प्रसंग है। श्रीराधा नौ शब्द का अर्थान्तर हम दोनों ऐसा लगाकर कहने लगी कि तुम्हारा हमारा संगम कैसा है इस प्रकार श्रीराधा द्वारा पराजित श्रीकृष्ण का आराधन करता हूँ। सारुप्य प्रदान पूर्वक पालन करना शरणागत पलिका है। प्रहेलिका विचित्री।-लृप्तवर्ण (त्रिभंग) वर्णहीन (ब्राह्मणादि जाति से रहित) श्याम, पीतात्मक (पीतवर्ण रमणी आत्मा जिसका) अवक्र (सरल) सर्ववक्र (सबसे भिन्न) जो जानेगा सो पण्डित है। उत्तर श्रीकृष्ण हैं ॥२२॥

वाह्यार्थ-विधाता प्रतिकूल होने पर कौन रसज्ञ होता है तथा प्रतिकूल होने पर सरस भी नीरस होते हैं। अन्तरार्थः।-धात्रा पद प्रतिकूल पढ़ने से तथा तकार से रहित होने पर श्रीराधा है। राधा

च तेन धात्रा इति पदेन पितृस्मारकेन अनुकूलेन आनुकूल्ययुतेन सरसः रससहितोऽपि शृंगाररसवानपीति रसः कुण्ठतरसः को भवेत् ? कृष्णः। श्रीकृष्णाभिलाषितमर्थं संगोप्यार्थान्तरेण श्रीकृष्ण-मर्थमानयति। धात्रा ब्रह्मणा प्रतिकूलेन वत्सवत्सपाहरणेन क्रीड़ा-भंगं कुर्व्वता विरसः सखीनामभावेन कुण्ठतरसः रसवारिधिर्गो गोपवृद्धवृक्षतृणमाधुर्य्यास्वादनेन रससमुद्रको भवेत् कृष्णः। तथा। अथ च तेन धात्रानुकूलेन अनुगमनं कृत्वा क्रीड़ानुकूलवत्सादिस-मर्पणेन रसवारिधिः विरसः सन् तत्तद्रसान्तर्द्धानेन कुण्ठतरसः सन् सरसः रसेन सख्यरसेन सहितः को भवेत्कृष्णः। यद्वा धात्रा पित्रा प्रतिकूलेन अनुगमनं कृत्वा परावृत्तेन सरसोऽपि वात्सल्यरस-पूर्णोऽपि रसवारिधिः अन्यरसैरप्याक्रान्तः को भवेत कृष्णः ॥२३॥

पद से रसवारिधि कौन है श्रीकृष्ण है और भी अर्थ।-यहाँ पर धात्रा पद से पिता ब्रजराज का अर्थ लेकर कहते हैं पिता का अनुकूल भाव से सरस-तथा शृंगाररस विशिष्ट होने से भी कुण्ठतरस अन्यरस युक्त कौन होता है श्रीकृष्ण है। किम्वा-विधाता द्वारा वत्स वत्सपालक हरण पूर्वक क्रीडा भंग होने से विरस कौन है श्रीकृष्ण है। यहाँ रसवारिधि शब्द का अर्थ-गौ, गोप,वृद्ध,वृक्ष, तृण, प्रभृतिओं का माधुर्य्य अनुभव से अथ च वत्स अपराधकारी विधाता के अनुगमन पूर्वक क्रीडानुकूल वत्सादिक समर्पण करने पर कुण्ठतरस होते हुए भी सरस (सख्यरसयुक्त) है। यद्वा।--पिता कर्त्तृक प्रतिकूल अनुगमन (परावृत्त होने पर वात्सल्यरस से पूर्ण होते भी अन्यरस से युक्त कौन है। उत्तर श्रीकृष्ण है ॥२३

अथो अथचतेन पित्रा अनुकूलेन सायं प्रत्युगमनेन रस-वारिधिः वृन्दावनरसाक्रान्तोऽपि विरसः वृन्दावनरसात्कुण्ठितः सन् सरसः व्रजरसाक्रान्तः को भवेत्। कृष्णः। अनेन चतुर्गणितो स्वगीतिहरिमोहिनी–"काचित्समं मुकुन्देन स्वरजातीरमिश्रिताः।

उन्निन्ये पूजिता तेन प्रीयता साधुसाध्विति॥

लावण्यं— मुक्ताफलेषु च्छायायास्तरलत्वमिवान्तरा।
प्रतिभाति यदंगेषु लावण्यं तदिहोच्यते॥

यथा— अंगेषु स्फटिकादर्शदर्शनीयेषु जृम्भते।
अमला कोमलाकान्ति ज्योत्स्नेव प्रतिबिम्बता॥

यौवनं— कैशोरयौवनया सन्धिरेवात्र विवक्षिता।
इषच्चपलनेत्रान्तं स्मरस्मेरमुखाम्बुजं।

अथ च उनके पिता सन्ध्या समय फिर मिलत होने पर वृन्दा-वनरसयुक्त होने से भी कुण्ठितरस (व्रजरसयुक्त) कौन है? उत्तर श्रीकृष्ण है। स्वगीतिहरिमोहिनी–किसीने (श्रीराधा) श्रीकृष्ण के साथ अभिश्रित स्वरजाती उठायी श्रीकृष्ण साधु साधु कह कर प्रशंसा करने लगे। लावण्यं–मुक्ताफलों में कान्ति के झलमल भाव की तरह श्री अङ्गों में जो शोभित हैं सो लावण्य जानना। यथा–स्फटिकदर्पण सदृश अङ्गों में विशुद्ध कोमल कान्ति विरा-जित है। मानो प्रतिबिम्बित ज्योत्स्ना है। यौवन–कैशोर तथा यौवन की सन्धि ही जानना। नेत्रप्रान्तभाग ईषत् चञ्चल, काम के मन्द हास्य युक्त मुखकमल, प्रफुल्ल गण्ड, अरुण अधर, लावण्य युक्त सुन्दर अङ्ग, भाव सौरभ से विलसित, उच्च स्तनादिक से

स गर्भजरजो गण्डमसमप्रारुणाधरं ।
लावण्योद्भेदरम्यांगं विलसद्भावसौरभं ।
उन्मीलितां कुरु कुचमस्फुटांगकसन्धिकं ॥
इत्यादिलक्षणं प्रोक्तं राधारूपं रसात्मकं ॥

रूपं— अंगान्यभूषितान्येव प्रक्षेपाद्यै र्विभूषणैः ।
येन भूषितवद्भाति तद्रूपमिह कथ्यते ॥ २४ ॥

यथा— त्यक्त भूषणमाल्यापि स्नातुं राधा विराजते ।
तदा भूषणभूषाया विभूषा लज्जिता ह्यभूत् ॥
विभूषा विगत भू अङ्ग सम्बधा भवेत् ।

सौन्दर्यं— अङ्गप्रत्यंगकानां यः सन्निवेशो यथोचितं ।
सुश्लिष्टसंनिवंधः स्यात्तत्सौन्दर्य्यमुदीर्य्यते ।

लक्षित श्रीराधारूप यौवन अवस्था में है। जिससे अङ्ग समूह अभूषित अवस्था में विभूषण से भूषित प्रतीति होता है सो रूप है ॥ २४ ॥

यथा—भूषण माल्यादि परित्याग पूर्वक श्रीराधा स्नानार्थ विराजी हैं उस समय भूषणादिक लज्जित हो गये। विभूषा (विगत भू-अंग सम्बन्ध) सौन्दर्य्य-अंग प्रत्यंगों का यथा स्थान सन्निवेश प्रगाढ बन्धन ही सौन्दर्य्य है। यथा—लम्बायमान नेत्र, शरत् चन्द्रमा की कान्ति सदृश मुख, लतारूप बाहू, स्तनों से युक्त वक्ष, क्षीण कटि, सुन्दर नितम्ब और जंघा प्रभृति से युक्त श्रीराधा का अंग है मानो श्रीकृष्ण को नचाने को अथ च आलिंगन करने को है। मृदुता—जिससे अङ्ग स्पर्श का भय होय सो मृदुता जानना

यथा— दृष्टं शरदिन्दुकान्तिवदनं वाहूलतांशयाः।
संक्षेपान्निविडोन्नतस्तनमुरः पार्श्वे प्रमृष्टौ इव।
मध्यः पाणिमितो नितम्बिजघनं पादावरालांगुली
कृष्णं नर्त्तयितुं प्रवृत्तमिति वाश्लिष्टं तथास्यावपुः॥

मृदुता— स्पष्टं। येनांगमस्पृष्टमितिस्यान्मार्दवं हि तत्॥

सुकुमारता— यत्स्पर्शासहतांगेषु कोमलस्यापि वस्तुनः।
तत्सौकुमार्य्यं त्रेधा स्यादादिमध्योत्तमादिभिः॥

आतपासहं— कंरस्पर्शासहं। अत्र तु मुख्यमेव।
अंगपुष्पादि संस्पर्शासहं येन तदुत्तमं॥

अथावस्था

कन्योढ़ा च-तत्र कन्या भविष्ये—यथा—

वाल्येऽपि भगवान् कृष्णस्तरुणं रूपमाश्रितः।
रेमे विहारै र्विविधैः प्रियया सह राधया॥
राधा वाल्येऽपि प्राप्तयौवना तथेत्यर्थः॥ २५॥

जिसमें अत्यन्त कोमल वस्तु का स्पर्श ही असह्य होता है सो सुकुमार जानना। आदि, मध्य, उत्तम से तीन प्रकार का ही सुकुमार है। आतप न सहना कर स्पर्श न सहना मुख्य है। पुष्पों का स्पर्श असहन उत्तम है अब अवस्था कहते हैं-कन्या, ऊढ़ा है॥ २५॥

अथ ऊढ़ा—मुग्धा, मध्या, प्रगल्भा। मध्या-धीरामध्या अधीरामध्या धीराधीरामध्या। प्रगल्भा—धीराप्रगल्भा, अधीराप्रगल्भा, धीराधीराप्रगल्भा भेद से ७ प्रकार श्रीराधा हैं मध्या का स्वरूप,

अथोढ़ा— मुग्धा मध्या प्रगल्भा । मध्या—धीरामध्या अधीरा-मध्या धीराधीरामध्या ॥ तथा प्रगल्भा—धीराप्रगल्भा, अधीरा-प्रगल्भा, धीराधीराप्रगल्भा । एवं सप्तभेदवती श्रीराधा । तत्र मध्या स्वरूपः मुग्धादयस्त्ववस्थाः ॥

तत्रमुग्धा— मुग्धा नववयाःकामा रतौ वामा सखीवशा।
रतचेष्टासु सव्रीडा चारुगूढ़प्रयत्नभाक्।
कृतापराधे दयिते वीक्षते रुदती सती।
नववया : प्रियाप्रियोक्ति मानेषु न शक्ता च कथञ्चन ॥

यथा—विरमति शैशवजडिमा प्रविशति यौवनविति- विशालाद्याः ।
क्रीडति लोचननटिका वदनसुधांशुश्च विष्फुरति नवकायाः ॥

मुग्धादि अवस्था जानना । अब मुग्धा कहते हैं । नववयशालिनी, काम परायणा, रतिमें वामा, सखीवशा, रति चेष्टादिकों में लज्जिता, मनोहर-गुप्त चेष्टाकारिणी, अपराधकारी प्रियके प्रति रोती हुई दीखने वाली, तथा प्रिय अप्रिय वचन और मानादिकों में अशक्ता मुग्धा है । श्रीराधा के शैशव का विराम तथा यौवनका प्रवेश हो रहा है, नेत्र नटि नाच रही है तथा वदनचन्द्र शोभित होरहा है ।

हे श्रीराधे ! श्रृंगार साधनादि विषय में विचित्र भाव धारण करती हो, श्रीहरिरस का आदर करने वाला निज सखीगण-कर्त्तृक श्रीकृष्ण रसमें श्रवण देती हो । मैंने जानलिया कि तुम्हारे हृदय में श्रीहरि का नव-भाव उत्पन्न हुआ है । रतिवामा—मैं बालिका हूँ परिहास उचित नहीं है । मेरा मार्ग छोड़ दीजिये हे विलासि देखिये बन में विलासिनी गण विचरती हैं ॥ २६ ॥

यथा— रात्रे प्रसाधनविधौ विदधासि चित्र
दृत्तादृशा हरिरसे श्रवणां गते किं ।
संप्रापसे निजसखीजनकृतहासे
ज्ञातं मया हृदि हरौ नवभाव जन्मः ॥

रतौ वामा—
बालाहमीदृशं नर्म्म नोचितं पदवीं त्यज ।
विचरन्ति विलासिन्यो विलासिन् ! वनगोचराः ॥ २६ ॥

सखीवशा— कृष्णे तृष्णाकुलात्त्वेयं पुरतः प्रार्थयत्यपि ।
निरीक्ष्यमाणा ललितावदनं राधिका स्थिता ॥

सव्रीडरतयत्ना— निकुञ्जं गच्छन्ती त्रिचतुरपदानि प्रचलिता
ततो व्यावृत्त्यात्मा कलितललिता वागियमसौ ।
सखि ! क्वासीत्येवं रचितवचना लोलनयना
पुनर्मन्दं मन्दं प्रविशति निकुञ्जं मम सखी ॥

सखीवशा—आगे प्रार्थनाकारी श्रीकृष्ण में भी तृष्णाकुल होकर केवल ललिता का मुख देखती हुई राधिकाजी खड़ी हैं ॥ सव्रीडरत यत्ना—ललिता द्वारा प्रेरित होकर दो तीन पग निकुञ्ज की तरफ आ रही है फिर वहाँ से ललिता को पाश फिर कर बोली हे सखि ललिते ! तु कहाँ है ? ऐसा कहकर चञ्चलनयन से फिर धीरे धीरे निकुञ्ज की तरफ जा रही हैं। मध्या—समानलज्जावती तथा समान कामपरायणा, तारुण्यशालिनी, किञ्चित्प्रागल्भवाणीविशिष्टा, अंतर में मोह तथा सुरति में क्षमाशालिनी मध्या है। मध्या मान समय में कभी कोमला कभी कर्कशा है। पद्मिनी जाति प्रायः करके है ॥

अथमध्या— समानलज्जामदना प्रोद्यत्तारुण्यशालिनी।
किञ्चित्प्रगल्भवचना मोहान्तसुरतक्षमा।
मध्या स्यात्कोमला कापि माने कुत्रापि कर्कशा॥
मध्येयं पद्मिनी ज्ञाते: मृद्वी मानेऽथ कर्कशा।

समानलज्जामदना—विदधति दृशं कृष्णे सतृष्णे प्रेक्षतेऽन्यतः।
अन्तः स्मेरमुखी राधा व्यतानीद्विविधं रसं॥

उच्चतारुण्या— कटाक्षेपो राधे कुवलयति कामस्य विशिखान्
भ्रुवो नृत्यतथ्यं विरमयति मीनध्वजधनुः।
तथा रम्भाशोभां शुभफलमिदं ह्यूरुयुगलं
वरोरूणां यूथे तरुणिमणिचूड़ामणिरसौ।

किञ्चित्प्रगल्भवचना-कृष्णसर्पं भुजंगस्त्वं भुजंगामी सदाह्यसि।
सर्वं त्वयि विभाव्यते भुजंगोऽपि ह्युरंगमः॥२७॥

समान लज्जामदना—श्रीकृष्ण सतृष्ण दृष्टि करने पर आप अन्यत्र दृष्टि पात करने लगीं। इस प्रकार अन्तःप्रसन्ना श्रीराधा विविध आनन्द प्रदान कर रही हैं। उच्चतारुण्य कटाक्ष पात से काम के वाण समूह को ग्रास तथा भ्रूनृत्य द्वारा काम के धनु को बेकाम कर रही हैं। ऊरु दोनों कदली खम्भ की शोभा को तिरस्कार कर रहे है हे राधे तुम तरुणिसमूह की चूड़ामणि हो। किञ्चित्प्रगल्भ वचना—तुम कृष्णसर्प भुजंग हो भुजगामीता तुम में है। तुम में सब संभव है। तुम भुजगामि होकर भी ऊरुगामी हो॥२७॥

हे कृष्णसर्प जाओ जिस हेतु तुम भुजंग यानी सर्प हो क्यों? भुजंग वक्र गमन करता है। भुजंग होने पर भी भुज आलम्बना

हे कृष्णसर्प? गच्छ यतस्त्वं भुजंगः सर्पः कुतः भुजंगामी सदा वक्रगमनः। भुजंगोऽपि सदा भुजालंम्बनः अथ च सदा उरंगमः हृदयस्थः॥

मोहान्तसुरतक्षमा—श्रमजलवदनां विकीर्य्यकेशां
रसनिवहादनधीनदेहवल्लीं।
मुकुलितदृशमसृणांतान्यभावां
प्रियहृदयेनिशि राधिकांस्मरामि॥

माने मृद्वी— कृष्णेन शक्ता मानाय बभाषे राधिकासखीं।
एहि वृन्दावनं यामः पुष्पसंपादनाय हि।

माने कर्कशा— अहो राधे! कृष्ण क्वथमपिगतः कुञ्जपदवीं
यत्ते पंथा इति हृदये ताम्यति पुनः रुषं।
धत्तेऽस्माभिः प्रियविरहवार्त्ता प्रकथने
न जाने कोऽयं ते हृदि विशति शुष्के च दहनः

अथ च सदा हृदय स्थित हो॥ मोहान्त सुरतक्षमा।— प्रिय श्री कृष्ण के हृदय में रात में स्थित श्री राधिका को स्मरण करता हूं। जिसका बदन श्रम-जल-कणों से युक्त, बिखडे हुए केश, देह लता रस से पराधीन, ईषत् मुकलित नेत्र, स्निग्धहृदय है॥ मान में मृद्वी।— मान शीला श्री राधिका सखी से कहन लगी हे सखी चलो पुष्प चयनादि के लिये बृन्दावन चलें।

पद्मिनी जाति।— कमल के कली के सदृश सुकुमारी, प्रफुल्लित कमल गन्धा, सुरत जल का सरोवररुपा, दिव्य सौरभ युक्ता, भयशीला मृगनयनी तथा प्रान्तभाग में ईषत लाल युक्त नेत्र हो जिसकी, श्री फल तिरस्कारि स्तन युगल विशिष्ठा हे उसको पद्मिनी जानना। २८।

पद्मिनीजातिः— कमलमुकुलमृद्वी फुल्लराजीवगंधिः
सुरतपयसि यस्याः सौरभं दिव्यमंगे।
चकितमृगदृशाभे प्रान्तरक्ते च नेत्रे
कुचयुगलमनर्घ्यं श्रीफलश्रीविडम्बि ॥२८॥
तिलकुसुमसमानां बिभ्रती नासिकां च
द्विजगुरुसुरपूजां श्रद्दधाना सदैव।
कुवलयदलकान्तिः कापि चाम्पेयगौरी
विकचकमलकोशाकारकामातपत्रा ॥
व्रजति मृदुसलीलं राजहंसीव तन्वी
त्रिवलिकलितमध्या हंसवाणी सुवेषा।
मृदु शुचि लघुभुंक्ते मानिनी गाढलज्जा
प्रवलकुसुमवासो वल्लभा पद्मिनी सा ॥

तिल पुष्प सदृश नासिका, ब्राह्मणगण तथा गुरुजन की पूजा में रता, कुवलय पत्र सदृश कान्तियुक्त, चंपापुष्प की तरह गौर-वर्णा विकसित कमल-कोश-सदृश काम-छत्र धारिणी पद्मिनी है। मनोहर लीला युक्त राजहंसी सदृश गामिनी, मध्य भाग में त्रिवलि हैं जिसकी, सुन्दर वेषशाली, मृदु, पवित्रा, मानिनी, अत्यन्त लज्जा परायण, प्रवाल पुष्प के सदृश वस्त्र से विभूषिता पद्मिनी है। धीरामध्या।-अपराधकारी प्रिय को वक्रोक्ति से धीरा कहती है यथा।-हे प्रिय आपका इसमें क्या दोष है? क्योंकि आप इस मौक्तिकमाला को कण्ठ में पहिने हो। आपके सर्वांग में काजल तथा नखचिन्ह लगे हैं। और गण्डस्थल चित्र विचित्रता से युक्त

अथधीरामध्या— धीरा तु वक्ति वक्रोक्त्या सोत्प्रासं सागसं प्रियं।

यथा— को दोषस्तव मौक्तिकस्य यदियं कण्ठे कृता मालिका
सर्वांगे वलितस्य कज्वलनखैः यद्गण्डचित्रावलेः।
कित्येकं विमृशामि नागरमहं हंहो रसानां निधि
च्यक्तांगाः सुदृशां हरेवद्भ्रमतामित्येव दोषः परं॥

अधीरामध्या— अधीरा परुषावाक्यै वर्जयेद्वल्लभं रुषा॥

यथा— निःशकंमागतमवेद्य कृतापराधं
कृष्णं नितान्तविभृतान्यरति सतृष्णं।
कि चाटुकारुभिरलं सहसा प्रिया हि
याहीति खिन्नमकरोद्वक्रुद्ब्रुवाना॥ २६॥

धीराधीरामध्या— धीराधीरातु वक्रोक्त्या सोत्प्रासं सागंस प्रियं।

हे नागर! हे रस समुद्र! रमणी से मुक्त आपका श्रीअंग पार्वती रहित हर सदृश हो रहा है। अधीरामध्या।-अधीरा कठोर वाक्य से प्रिय को वर्जन करती है कृत अपराधी निशंक आने वाले प्रिय को देखकर अधीरा कहने लगी। और चाटुवाक्य की जरूरत नहीं है, अपनी प्रिया के पास जाओ, जाओ॥ २६॥

धीराधीरा भी वक्रोक्ति से अपराधकारी प्रिय को भर्त्सना करती है। अन्यनायिका के भोग चिन्हों से युक्त श्रीकृष्ण को देखकर खिन्नमना कोई जाओ जाओ प्रियाकेपाश ऐसा कहनेलगी। प्रगल्भा।- परिपूर्ण यौवन से उन्मत्ता, नायिका, आरूढ़-मन्मथा रतिकेलि में प्रिय अंग में विलीन होने की चेष्टा कारिणी, अत्यन्त प्रौढ़ कहने वाली, तथा अत्यंत प्रौढ़ चेष्टाशालिनी, मान में अत्यन्त

यथा— श्रीकृष्णं भोगचिन्हांकं दृष्ट्वा काचिद्विभिन्नधीः।
स्वप्रियाया विभूषाद्यैं गच्छ गच्छेत्यभाषत ॥

अथप्रगल्भा— संपूर्णयौवनोन्मत्ता प्रागल्भा रूढ़मन्मथा।
दयितांगविलीनेव यतते रतिकेलिषु।
अतिप्रौढोक्तिचेष्टा च माने चात्यन्तकर्कशा ॥

सम्पूर्णयौवनत्व — उत्तुंगौ कुचकुम्भौ रंभास्तम्भोपमानमुरुयुगं।
तरले दृशौ च तस्याःसुकृतं कृष्णस्य वाहितं विधिना॥

अथमदान्धा— कुंजशय्यागतास्मानं सखीं च समवस्थितां।
रिरंसया स्थितं कृष्णं नास्मरत्काचिदंगना॥
विशेषस्मरणाभावमन्धत्वमिह कीर्त्तनं ॥

आरुढ़मन्मथत्वं—निःशंकोल्लसदुन्नतस्तनतटि खर्वत्वसंपादकं
निर्दंष्टाधरविम्बकं च करणेतु प्रांगेरागं प्रियं।

कठोरा प्रगल्भा है। सम्पूर्णयौवनत्वं।- उच्चा कुच कुम्भ, कदली-खम्भ सदृश-ऊरु युगल, तथा चञ्चल नेत्र युगल हैं। मानो विधाता ने श्रीकृष्ण के हित के लिये बनाया है। मदान्धा।- कोई रमणी कुञ्जशय्या में आए हुए अपने को, साथी सखी समूह को तथा रमण करने के इच्छुक श्रीकृष्ण को भी भूल गयी। आरुढ़मन्मथा।-रतिरण में उद्योगी अजित केशव का वाणोयों से उन्माद कर रही हैं। निशंकता पूर्वक मनोहर उन्नत स्तन को खर्व्वता कारक, विशेष क.के अधर बिम्ब दंशनशाली, अंग में लुप्त रागकारी, कांची भेद शाली, स्थानच्युत वलयादि सम्भारने वाली, है। कामशोला परायण प्रगल्भा और और भी प्रगल्भा को चेष्टा जानना। मानवृत्ति कारण से प्रगल्भा भी धीरादि भेद से त्रिविध हैं॥ ३०॥

काञ्चीभेदकरं विभिन्नवलयं कामास्त्रशिक्षापरं
वाग्भिर्मर्दयति प्रिया रतिरणोद्योगेऽजितं केशवं ॥
अन्यदपि प्रगल्भचेष्टादिकं ज्ञेयं ।
मानवृत्तेः प्रगल्भापि त्रिधा धीरादिभेदतः ॥ ३० ॥

धीरप्रगल्भा ।— उदास्ते सुरते धीरा सावहित्था च सादरा ॥

यथा ।— गुरुजन परिचयमिषतो राधा किल मालिकां नैच्छत् ।
दिनकरपूजाकरणव्याजात्ताम्बुलवीटिकां नादात् ॥

अधीरप्रगल्भा ।— संत्यज्य निष्ठुरं रोषादधीरा ताडयेत्पतिं ।

धीराधीरप्रगल्भा ।- धीराधीरगुणोपेता धीराधीरेति कथ्यते ॥

यथा ।— नास्ति क्रोधस्य गन्धोऽपि मम चित्ते भुजंगम ।
याहि शीघ्रमिमाः सख्यो बद्धुमिच्छन्ति साम्प्रतं ॥
एवं ज्येष्ठकनिष्ठात्मकौ भेदौ ज्ञेयौ ॥

धीरप्रगल्भा ।- सुरत में उदासिनी, आकार गुप्तकारिणी, आदरपरायणा धीरप्रगल्भा है । यथा ।-गुरुजन के परिचय छल से राधिका ने माला की तथा सूर्य्य पूजा के छल से भी ताम्बुल को नहि ग्रहण किया । अधीरप्रगल्भा निष्ठुरता छोड़कर रोष से पति को ताडना करती है ॥ धीराधीराप्रगल्भा धीरा तथा अधीरागुण से युक्ता है । यथा ।- हे भुजंगम ! मेरे चित्त में क्रोधकी गन्ध नहीं है उसी सखी के पास पधारिये । वह सब आपको प्रेम रस्सी में बान्धने को चाहती हैं ॥ इस प्रकार ज्येष्ठ, कनिष्ठ, भेद भी जानना । अब अवस्था कहते हैं । प्रोषितभर्त्तृका, वासकसज्जिका,

अथावस्थाः

प्रथमं प्रोषितपतिका वासकसज्जा ततश्च विरहोत्का।
अथ खण्डिका मता स्यात् कलहान्तरिताभिसारिका चेति ॥
कथिता च विप्रलब्धा स्वाधीनपतिस्तथा चान्या।
श्रृंगारकृतावस्था भेदात्त्वाष्टधा भिन्नाः ॥

प्रोषितभर्त्तृका।– दूरदेशं गते कृष्णे भवेत्प्रोषितभर्त्तृका।
प्रियसंकीर्त्तनं दैन्यं जागरः कृशता तथा।
नवीनवेषराहित्यमित्याद्यास्तत्र विक्रियाः ॥
दूरदेशत्वमत्रोक्तं रात्रेर्यद्व्यवधायकं ॥ ३१ ॥
वृहद्वनादिकं तत्तु नतु मण्डलतः पृथक्।
निमेषव्यवधानं तु नास्ति व्रजनिवासिषु।

यथा।— वृहद्वनं गते कृष्णे विवाहप्रेक्षणोन्मुखे।
शर्वरी चन्द्रसहिता वर्बरीति स्तवाधिका ॥

विरहोत्कण्ठता, खण्डिता, कलहान्तरिता, अभिसारिका, विप्रलब्धा, स्वाधीनपतिका, भेद से आठ प्रकार हैं। प्रोषितभर्त्तृका।— प्रिय दूरदेश में जाने पर प्रोषितभर्त्तृका होती है। प्रियकीर्त्तनदैन्य, जागरण, कृशता, नवीन वेष से रहित प्रभृति क्रिया होती हैं। यहाँ पर दूर देश शब्द से रात्रि का जो विच्छेद (विरह) है ॥३१॥ यह वृहद्वनादिक जानना किन्तु व्रजमण्डल से अलग नही है। व्रजवासियों में निमेषका भी वियोग नही है। विवाह दर्शन की इच्छासे श्रीकृष्ण वृहद्वन जाने पर चन्द्र तथा रात्रि भी तुमारे लिये वुरी हो गई है।वासकसज्जा।—स्त्रीयों के वार ही वा का

आसकसज्जा ।— भरताद्यै रभिदधे स्त्रीणां वासरतु वासकः ।
अत्रासकवशात्कान्तः समेष्यति गृहान्तिकं ।
सज्जीकरोति चात्मानं या सा वासकसज्जिका ॥
अनुभावाः कामक्रीडा वर्त्मेक्षणादि ॥

विरहोत्कण्ठिता ।- अनागसि प्रियतमे चिरयत्युत्सुका तु या ।
विरहोत्कण्ठता भाववेदिभिः सा समीरिता ॥
वेपथुहृत्तापादयश्चेष्टाः अत्र तु प्रिया भोग्य-
वस्त्वपादानार्थं विरचयति ॥

खण्डिता । उल्लंघ्य समयं कृष्णे आगतेऽन्योपभोगवान् ।
भोगांकत्वेन चेत् ज्ञातो तदाहि खण्डिता मता ॥
विनानिश्वासतूष्णीभावा ह्युह्यलापाद्योविक्रियाः ।
एवैव दत्वाय रात्रिः कस्याश्चित्तत्र यो हरिः ।
विमृतत्वात्तदर्थस्य श्रीराधा खण्डिता भवेत् ॥३२॥

सज्जा है ऐसा भरतादिक ने कहा है । अपना वासक वश से "कान्त गृह में आवेगा" इसलिये जो अपनेको सजाती है वह वासकसज्जा है । कामक्रीड़ा, मार्गदर्शन प्रभृति अनुभाव हैं । विरहोत्कण्ठता ।— प्रियतम के न आने पर उत्कण्ठित होकर व्यग्र होना बिरहोत्कण्ठता है वेपथु, हृदय में ताप प्रभृति चेष्टा तथा भोग्य वस्तु संग्रहादिक क्रिया हैं । खण्डिता ।— जो नायिका समय बिता कर श्रीकृष्ण के आने पर, भोगचिन्हों से और नायिका द्वारा उपभोग युक्त जानती हैं सो खण्डिता जानना, निश्वासरहित, तूष्णीभाव, आलापादिक क्रिया हैं ।

केचित्तु स्वदत्तां द्युतादिजितां वा रात्रिं विस्मृत्य खण्डितात्वं वर्णयन्ति। अन्ये त्वाहार्यत्वेन। अपरे तु स्वाधीनपतिकामेव। रसज्ञास्तु स्वाधीनपतिकात्व स्वरूपं खण्डितात्वाद्योऽवस्थाः। प्रकारभेदमाश्रित्य सर्वरसाश्रयत्वात्। यद्वा श्रीकृष्णेन श्रीराधायाः अवस्थान्तररसास्वादार्थं मिथ्यैव तत्तदावरणेन सर्वोऽपि रसः आस्वाद्यते यथा द्वारकेश्वरस्य श्रीरुक्मिण्यां।

श्रीदशमे यथा— मुखं च प्रेमसंरम्भं स्फुरिताधरमीक्षितुं।
कटाक्षेपारुणापांगं सुन्दरभ्रुकुटीतटमिति॥

कलहान्तरिता— या सखीनां तु पुरतः पादयोः पतितं प्रियं।
रुषा निरस्य तपति कलहान्तरिता तु सा॥
तापादयः क्रियाः॥

श्रीकृष्ण ने रात में आने का संकेत किया था। परन्तु अन्य कोई नायिका के प्रेमवश होकर भूलगये। उनके न आनेपर श्रीराधा खण्डिता सी हो गयी॥३२॥

कोई कोई अपने द्वारा दी हुई और पाशक्रीड़ा चौसरखेल में जीते हुए श्रीकृष्ण के रात्रि भूलजाने से नायिका को खण्डिता वर्णन करते हैं। अपर आहार्य करके कहते है और कोई स्वाधीनपतिका नायिका को खण्डिता वर्णन करते हैं। रसज्ञगण स्वाधिनभर्तृका का स्वरूप तथा खण्डिता प्रभृति अवस्था हैं ऐसे भेद मानते हैं। कारण श्रीकृष्ण समस्त रसको आश्रय है। किम्वा श्रीकृष्ण ने श्रीराधा के अवस्थान्तर आस्वादन के लिये छल पूर्वक अवस्थान्तर से रस आस्वादन करते हैं। जैसे द्वारकानाथ का

अभिसारिका— याभिसारयते कान्तं स्वयं वाभिसरत्यपि ।
तमो ज्योत्स्नानुकूलेन गच्छंती साभिसारिका ॥

विप्रलब्धा— कृत्वा संकेतमप्राप्ते दैवात् कृष्णेति वल्लभा ।
व्यथमानान्तरा प्रोक्ता विप्रलब्धा मनीषिभिः ॥

स्वाधीनवल्लभा— स्वायत्तासन्नदयिता हृष्टा स्वाधीनवल्लभा ।
सलिलारण्यविक्रीडाकुसुमावचयादिकृत ॥३३॥

श्रीगीतगोविन्दे— रचय कुचयोः पत्रं चित्रं कुरुष्व कपालयो
घंटय जघने काञ्चीमञ्च स्रजा कवरीभरं ।
कलय वलयश्रेणीं पाणौ पदे कुरु नूपुरा
विति निगदितः प्रीतः पीताम्बरोऽपि तथाकरोत ॥

श्रीरुक्मिणीदेवी में है । कलहान्तरिता।-जो सखीयोंके आगे चरण पतित प्रिय को क्रोधसे हटाकर तप्त होती है सो कलहान्तरिता है। जो अन्धकार तथा ज्योत्स्नानुयायी वेष से कान्त को अभिसार कराती और स्वयं अभिसार करती है सो अभिसारिका है। जो संकेत करती हुई भी दैववश श्रीकृष्ण न प्राप्त होने से व्यथित हृदय होती है सो विप्रलब्धा है अपने अधीन में श्रीकृष्ण रहने से स्वाधीनभर्तृका है। जलक्रीडा, वनविहार, कुसुमचयन प्रभृति चेष्टा जानना ॥३३॥

यथा गीतगोविन्द में मेरे स्तनों पर पत्रावली की रचना कीजिये। कपाल में चित्र तिलक, जघन मे काञ्ची रखिये, कवरी में पुष्प स्थापन करिये। हस्त में वलय समूह और चरण में नूपुर पहिराइये। इस प्रकार श्रीराधा कर्तृक कथित हो कर श्री कृष्ण

व्रजेन्द्रनन्दनास्वादथा राधैवेति सुनिश्चितं ।

कृष्णस्तु राधिकास्वादश्च इत्येवं सुविनिर्णयः ॥

अन्यासां तत्प्रसादेन कृष्णस्यास्वादनं मतं ।

उक्तंहि हरिभक्तिसुधोदये—

योगिचित्तरमास्पर्शं सेवकादिमहोत्सवं ।

दूरस्थभक्तश्रवणकरजिह्वाश्रयं तथा ॥

योगिनश्चितेनैव रमायाः स्पर्शं नैवेत्यादिज्ञेयं ।

आल स्वबैस्वरूपेण सदानुकूलया

मंदालस्तवे— त्यपूर्ववद्विस्मयमादधानया ।

गुणेन रूपेण विलासचेष्टितैः

सदा तवैवोचितया तव श्रिया ॥

नवोमाख्यं भगवद्भार्यया योग्याः कश्चिदप्सरसःस्त्रियः ।

अन्ये— रमावेशात्कदाचित्स्युः तः स्वेका पिंगलाऽभवत्

तदन्यासां महादोषो भगवद्भक्त ता स्मृतौ

ने ऐसा ही करने लगे ॥ श्री व्रजेन्द्रनन्दन कर्तृक आस्वादित राधा तथा श्रीराधा कर्तृक आस्वादित व्रजेन्द्रनन्दन हैं । और के श्रीकृष्ण का आस्वादन श्री राधिका जी की कृपासे जानना । हरिभक्ति सुधोदय में कहा है ।–

आलमन्दारस्तव में-- गुण, रूप, विलास, चेष्टाओं से लक्ष्मी आपके तुल्य है ।

भगवद् प्रिया के योग्य कोई कोई अप्सरा है । अप्सरा ओं में रमाका आवेश होने से । उनों में एक पिंगला हुई है । और का भगवद्भक्तता होना महादोष है ॥ ३४ ॥

ततश्च श्रीनारायणादीनामवतारत्वे निश्चिते श्रीकृष्णस्य चावतारित्वे तद्भोग्यायाः श्रीराधायाश्चावतारित्वमर्थशास्त्राभ्यां निर्णीतं। विशेषस्तु स्वरूपनिरूपणे वोद्धव्यः।

अस्याः सख्यश्च दास्यश्च दूत्यश्चापि सहस्रशः।
काश्चित्सख्यस्तु शुद्धाः स्युः काश्चिद्दास्येन संगताः।
दौत्येन मिश्रिताः काश्चिदित्येका त्रिविधामता॥

तथाहि।—सख्यरस एव ॥१॥ दास्येन मिश्रिताः ॥ २ ॥ दौत्येनमिश्रिताः ॥३॥ एवं सख्यास्त्रिधा। दास्ये शुद्धाः ॥१॥ सख्येन मिश्राः ॥२॥ दौत्येन मिश्राः॥ ३ ॥ एवं दास्यास्त्रिधा प्रोक्ता॥ दौत्ये शुद्धाः ॥१॥ दास्येन मिश्राः ॥२॥ सख्येन मिश्राः ॥३॥ एवं त्रिधा दूत्यं।

तुल्यरूपगुणाः सख्यः किञ्चिन्नूनास्तु दासिकाः।
दूत्यस्तु विविधा ज्ञेया जातिरूपादिभेदतः॥

सख्यस्तूक्ताः।— दास्यश्चतुर्विधा ज्ञेया समाज्येष्ठाकनिष्ठिका।
बहिरंगा पराश्चापि शुद्धहास्यरसादिकृत्॥

जब श्रीनारायण अवतार तथा श्र कृष्ण अवतारी हुए और श्रीकृष्ण द्वारा भोग्या श्रीराधिका है तो अवश्य अर्थ तथा शास्त्रों से श्रीराधिका के अवतारित्व सिद्ध है। विशेष स्वरूपनिरुपण में जानना। श्रीराधा के हजार हजार सखी, दासी तथा दूती हैं। कोई कोई सखी शुद्ध हैं कोई कोई दास्य से मिलित, कोई दौत्य से मिलित हैं। शुद्ध सख्य, दास्यमिश्र, दौत्यमिश्र से सख्य तीन प्रकार है। शुद्धदास्य, सख्यमिश्र, दौत्यमिश्र से त्रिविध दास्य तथा शुद्ध दौत्य, दास्यमिश्र, सख्यमिश्र से तिन प्रकार दौत्य है। तुल्य

अथ दूत्यः ।— स्वयंदूत्याप्तदूति वा अमितार्था तथैव च ।
पत्रहारी निसृष्टार्था दूत्यः पञ्चविधा मताः ॥३५॥

तत्र स्वयंदूती— अत्युत्कण्ठा गलद्व्रीड़ा रागाधिक्येन मोहिता ।
चक्षुर्वचोऽङ्गसम्भूतैः कर्म्मभिर्योजयेत्प्रियं ।
स्वयं दूतीति विख्याता नायकस्यातिमोहिनी ॥

तत्र चाक्षुषाः— नेत्रस्मितार्द्धमुद्रत्वे नेत्रान्तभ्रमकूणने ।
साचीक्षा वामदृक् प्रेक्षा कटाक्षाद्यास्तु चाक्षुषः ॥

नेत्रस्मितं— वैभवं रतिपते विदधती नन्दनन्दन पुरः कपटेन ।
आकलय्य नेत्रयुग्मं वृषभानुतनूजां चार्द्ध निमिलितं॥

नेत्रार्द्धमुद्रा— गर्गोक्तौ चन्द्रसूर्य्यौ तु वर्त्तेते कृष्णनेत्रयोः ।
इतीव राधिकानेत्रपद्मं चार्द्ध निमीलितं ॥

रूप गुण सख्य है । किञ्चित् न्यून दासिका तथा जाति, रूपादि भेदसे विविध प्रकार दूती है । सखी पहले कही हैं, शुद्ध हास्य रसादि कारक है । दास्य-समा, ज्येष्ठा, कनिष्ठा, वहिरंगा भेदसे चारि प्रकार हैं । स्वयंदूती, आप्तदूती, अमितार्था, पत्रहारी, निसृष्टार्था भेद से दूती पांच प्रकार है ॥३५॥

अति उत्कण्ठिता, लज्जारहिता, अत्यधिक राग से मोहिता, नेत्र, वाणी, शरीर उत्पन्न कर्म्मों से प्रिय को योजना करने वाली स्वयंदूती है । स्वयंदूती नायक की अत्यन्त मोहिनी है ॥ नेत्रस्मित, नेत्र का अर्द्ध मुद्रत्व, नेत्रान्त भ्रमण, तथा संकोचन, वक्रदृष्टि, वामदृष्टि, कटाक्ष प्रभृति चाक्षुष है । नेत्रस्मित-यथा--श्रीनन्दनन्दन रतिपति काम के वैभव धारण करते हुए, आगे वृषभानुनन्दिनी

नेत्रान्तभ्रमः— न दृष्टो रसराजस्तेन रहः केलिसंभ्रमः।
किं राधे कृष्णवदनेऽपांगं नटयसि ध्रुवं ॥

नेत्रकूणनं—अपावृतं किञ्चिदवक्रचचंलदृगञ्चलराधिकया प्रवर्त्तितं।
निकुञ्जराजे प्रथमाधीनतां प्राप्ते दृशो विस्मयमानयान्वयः ॥

साचीक्षा— वक्रावलोकनं।

वामदृक्प्रेक्षा— सख्यनेत्रेण चापीय कृष्णस्य वदनाम्बुजं।
तरलेनैव राधे त्वमुन्मनीभवसे वृथा ॥

कटाक्षः— यद्गतागतविश्रान्तिवैचित्र्येण विवर्त्तनं
तारकायाः कलाभिज्ञास्तं कटाक्षं प्रचक्षते ॥
अन्येत्यूह्यं ॥ ३६ ॥

अथवाचिकाः— वाचिको ह्यर्थशब्दाभ्यां व्यंग्य एवात्र संमतः।
शब्दार्थाभ्यां तु यो व्यंग्यौ श्रीकृष्णविषयौच तौ॥

को देखकर नेत्र युगल अर्द्ध निमीलित किये। नेत्रार्द्ध मुद्रा—श्रीकृष्ण के दोनों नेत्रों में चन्द्र सूर्य्य दोनों विराजित हैं। ऐसा गर्गजी के कहने पर श्रीराधिका के नेत्र कमल अर्द्ध निमीलित हुए॥ नेत्रान्तभ्रम :- हे राधे क्यों श्रीकृष्ण बदन में अपांग नचाती हो? देखिये उस अपांग से रहः केलि सम्भ्रम श्रीकृष्ण कुछ नहीं दिख रहे हैं। नेत्र कूणन :- लज्जावृत श्रीराधिका ने किञ्चित् अवक्र चञ्चल दृगञ्चलों को रोका। उससे प्रथम अधीन प्राप्त निकुञ्जराज श्रीकृष्ण विस्मित हो गये। वक्र अवलोकन करना साचीक्षा है। वामदृक्प्रेक्षा :- राधे सखी का नेत्रद्वारा श्रीकृष्ण मुख कमल पानपूर्वक तरलतापूर्वक क्यों उन्मना हो रही हो। कटाक्ष -नेत्र तारा का आना जाना विश्रान्ति वैचित्र्य से विवर्त्तन कटाक्ष है॥ ३६ ॥

विषयत्वं च कृष्णस्य द्विधात्र परिकीर्त्तितं ।
साक्षाच्च व्यपदेशाच्च श्रीकृष्णो विषयो मतः ॥
पुरस्थश्च तथा कृष्णः इत्येवं द्विविधो मतः ।
साक्षाच्छब्देन यो व्यंग्यः स कृष्णो बहुहेतुगः ।
गर्वाक्षेपैश्च याञ्चा वा इत्याद्या ह्यत्र तु हेतवः ॥

गर्वेण शब्दोत्थाव्यंग्य । श्रीकृष्णः । १ । गर्वेणार्थोत्थोव्यंग्यः श्रीकृष्णः ॥२॥ आक्षेपेण शब्दोत्थो व्यंग्यः । श्रीकृष्णः । ३ । आक्षेपेणार्थोत्थो व्यंग्यः श्रीकृष्णः ॥ ४ ॥ स्वार्थयाञ्चयाशब्दोत्थो व्यंग्यः श्रीकृष्णः । ५ । स्वार्थयाञ्चयार्थोत्थो व्यंग्यः श्रीकृष्णः ॥ ६ ॥ परार्थयाञ्चयाशब्दोत्थो व्यंग्यः । ७ । परार्थयाञ्चयार्थोत्थयंग्यः ।८ व्यपदेशेन शब्दोत्थो व्यंग्यः श्रीकृष्णः ॥६॥ व्यपदेशेनार्थोत्थव्यंग्यः श्रीकृष्णः ॥ १० ॥ निकटस्थः कृष्णः शब्दोत्थो व्यंग्यः ॥ ११ ॥ निकटस्थः कृष्णोर्थोत्थव्यंग्यः ॥ १२ ॥ ३७ ॥

अर्थ तथा शब्द से व्यंग्य वाचिक है। शब्द अर्थ दोनों से व्यंग्य श्रीकृष्ण विषयक है। श्रीकृष्ण का विषय साक्षात् तथा व्यपदेश से एकविध है। पुरस्थ भेद से द्विविध है। साक्षात् शब्द से यो व्यंग्य श्रीकृष्ण से बहु कारणगत है ।-गर्व से शब्दोत्थ व्यंग्य श्रीकृष्ण, गर्व से अर्थोत्थव्यंग्य श्रीकृष्ण, आक्षेप से शब्दोत्थव्यंग्य श्रीकृष्ण, आक्षेप से अर्थोत्थव्यंग्य श्रीकृष्ण, स्वार्थयाञ्चा से शब्दोत्थव्यंग्य श्रीकृष्ण, स्वार्थयाञ्चाया से अर्थोत्थ व्यंग्य श्रीकृष्ण, व्यपदेश से शब्दोत्थव्यंग्य श्रीकृष्ण, व्यपदेश से अर्थोत्थव्यंग्य श्रीकृष्ण, निकट स्थित श्रीकृष्ण शब्दोत्थव्यंग्य, निकट स्थित श्रीकृष्ण अर्थोत्थव्यंग्य, है ॥ ३७ ॥

अथोदाहृतयः— गर्वेण शब्दोत्थो व्यंग्यो यथा।—

ललिता संगगर्विष्ठा देवीनां तु पुरः सरा।
ते हितं मापते गच्छ मा कुरु त्वं भुजंगतां ॥

पक्षे-विलाससंगेन देवीनां व्रजदेवीनां देवीणां क्रीडापराणां वा मापते! लक्ष्मीपते। पक्षे-मां गच्छ भुजंगतां सर्पतां धूर्त्ततां वा पक्षे-मा मां भुजं वाहु गतां।

गर्वेणार्थोत्थोव्यंग्यः—सतीनां मूर्द्धाऽहं जगति विदिता गोकुलपते
ततोऽपांगश्रेणीं किमिति कुरुषे श्यामलतनुः।
इयं मार्गी सव्ये प्रसरति ततिः सापि कुपिता
समाक्रांते प्रान्ते मम सरसरंगे वनतटे ॥

पक्षे— सत श्री सुन्दरीणां मुख्या ॥ ३८ ॥

आक्षेपेण शब्दोत्थो-मापते! गच्छ माध्वनमावृणु त्वं भुजंगतां।

व्यंग्यः— कुर्व्वन् सगरमात्मानं अभिव्यंजन्नराजते ॥

ललिता संग से गर्व प्राप्ता देवीयों के समक्ष में अग्रसरा श्रीराधा हैं।

पक्षे-विलास सङ्ग से देवीयों का (व्रजदेवीयों) किम्वा क्रीड़ापरायण गोपीयोंका।मापते! लक्ष्मीपते-पक्षे-"मा गच्छ भुजंगतां" सर्पता को मत कीजिये किम्वा धूर्त्तता मत कीजिये। पक्षमें-बाहुगता मत मुझको। गर्वणोत्थव्यंग्य-हे गोकुल पते मे सती समूह की श्रेष्ठ जगत में विदिता हूं हे श्यामल शरीर! क्यों कटाक्षपात करते हो॥ ३८ ॥

आक्षेपापक्षे हे मापते अध्वानं गच्छ अध्वानं मावृणु अन्यथा भुजंगतां सर्पतां कुर्वन् सगरेणात्मानं अभिव्यंजन् न राजसे न शोभां प्राप्स्यसि। व्यंग्यपक्षे-हे पते मा गच्छ अध्वानं मार्गं किन्तूत्पथं गन्तव्यमिति भावः। उत्पथे गत्वा मा मां आवृणु ततः भुजंगतां बाहुगतां कुर्वन् रलयोरैक्यात्

मां सरा वत्वंगलग आत्मा शरीरं यस्यास्तां मां अभिव्यञ्जन् राजसे किं अपि तु सर्वात्मना राजस इत्यर्थः ॥

आक्षेपेणार्थोत्थो व्यंग्यः ॥

महारण्ये कुञ्जे सकलजनसंघैर्विरहिते
विलुण्ठन् धूर्त्तस्त्व विहरसि सपुष्पं करगतं।
इदं दृष्ट्वा ह्यग्रे यदि हरसि हा हृदि गतं
विदूरे गोष्ठं मे किमिह शरणं नीति रहिते ॥

याञ्चया शब्दोत्थोव्यंग्यः—सा याञ्चा स्वार्था परार्थाच।

आक्षेपसे शब्दोत्थव्यंग्य—आक्षेप पक्ष में-हे मा पते अपने रास्ते जाओ मेरा मार्ग मत रोको। नहीं तो आप सर्पभाव करके सगर (गरल सहित) शोभा को नहीं प्राप्त होगे। व्यंग्यपक्ष मे-हे पति! मार्ग को मत जाओ। किन्तु उत्पथ मे जाओगे यह भाव है। उत्पथ मे जाकर मेरे को मत घेरो बाहुगत करते हुए। र, ल, का ऐक्य है इसलिये।

मैं कैसी हूँ स गलमात्मकं-गले में लगा हुआ आत्मा (शरीर) जिसकी ऐसी मुझको प्रकाशित करके शोभित पाते हो किम्वा सर्वात्मना से शोभित हो? आक्षेप से अर्थोत्थ व्यंग्य-हे कृष्ण!

तत्त्वार्थो— नव्यया ललितया तवानया कृष्ण मञ्जुलतयाभि-
रक्षिता ।

देव सेवनपराहमागता प्रस्फुरत्सुमन संविधे हि मां ॥

मञ्जु मनोहरालता तया स्थितां प्रापिता देवस्य सूर्य्यस्य पुष्पार्थमागत्येत्यर्थः । अतः प्रस्फुरन्तः सुमनसो यस्याः व्यंग्यपक्षे— हे कृष्ण ! तव मञ्जुलता मनोरमता तया अभितः रक्षिता भर्त्तादितः । अतो देवस्य क्रीड़ाचतुरस्य सेवनपरा रसास्वादनपरा आगता । अतो मां विराजमानमनसं । याचयार्थोत्थो व्यंग्यः— यथा—

पुष्पैं देवी तु संपूज्या ह्येश्वाक्रिन्या मया सदा । ॥२६॥
सविधे पुष्पवाद्यस्ते मदीयस्त्वं विधीयता ॥

यह घन वन की निकुञ्ज है तथा जन शून्य है । पुष्प को हाथ से तोड़ कर निर्भय घूमते हो समक्ष में इस मेरे हृदय हार को यदि हरण करोगे तो गोकुल गांव तो दूर नहीं है अनीति करोगे तो कौन शरण देगा । याञ्चासे शब्दोत्थव्यंग्य-स्वार्थ परार्थ भेद से याञ्चया दो प्रकार की है । स्वार्थ—हे कृष्ण ! नवीना ललिता भली भाँति मुझको बचावेगी देवता की सेवा करने आयी हूँ । मनोहरलता द्वाराअभिरक्षित पुष्पोचयनार्थ, हे देव— श्री सूर्य्य । इसलिये जिसमें पुष्प प्रस्फुरित है । व्यंग्यपक्ष में— हे कृष्ण ! भर्त्तादिकों से तुम्हारी मनोहरतामें रगे हुए हैं । इसलिए क्रीड़ा चतुर, देव तुम पर रसास्वादन परायण होकर आये हैं । इसलिये विराजमान हैं मन बुद्धि जिसकी-ऐसी मुझको । याञ्चयार्थोत्थ व्यंग्य ॥ ३६ ॥

परार्थयाञ्चयाशब्दोत्थो व्यंग्य:—

कृष्णसर्पेति शय्यान्ते वदन्तो विह्वला सखी।
अतोऽद्य कालियहरं त्वामंह शरणं गता॥

परार्थ याञ्चयार्थोत्थोव्यंग्य:-

न राधा भर्त्तारं कचिदपि च दृष्ट्या गृहगतं
समद्राक्षीन्नित्यं तव सरसमूर्तिर्विलिखती।
तत्राप्येतद्वक्षो वहति रुचिरां तत्प्रतिकृतिं
नतः कृष्णप्रेम्णाहमपि विदधे दौत्यमखिलं॥

व्यपदेशेन शब्दोत्थो व्यंग्य:-

जल्पव्याजेन केनापि व्यपदेशोऽत्र कथ्यते॥
पद्मिनी घनरसेन समन्तात् त्यजतै यदि मरालक त्वया॥
सेव्यते च यदि चन्द्र चित्रिणी विचित्रायाश्रेणी आवली॥

व्यपदेशेनार्थोत्थो व्यंग्य- चन्द्रावलीत्यर्थः॥

मधुपैश्च न च घ्रातात्यक्तानुतस्य मञ्जरी।
रसज्ञकोकिलस्त्वं वै भ्राम्यसेऽत्र कथं वने॥

परार्थ याञ्चार्थोत्थव्यंग्य—हे कालिय मर्दन! शय्या पर कृष्ण-सर्प आया है ऐसी सखी व्याकुल होकर कह रही है। इसलिये मैं आज तुम्हारी शरण में जा रही हूँ॥ परार्थयाञ्चार्थोव्यग्यं-हे श्रीकृष्ण! श्रीराधा ने गृह में रहते हुए अपने स्वामी को कभी एक नजर नहीं देखती किन्तु सर्वदा तुम्हारी मूर्त्ति हृदय में अंकित करती रही है। तुम्हारा यह हृदय भी मनोहर राधा प्रतिकृति धारण कर रहा है इसलिये हम भी प्रेम से समस्त दौत्य करती हैं॥

निकटस्थ: श्रीकृष्ण: शब्दोत्थोव्यंग्य:—

शृण्वतोऽपि हरेर्मत्वा व्याजादश्रुतिवत्छल ।
जल्पोऽन्यत: स्थिते जन्तौ निकटस्थेन कथ्यते ॥

यथा— आहूतास्मि कथं चूतपुष्पाय भ्रमरस्वनैः ।
प्रमोदयति मामेष शोकहर्त्ताऽर्जुनो ह्यलं ॥

निकटस्थकृष्णोऽर्थोत्थव्यंग्य:—

हरिष्णु: कृष्णोऽयं सकलयुवतीनां धृतिकृति
यशो लोके ख्यातं कुसुमितलतावेष्टिततनुः ।
महारण्ये कुञ्जे प्रथितशतवीरुत्सु पतिता
कथं मोदये शीघ्रं कथय लतिके कोऽत्र शरणं ॥

अथांगिका:

अंगुलिस्फोटनं चाग्रे व्याजेनांगस्य संवृति: ।
दोर्मूलनाभिवक्षोजप्रकाशो व्याजतो भवेत् ॥

व्यपदेश से शब्दोत्थव्यंग्य—कोई जल्प व्याज से व्यपदेश होता है ।

हरि को सुनते हुए भी छल से न सुनने के भाव प्रकाश करना अन्यत्र स्थित जीव को निकट स्थित कहना जल्प है । निकटस्थ श्रीकृष्ण अर्थोत्थ व्यंग्य यथा ।-यह श्रीकृष्ण समस्त युवतीयों के धैर्य्य, तथा कर्मको हरण करते है । यश त्रिजगत में फैला हुआ है । कुसुमित लता से हमारे अंग वेष्टित हो गयी हैं । हाय इन महानिर्जन कुञ्ज में शत शत लता गुल्म के जालों पर पड़ गयी हूं मैं कैसे उससे मुक्त हो पाऊँगी । हे लतिके ! कहो यहाँ

कवरीमोक्षसंरोधौ कर्णकण्डूयनं तथा ।
तिलकालिंगने सख्याः पदाभूलेखनं तथा ॥
अंगस्य स्फोटनं जृम्भा दंशः स्वाधरगो भवेत् ।
वेशक्रिया भ्रुवो घूर्त्तिः सखीताडनमेव च ॥
दृक् पथे तस्य गमनं हारादीनां तु गुम्फनं ।
इत्याद्यस्त्वांगिकाः स्युरभियोगा हरौ किल ॥४०॥

अथाप्तदूती— कायवाङ्मानसैः कापि विस्रंभं न भिनत्ति या ।
स्निग्धा च वाग्मिनी दूती सा चाप्ता विनिगद्यते ॥

अमितार्था— द्वयोर्वैकतरस्यैव भावं ज्ञात्वा तु मेलयेत् ।
राधाकृष्णौ विदग्धौ या सामितार्थाभिधीयते ॥

पत्रहारिणी— सन्देशमात्रं कृष्णस्य श्रीराधाया स्तथैवच ।
नयेत्परस्परं वापि सा भवेत्पत्रहारिणी ॥

कौन शरण होगा । अंगुलि बजाना, छल से अंग का ढाकना, छल से बाहु मूल, नाभि, वक्षोज दिखाना, कवरी से ताला खोलना, संरोध, कर्ण कण्डूयन, तिलक, आलिंगन, पद से भूलिखन, अंग मरोड़ना, जभाँई, अधरदंशन, वेशक्रिया, भ्रू नेत्र घूर्णन, सखी-ताड़न, कृष्ण का नेत्र पथ में जाना, हारगुंथन, प्रभृति आंगिक अभियोग है ॥ ४० ॥

शरीर, वाणी, मन से कहीं भी विश्वासा (भरोसा) नहीं छोड़ने वाली मधुरभाषिणी चतुरा दूती आप्तदूती है । दोनों के किम्बा एक के भाव जानकर दोनों विदग्ध को मिलाती है सो अमितार्था है। कृष्ण के सन्देश मात्र तथा राधा के सन्देश मात्र, किम्बा परस्पर

निसृष्टार्था— अन्यवंचनकार्य्यादिभारस्वीकरणा द्वयोः ।
युक्तयोर्भी घट्येद् या सा निसृष्टार्था निगद्यते ॥
अथदूतीनां स्वरूपभेदाः ॥
शिल्पकारस्त्रियो धात्रो दैवज्ञस्य तथा स्त्रियः ।

धात्रेयी तापसी चैव वनदेवी सखी तथा ॥ धात्रेयी धात्र्याः पुत्री । तापसी-तपस्विवेषवती । वनदेवी-वनाधिष्ठात्री देवताः । सख्यः समानशीलाः । परिचारिका-लवंगमञ्जरी, लवंगपुष्पा, भानुमती स्वरसाद्याः । अथ दौत्यं द्विधा वाच्यं व्यंग्यं च । तदपि वाच्यं व्यंग्यं च साक्षात्परम्परा च ॥

अथसामान्यत:— कलाकौशलमुत्साहो भक्तिश्चित्रज्ञता स्मृति ।
कर्म्म — माधुर्य्यं नर्म्मविज्ञानं वाग्मिता चेति तद्गुणाः४१

के सन्देश लेती हैं सो पत्र हारिणि । पति प्रभृति को वञ्चन करने का जो भार है उसको स्वीकार करती है तथा दोनों को मिलाती है सो निसृष्टार्था है । अब दूतीयों के स्वरूप भेद कहते हैं । शिल्प कारस्त्री, धात्री, दैवज्ञस्त्री, धात्रेयी, तापसी वनदेवी सखी है धात्रेयी-धात्री की पुत्री, तपसी-तपस्वि वेषवती, वनदेवी-वनाधिष्ठात्री देवता, सख्य-समान स्वभाविका, परिचारिका-लवंगमञ्जरी, लवंग पुष्पा, भानुमती, स्वरसा प्रभृति, है । दौत्य दो प्रकार है । वाच्य, व्यंग्य, । तो भी वाच्य तथा व्यंग्य-साक्षात, परस्परा से दो भेद हैं । सामान्य कर्म्म-कलाकौशल, उत्साह, भक्ति, चित्रज्ञता, माधुर्य्य नर्म्म, विज्ञान, वाग्मिता प्रभृति गुण, हैं ॥ ४१ ॥

दोनों के प्रेम तथा गुण समूह का दोनों के प्रति कीर्त्तन,

अथ विशेष प्रेमवतीनां—

उभयोः प्रमगुणाद्योः कीर्त्तनं तत्तद्प्रतः।
आशक्तिकारिता चैव नर्म्मास्वादनमेव च ॥
अलंकृत्यादिकरणं कृष्णे राधासमर्पणं।
तथा कृष्णार्पणं तत्र स्वहृदुद्घाटनं तथा॥
अभिसारो द्वयोश्चैव छिद्रसंरोधनं तथा।
पत्यादेर्वञ्चनं शिक्षा काले संगमनं तथा।
व्यजनादिभिश्च सेवा च सन्देशप्रेषणं तथा॥
उपालम्भो द्वयोरेव नायकाप्राणरक्षणं।
इत्यादीनि तु कर्म्माणि ज्ञेयानि सुविशारदैः॥

अथासां परस्परभेदा॥

स्वपक्षः प्रतिपक्षश्च सुहृत्पक्षो इतित्रिधा।
सर्वांशेनानुकूलो यः सः स्वपक्ष इतीरितः॥

करना दोनों का दोनो मे आसक्त कराना, दोनों का नर्म्म आस्वादन करना, कलकारादिक निर्म्माण, श्रीकृष्ण मे राधा को समर्पण, तथा श्रीराधा में श्रीकृष्ण अर्पण, अपना हृदय उद्घाटन, दोनों का अभिसार कराना, दोष गोपन करना, पति प्रभृतिओं को वञ्चन करना, शिक्षा, समय पर मिलाना, व्यजन प्रभृतिओं से सेवा, सन्देश भेजना, दोनों का उपालम्भ, नायक प्राण रक्षण प्रभृति कर्म्म सखियों के जानना। अब परस्पर भेद वर्णन करते हैं। स्वपक्ष, प्रतिपक्ष, तथा सुहृत्पक्ष भेद से तीन प्रकार के हैं। सर्वांश में अनुकूल कारक स्वपक्ष, सर्वांश में प्रतिकूल कारक प्रतिपक्ष,

प्रतिकूलात्तु सर्वांशे प्रतिपक्षतया मतः ।
प्रातिकूल्येऽनुकूले च सुहृत्पक्षो ह्युदासः ॥
अजातशत्रुतासिद्धा श्रीराधायाः स्वरूपतः ।
श्रीराधागुणकोट्यंशो नान्यत्र परिदृश्यते ॥ ४२ ॥
ईर्ष्यया तु विपक्षाः स्युश्चन्द्राद्याः स्वत एव हि ।
तत्कृतं तु विपक्षत्वं मतं राधागणेष्वपि ।
यथा युधिष्ठिरराज्ञि कौरवादिकृतं मतं ।
स्वपक्षस्तु द्विधा कृष्णे समो विषम एव च ।
राधाकृष्णौ समौ प्रेम्णा सा समः परिकीर्त्तितः ।
न्यूनाधिकतया प्राप्तौ यस्य वैषम्यभाक् स तु ।
कृष्णस्य भक्तवर्गेषु द्वेषाद्या नोचिता इति ।
ये वदन्ति रसज्ञास्ते अपूर्वा इति मे मतिः ॥
श्री भागवते बहूनां गन्धोप्येषां न संगतः ।

प्रतिकूल तथा अनुकूल कारक से रहित सुहृत्पक्ष है। श्रीराधा की अजात शत्रुता सिद्ध है। श्रीराधा के गुणों का कोटि अंश भी अन्यत्र दीखता नहीं है ॥ ४२ ॥

चन्द्रावली प्रभृति ईर्षा से विपक्षा तथा श्रीराधिका गणों में ईर्षा करती हैं जैसे युधिष्ठिर महाराज में कौरवादिकों का ईर्षा है। स्वपक्षनायिका दो प्रकार की हैं। श्रीकृष्ण में तथा श्रीराधिका में समान प्रेम, और छोटे बड़े भाव से विषमता प्रेम है। श्रीकृष्ण के भक्तवर्गों में द्वेषादि उचित नहि है किन्तु रसपुष्टि के लिये जो रसज्ञगण वर्णन करते हैं सो अपूर्व है। व्रजभक्तों की गन्ध भी

कन्दर्पो मूर्त्तिमान् रत्या कृष्णराधानुगः सदा।
अंशेन वा विभूत्या वा इतरत्र विराजते।
यथा— लक्ष्मी कटाक्षेण सदा वर्त्तते जीवराशिषु।
ईशे त्वंशेन मर्य्यादाविर्त्येवं परमार्थता॥
अथविभावेषूद्दीपनाः।
कायिका वाचिका हार्दा एतत्संबंधिनस्तथा।
तटस्था अपि विज्ञेया एवं पञ्चविधा मताः॥
श्रीराधायां तथा कृष्णे ज्ञातव्यो रसवेदिभिः॥४२॥
तत्र कायिकाः— वयो रूपं च लावण्यं सौन्दर्य्यमभिरूप्यता।
मार्दवं सौकुमार्य्यं च मण्डनं नृत्यमेव च।
नामादिकं च विज्ञेया आलम्बनगता इमे॥

और कहीं नहीं है। कारण मूर्तिमान् कन्दर्प, रतिके साथ सर्वदा श्रीकृष्णराधा के अनुगत हैं। अन्यत्र अंश तथा विभूति से विराजित हैं। लक्ष्मी कटाक्ष से जीवराशि में रहती है।

अब विभावों में से उद्दीपन।—श्रीराधा, तथा श्रीकृष्ण में - कायिक, वाचिक, हार्द, एतत्सम्बन्धि, तटस्थभेदसे पाँच प्रकार उद्दीपन है॥४२॥

वय, रूप, लावण्य, सौन्दर्य्य, अभिरूप, मार्दव, सुकुमार, मण्डन, नृत्य, नामादिक कायिक आलम्बन हैं। गुञ्जा, मयूरपुच्छ, भूषण, वनमाला, चन्दन, भूषणशब्द, शिल्पकौशल, वीणा, गैरिकादि धातु प्रभृति सम्बन्धी हैं। इनके लक्षण द्वितीयोल्लास में कहे हैं। जो नहीं कहे हैं सो कहते हैं। श्रीराधिका की वय दो

संबन्धिनः— गुंजाशिखण्डिपिञ्छानि भूषणं वनमालिका।
चन्दनं भूषणाकारः शिल्पकौशलमेव च।
वीणा धात्वादिका ज्ञेया इमे सम्बन्धिनो बुधैः

एतल्लक्षणं द्वितीयोल्लासादावुक्तं। न यत्रोक्तं तदुच्यते। तत्र श्रीराधाविषयकं वयः।

यौवनं तु वयः सन्धिरित्येवं द्विविधं मतं।
यौवनं— नूतनं परिपूर्णं च यौवनं द्विविधं मतं।
प्रतियौवनमेतस्या चेष्टितानि पृथक् पृथक्॥
नूतनं— ईषच्चपलनेत्रान्तं स्मरस्मेरमुखाम्बुजं।
सगर्वजरजो गण्डमसृणाम्रारुणाधरं॥
लावण्योद्भेदरम्यांगं विलसद्भावसौरभं।
उन्मीलिताकुंरकुचमस्फुटांगकसन्धिकं॥
इत्येवं यौवनं तत्र लसति सेवया सदा।
कपेक्षते मृदुस्पर्शं सहते नोद्धतां रतिं॥
सखाकेलि सात्मांगलंकारकलिलादरात्।

प्रकार की हैं। यौवन, तथा वयःसन्धि। नूतन, परिपूर्ण भेद से यौवन दो प्रकार का है। प्रत्येक अवस्था में भिन्न भिन्न चेष्टा जानना। नूतन यौवन-यथा:-नेत्रभाग ईषत् चञ्चल, मन्दहास्ययुक्त मुखाम्बुज, गर्व बिन्दु से युक्त गण्डस्थल, अरुणाधर, लावण्य शोभित अंग, भाव सौरभ से विलास प्राप्त, उन्मीलितकुच, अस्फुट अंगसन्धि विशिष्ट नवीन यौवन सेवा के वास्ते विराजित है। मृदु स्पर्श न सहना, उद्धत रति का अपेक्षा न करना, केलि (

इत्यादि चेष्टितानीह विज्ञेयानि सुबुद्धिभिः ॥४४॥

यथा ।— विस्तारी स्तनभार एष गमितो न स्वोचितामुन्नतिं
रेखोद्भासि तथा वलित्रयमिदं न स्पष्ट निम्नोन्नतं
मध्यो स्याद्दजुरायतार्धं कपिशा रोमावली दृश्यते
रम्यं शैशवयौवनव्यतिकरोन्मिश्रं वपुर्वर्त्तते ॥

पूर्णं ।— स्तनौ पीनौ तनुर्मध्यः पाणिपादस्य रक्तिमा।
ऊरूकरिकराकारावंगव्यक्तांगसन्धिकं।
नितम्बो विपुलो नाभि गम्भीरा जघनं घनं
मानाधिक्यं सखीस्नेहोऽपराधस्यासहिष्णुता।
रतिकेलिष्वनिभृता चेष्टते गर्विता रहः।

वयः सन्धिः ॥— बाल्ययौवनयोः सन्धिर्वयः सन्धिरितीर्य्यते।

संस्कार में आवरता प्रभृति चेष्टा जानना ॥ ४४ ॥

यथा ।—स्तनभार विस्तृत होकर यथोचित उन्नति को नहीं प्राप्त हुआ है त्रिवली स्पष्ट निम्नोन्नत नहीं है। मध्य देश अभी क्षीण नहीं हुआ। शैशव तथा यौवन दोनों के मिलन होने से श्रीराधा के अंग सुन्दर हो रहे हैं। पूर्ण ।—स्तन का उच्च थात विस्तारित होना, मध्य देशमें क्षीणता तथा हाथ पाउँ मे रक्तिमा होना, उरु देश हस्ति शुण्ड सदृश, व्यक्त अंग सन्धिक, नितम्ब की विपुलता गभीर नाभि, निविड जंघा, व्यक्त रोमावली प्रभृति गुण विशिष्ट पूर्ण यौवन है। अधिक मान, सखी में स्नेह, अपराध न सहना, रति के लिये न डरना, गर्व प्रभृति चेष्टा है। बाल्य यौवन की सन्धि ही वयः सन्धि है। नाम-यथा।—हे कुरंगाक्षि,

नाम ।— वृन्दावने कुरंगाक्षि पश्य कृष्णं कुरंगकं ।
इत्युक्तेऽनंगघूर्णांगा राधिका संबभूव ह ॥
धारा धारागता चेयं वाटा नवकामुकं ।
इत्युक्ते न पूर्णोऽसौ श्रीकृष्णो घूर्ण इवाततः ॥

भूषणं ।— शृंगारोऽलंकृतिश्चेति भूषणं द्विविधं मतं ॥४५॥

अथशृंगारः ।— आदौ स्नानमथो सुरुचीरतिलके नेत्राञ्जनं कुण्डलं
नासालंकृति पुष्पहारचिकुरान् शिञ्जतथा नुपूरं ।
लेपं चन्दनसंभवं स्तनपटीं मुद्रावली बिभ्रती
ताम्बुलं मणिकंकणं चतुरतां श्रीराधिका राजते ॥

अलंकृतिः ॥— अलंकृति द्विधा ज्ञेया प्रायिकी नित्यसंस्थिता ॥
प्रायिकी चेच्छया प्राप्ता सख्याः स्वस्य प्रियस्य च
अलंकृति लोकसिद्धा विज्ञेया रसिकै गुणैः ॥

अर्थनित्या ।— नित्यं कुण्डलकंकणे च तिलकं चूडामणिं बिभ्रती
पादांगुष्ठविभूषणं कनयभं केशान्तभूषां तथा ।

वृन्दावन में कृष्ण कुरंग को देखो। सखी के ऐसा कहने पर श्रीराधिका अनंग से घूर्णायमान शरीर होगये। धारा धारा यह शब्द सुन कर श्रीकृष्णचन्द्र घूर्णीयमान हो गये। भूषण।— शृंगार, अलंकार भेद से भूषण दो प्रकार के हैं॥ ४५॥

प्रथम स्नान अनन्तर सुन्दर तिलक, नेत्रोंमें अञ्जन, कुण्डल, चन्दन, नासिका अलंकार, पुष्पहार, केशकलाप, शब्दायमान नुपुर, लेपन, स्तन में कञ्चुलिका, मुद्रावली धारण, ताम्बुल, मणि कंकण, प्रभृति शृंगार है। अलंकार प्रायिक, नित्यसं

पादालंकरणं तथा वलयभं मालां च मौक्ताफलीं
कण्ठालंकरणेन सर्वरसिता विभ्राजते राधिका ॥

मुक्तामाला एकसूत्रिणी केशान्ते पद्माकृतिरलंकरणं वेणी द्विरेफौ तिलकावतंस घ्राणाम्बुज शोत्रविभूषणानि, हारावली काचन काञ्चिनीविथीनिर्दे कंकण रत्नमुद्रे, गांगेयरत्नान् वत नूपुरौ द्वौ पादांगुलीनां वहुधा विभूषा। चतुर्दशोक्तानि विभूषणानि ॥४६॥

सौवर्णी चान्दनी पौष्पा सौत्री मणिमयी तथा।
कार्पूरी षड् विधा ख्याताऽलंकृतिः कृष्ण निर्म्मिता।

यथा— क्वचित्कर्पूरैस्तां क्वचिदपि सुवर्णैर्मणिगणैः
क्वचिन्नानावर्णैः सकलपटखण्डैः स्वरचितैः।
क्वचित्पुष्पैः सर्वैर्मलयजपरागैः प्रियतमा
मलं कुर्वन्कृष्णो विहरति सजाम्बुनदरुचिं ॥

स्थित भेद से द्विविध है। सखी, आप, किम्वा प्रिय के इच्छा से प्राप्त लोक सिद्ध प्रायिक है। नित्य-यथा।— श्रीराधिका नित्य कुण्डल, कंकण, तिलक, चूड़ामणी, पादांगुष्ठ विभूषण, वलय, केशभूषा, पादालंकार, चरण में वलय, मुक्ताफलमाला कण्ठालंकार से विराजमान है। मुक्तामाला एक डोरा में, तथा पद्माकार अलंकार केशान्त में, बीचमें काढ़ी हुई वेणी, प्रभृति जानना॥४६॥

सुवर्णमयी, चन्दनमयी, पुष्पमयी, सूत्रमयी, मणिमयी कर्पूरमयी, भेद से षड् प्रकार अलंकार श्रीकृष्ण निर्मित है। यथा। श्रीकृष्ण कहीं पर कर्पूरमय अलंकारों से, कहीं सुवर्णतथा मणिमय अलंकारों से, कहीं नानावर्ण के वस्त्रखण्ड से, कहीं पुष्पमय

अथ नुभावाः

एते तु स्वातन्त्र्येणैवोद्दीपनाः, नायकाश्रयत्वेन रसरूपाः।
भावं मनोगतं साक्षात्स्वहेतुं व्यञ्जयन्ति ये।
ते तु भावा इति ख्याता भ्रूविक्षेपस्मितादयः॥
सत्वजास्तु दशैव स्युर्भावाद्या इति निश्चितं।
तदन्तः पातिलीलाद्या कथ्यन्ते सत्वजा इति॥
एत एव ह्यलङ्काराः स्त्रीणां विंशतिराहु ताः।
ते चतुर्द्धा चित्तगात्रभाक् बुद्ध्यारंभणसंभवाः॥
तत्रचित्तजाः-- भावो हावश्च हेला च शोभा कान्तिस्तथैव च।
दीप्तिः प्रागल्भ्यमाधुर्यं धैर्य्यौदार्य्यं च
चिराजाः॥४७॥

अलंकारों तथा चन्दनमय अलंकारोंसे जाम्बुनद सुवर्ण सदृश प्रियतमा श्रीराधाको अलंकृत करते हुए विहार कर रहे हैं। अब अनुभाव कहते हैं। यह सब स्वतन्त्र से उद्दीपन तथा नायक आश्रय से रसरूप हैं। मनोगत भावको तथा साक्षात् कारण को जो प्रकाश करता है सो भाव है। भ्रू विक्षेप, स्मित प्रभृति जानना। भावादिक दश सत्व से उत्पन्न हैं। उनके अन्तः पाती लीलादिक सत्वज से ऊठे है। स्त्रियों के २० अलंकार है। अलंकार चित्तभाक् गात्रभाक् बुद्धिभाक् आरंभण भेदसे चार प्रकार के है। भाव, हाव, हेला, शोभा, कान्ति, दीप्ति, प्रागल्भ्य, माधुर्य्य, धैर्य्य, औदार्य्य चित्तज है॥४७॥

तत्रभावः— निर्विकारात्मके चित्ते भावः प्रथमविक्रिया ॥

तदुक्तं प्राचीनैः— चित्तस्याविकृतिः सत्वं विकृतेः कारणे सति ।
तत्राद्या विक्रियाभावो बीजस्यादिविकारवत् ॥

यथा— मणिपत्रिका विवाहं तु कुर्वन्ती साधनादरं ।
आरब्यते सखीहास्ये स्मेरवक्त्रा तु राधिका ॥

अत्र तु पूर्वं शैशवेन रसानभिज्ञ चित्तस्य पाञ्चालिका परिणयादरं वीक्ष्य हसन्त्यां सख्यां स्मितं कुर्वती रज्यते ततश्च हासशंकादीनां सम्भवात् प्रथमभावावतारः ॥

अथहावः— ग्रीवारेचकसंयुक्तो भ्रूनेत्रादिविकाशकृत ।
भावादीषत्प्रकाशो यः स हाव इति कथ्यते ॥

यथा— धात्रीवचोभिर्थ्वनिमर्मगर्भैः क्षणं सरोषस्मितमात्तलज्जा ।
पाञ्चालिकाद्वन्द्वमयी जयत्सा श्रीकृष्णपक्षीयसखीजनस्य ॥

भाव-निर्विकार चित्त में प्रथम विक्रिया भाव है। प्राचीन गण कहते हैं। विकार का कारण होते हुए भी चित्तका अविकृति सत्व है। उस निर्विकार चित्त में बीज के आदि विकार सदृश विक्रिया ही भाव है। मणि प्रतिमा का विवाह आदर में कराती हुई श्रीराधा सखीगण द्वारा हास्य करने पर हास्यमुखी होकर शोभित हो रही हैं। यहाँ पर पहिले शैशव के कारण रस में अनभिज्ञ चित्त थी। सम्प्रति पुत्तलिका के (गुड़िया) परिणय में आदर देखकर सखीगण हास्य करने पर आप मन्दहास्य करने लगी। अथ हाव-ग्रीवा रेचक युक्त भ्रूनेत्र प्रभृति विकाशकारी तथा हृदयभाव से ईषत् प्रकाश हाव है। मर्म गर्भ धात्री की बातों से क्षणकाल रोष के साथ लज्जोला

अत्र चित्तविकाराणां रोषहर्षलज्जादीनां कुटिलेक्षणास्मितादिभिरीषत्प्रकाशनादयं हावः ॥

हेला— नानाविकारैः सुव्यक्ता शृंगाराकृतिसूचकैः ।
हाव एव भवेद्धेला ललिताभिनयात्मिका ॥

यथा— शृण्वती वेणुमाधुर्य्यं कपोलं पुलकाञ्चितं ।
बालापि राधिका धत्ते नृत्यन्नेत्र कुचद्वयी ॥४८॥

शोभा— सा शोभा रूपभोगाद्यैर्यत्स्यादंगविभूषणैः ।

यथा— सुनिर्भराश्लेषसमर्दमालिकां
विश्लिष्टकेशां स्खलन्तं प्रियां हरेः ।
उद्घूर्णनेत्रं विसतांगरागिणीं
स्मरामि कुञ्जाञ्ज्वलन्तद्रवद्रसां ॥

होकर श्रीकृष्णपक्षीय सखीजनों की पाञ्चालिका युग अर्पण की यहाँ पर चित्त का विकार रोष हर्ष लज्जादिओं का कुटिलदृष्टि तथा स्मितादि से ईषत्प्रकाश से हाव है। हाव शृंगार सूचक नाना विकार से व्यक्त होकर ललित अभिनय रूपा हेला होती है। श्रीराधा वेणु माधुरी सुनकर कपोल पुलकायमान, नेत्र तथा स्तन का नर्त्तन करने लगी ॥ ४८ ॥

रूप भोगादिओं से तथा अंग के विभूषण प्रभृति से जो होती है सो शोभा है। माला की आश्लेष कारिणी, विश्लिष्ट केशा, घूर्णित नेत्रा, अंगराग से युक्त उज्ज्वल रूप द्रवाय मान रस हृदय शालिनी, कुञ्ज से निकलती हुई श्रीराधा को स्मरण करता हूँ। फिर मन्मथ क्रीडा से उज्ज्वल शोभा ही कान्ति है। रति शेष में श्रीहरि को फिर

कान्ति— शोभैव कान्तिराख्याता मन्मथाप्यायनोज्ज्वला।

यथा— प्रकुर्वती तु रत्यन्ते सर्वकामात्मकं हरिं।
रसलक्ष्म्याश्रितपदां राधिकामर्चयाम्यहं ॥

अत्र रतान्तव्याप्ताया अपि पुनः रतिजनकत्वेन कामोप्यायितत्वं।

दीप्तिः— कान्तिरेव वयो भोगदेशकालगुणादिभिः।
उद्दीपितातिविस्तारं प्राप्ता चेद्दीप्तिरुच्यते ॥

यथा— शरत् ज्योत्स्नाक्रान्ते तपनतनयाभूपरिसरे
नयन्ती श्रीकृष्णं मधुररसभावस्य विततिं।
अतो राधाराध्या मनसिजचमूभिः सविनयं
वयो लक्ष्म्याक्रान्ता मम मनसि मोदं वितनुते ॥
अतः सर्वैः कृत्वा सुरतोत्साहरूपा दीप्तिः ॥४५॥

प्रागल्भ्यं— निःशंकत्वं प्रयोगेषु प्रागल्भ्यं रसिकैः स्मृतं ॥

समस्त कामना करने वाली रसलक्ष्मी आश्रित चरणयुगल श्रीराधिका की अर्च्चना करता हूं। यहाँ पर रतान्त क्रीडा में व्याप्त होने से भी फिर रति जनकत्व कामप्यायित्व है। कान्ति ही वय, भोग, देश, काल, गुणादिकों से अत्यन्त उद्दीपित को विस्तार करने से दीप्ति है। यथा राधा शरतच्चन्द्र की ज्योत्स्ना से व्याप्त जमुना भूमि परिसर में श्रीकृष्ण को मधुररस भाव के समूह में लाने वाली है इसलिये काम की सेना की समूह से आराध्य तथा वय लक्ष्मी से आक्रान्त है जो कि मेरे मन में आनन्द विस्तार कर रही है ॥४५॥

प्रयोगादिकों में निःशाकंत्व प्रागल्भ्य है। यथा–प्रिया श्रीराधा

यथा—दन्तदंससहितं नखक्षतं केशकर्षणनखक्षतादनु ।
कुर्व्वती मधुरसंगरे प्रिया प्रातिकूल्यमिव संदधेऽधिकां ॥

माधुर्य्यं— माधुर्य्यं नाम चेष्टानां सर्व्वावस्थासु चारुता ।

यथा— दधाना कृष्णांशे स्वकरकमलं नृत्यरहिता
निजश्रोण्यां बाहुं त्रुटितवलयं चानृजुपदं ।
पदाग्रे कृष्णस्य प्रचलितकुचा श्वासभरतः
त्रिभंगिन्येषाहो त्रिगुणितरसाभाद्तितरां ॥

त्रिगुणत्वं च त्रिभंगेन नायकत्वं स्वस्मिन् श्रीकृष्णश्च । धैर्य्यं—
औदार्य्यं—स्थिरा चित्तोन्नतिर्यातु तद्धैर्य्यमितिकीर्त्तितं ॥ स्पष्टं ।
औदार्य्यं विनयं प्राहुः सर्व्वावस्थानुगं बुधाः ॥ स्पष्टं

अथगात्रारम्भः

लीला विलासो विच्छित्तिर्विभ्रमः किलकिञ्चितं ।
मोट्टायितं कुट्टमितं विब्बोकल्ललिते तथा ।
विकृति श्चेति विज्ञेया योषितां दश गात्रजाः ॥

दन्ताघात के साथ नखक्षत, तथा केशकर्षण प्रभृति करती हुई मधुर काम युद्ध में अत्यन्त प्रतिकूल्य को धारण करने लगी। समस्त अवस्थाओं में चेष्टाओं का चारुता ही माधुर्य्य है यथा श्रीकृष्ण के स्कन्ध में नृत्यरहिता श्रीराधा अपना कर कमल, निज श्रेणि देश में श्रीकृष्ण की बाहु, श्रीकृष्ण के चरण के आगे सुन्दर चरण धारण करती हुई श्वासवेग से चञ्चल स्तनी तथा त्रिगुणरस से त्रिभंग आकार हो गयीं त्रिगुणत्व अर्थ—त्रिभंग से मैं कृष्ण हूँ और श्रीकृष्ण राधा है। स्थिर चित्तोन्नति धैर्य्य है।

लीला— प्रियानुकरणं लीला रम्ये वेषक्रियादिभिः।

यथा श्रीदशमे— आहूय दूरगा यद्वत्कृष्णस्तमनुकुर्वती।
वेणुं क्वणन्ती क्रीडन्ती मन्याः संशन्ति साध्विति ॥ ४० ॥

विलासः— प्रियसंप्राप्तिसमये भ्रू नेत्राननकर्मणां।
तत्कालिको विशेषो यः स विलास इतीरितः।
स्पष्टं

विच्छित्तिः— आकल्पकल्पनाल्पाऽपि विच्छित्तिः कान्ति पोष-कृत् ॥ स्पष्टं

विभ्रमः— श्रीकृष्णप्राप्तिवेलायां मदनावेशसम्भ्रमात्।
विभ्रमो हारमाल्यादि भूषास्थान विपर्य्ययः ॥
स्पष्टं।

स्पष्ट अर्थ। समस्त अवस्था में अनुगत विनय औदार्य्य है। अब गात्रारम्भ कहते हैं। लीला, विलास, विच्छित्ति विभ्रम, किलकिञ्चित्, मोट्टायित, कुट्टमित विव्वोक, ललित विकृत भेद से दश प्रकार गात्र जात भाव स्त्रीयों के हैं। मनोहर वेष, क्रियादिओं से प्रिय का अनुकरण ही लीला है। यथा—दशममें—॥ ४० ॥

प्रिय की प्राप्ति समय भ्रू-नेत्र, मुख के कर्म्मों की तत्कालीन जो विशेषता सो विलास है। स्पष्ट अर्थ है। आकल्प कल्पन से अल्प कान्ति पोषणकारिणी विच्छित्ति है। श्रीकृष्ण के प्राप्ति समय में मदनावेश संभ्रम से हार, माल्य प्रभृति भूषणस्थान से विपर्य्यय विभ्रम है। गर्व, असूया, अभिलाष, अश्रु, क्रोध, स्मित,

किलकिञ्चितं— गर्वासूयाभिलाषश्रुक्रोधस्मितभियां यदा।
संकरीकरणं हर्षात्तदेव किलकिञ्चितं॥

यथा— गृहेषु श्रयन्ती गुरुजनमथावागंणगतं
प्रियं योषिद्वेषं सभयहृदया वीक्ष्य पुरतः।
वयस्ये तिष्टत्वं क्षणमिति वदन्ती स्मितरुषौ
दधाना श्रीराधा नयनजनिताश्रुर्विलसति॥

स्त्रीवेशात् स्मितं अतिष्ठेति गर्व्वः अभिलाषाः च प्राकट्ये भव। असमयागमने क्रोधासूये॥

मोट्टायितं— कृष्णस्मारवार्त्तादौ हृदयोद्भवभावः।
स्वाभिलाषप्रकटनं मोट्टायितमितीरितं॥

कुट्टमितं— केशाधरादिग्रहणे मोदमानेऽपि मानसे।
दुःखितेव बहिः कुप्येद्यत्र कुट्टमितं हि तत्॥

भावों का हर्ष से संकर (मिलन) होना किलकिञ्चित है। यथा— गृहों में गुरुजन सोने लगे। युवती वेष धारण पूर्वक अपने आंगन में आज श्रीकृष्ण आये हुए हैं। हे वयस्ये! क्षणकाल अब मेरे आंगन में रहिये। इस प्रकार भय तथा हर्ष से हास्य क्रोध को धारण करते हुए श्रीराधा नयन अश्रु से व्याप्त हो गये॥ यहाँ पर स्त्रीवेश के कारण स्मित, अतिष्ठ इति गर्व, अभिलाष-प्रकाश में भय, असमय आने में क्रोध तथा असूया है। कृष्ण के स्मरण वार्त्तादिओं में स्वअभिलाष प्रकटन हृदयोद्भव भाव मोट्टायित है। श्रीकृष्ण कर्त्तृक केश तथा अधरादिक ग्रहण करने पर अन्तर में आनन्द बाहिर क्रोध कुट्टमित है।

विब्बोकः - इष्टाऽप्यनादरो गर्वान्मानाद्विब्बोक ईरितः ॥४१॥

यथा ।— अर्पयामास कृष्णाय विपक्षजनसंनिधौ ।
श्रीकृष्णदत्तामाघ्राय मालां श्रीराधिका ततः ॥
अवज्ञयादानात् गर्वेण विब्बोकः ॥
प्राप्तां विपक्षय साम्येन वीटिकां हरिणार्पितां ।
प्रिया गृहीत्वा हस्तेन चेटिकायै ददौ पुनः ॥
समदानेन मानाद्विब्बोकः ॥

अथ ललितं ।— विन्यासभंगिरंगानां भ्रूविलासमनोहरा ।
सुकुमारा भवेद्यत्र ललितं तदुदीरितं ॥
यथा चरणकमल कान्त्या देहलीमर्चयन्ती
कनकमयकपाटं पाणिना कम्पयन्ती ।
कुवलयमयमदक्ष्णः तोरणं पूरयन्ती
वरतनुरियमास्ते मन्दिरस्थेव लक्ष्मीः ॥

गर्व तथा मानसे प्रिय वस्तु का अनादर विब्बोक है ॥ ४१ ॥
श्रीराधिका ने विपक्षसखीजनों के समक्ष में श्रीकृष्ण की दी हुई माला को सूंघ कर फिर कृष्ण के लिये अर्पण कर दीया गर्व से अवज्ञा पूर्वक ग्रहण करने से विब्बोक है । यथा ।— श्रीराधा ने हरि से अर्पित ताम्बुल प्राप्त हो कर विपक्षी की सदृश हस्त में लेकर किन्तु फीर दासी के लिये दे दूये ॥ मान से समदान विब्बोक है । विन्यास भंगि रंगों का भ्रू विलास से मनोहर सुकुमार होने पर ललित है । श्रेष्ठतनु श्रीराधा मन्दिर लक्ष्मी सदृश विराजित है । तथा ।—श्रीचरण कमल कान्ति से देहली को पूजा

विहृतं ।— ईर्ष्यया मानलज्जाभ्यामदत्तं योगिमुत्तरां
क्रियया व्यज्यते यत्र विहृतं तदुदीरितं ॥

ईर्ष्यया यथा ।— राधे मा ज्ञापयेदानीं न जामि व्रजमन्दिरं ।
इत्युक्तवन्तं कृष्णं सा ददर्श कुटिलभ्रुवा ॥
न गन्तव्यमिति नोक्तं कुटिलदर्शनादेव व्यजनाद्
विहृतं ।

मानेन— शुकं बुभुक्षितं दृष्ट्वा नालापन्ती तु राधिका ।
मुक्ताफलानि खनसि निदधे मानिनी प्रिया ॥५२॥
मादभाषणेन शुके भक्षणाव्यंजनाद् विहृतं ।

लज्जया— कृष्णस्य संनिधौ राधे गन्तव्यमिति वादिनीं ।
वदं चन्द्रो हृदयं मौनेनाप्युत्तरं व्यधात् ।
लज्जया हृदयस्थव्यञ्जनाद्विहृतिः ॥

कर रही हैं तथा हस्त द्वारा सुवर्ण मय कवाट को कम्पायमान कर रही है। और नेत्र द्वारा नील कमल की शय्या बिछाय रही है। ईर्ष्या से तथा मान लज्जा होने से जो उत्तर न देना किन्तु क्रियाद्वारा प्रकाश है सो विहृत है। ईर्षासे- हे राधे मत जनाओ व्रजमन्दिर मे नहीं जाऊँगा, ऐसा श्रीकृष्ण कहने पर श्रीराधिका कुटिलभ्रू से देखने लगी। मानसे यथा ।।- भोजन करने का इच्छुक शुक पक्षि को देख कर श्रीराधिका अलाप न करती हुई मुक्ताफल बीनने लगी ॥ ५२ ॥

लज्जा से ।-यथा श्रीकृष्ण का संनिधि में हे श्रीराधे चलना चाहिये ऐसा कहने वाली सखी को भी मौन भाव से भी उत्तरं

अथ पौरुषसात्विकाः—

शोभा विलासो माधुर्य्यं धैर्य्यं गाम्भीर्य्यमेव च।
ललितौदार्य्यतेजांसि सत्त्वभेदास्तु पौरुषाः॥

नायकप्रकरणे उक्ताः॥

अथ वागारम्भाः

आलापश्च विलापश्च संलापश्च प्रलापकः।
अनुलापापलापौ च सन्देशश्चातिदेशिकः।
निर्देशश्चोपदेशोऽपदेशश्च व्यपदेशकः॥
एवं द्वादशधा प्रोक्ता वागारम्भा विचक्षणैः॥

आलापः— चाटुप्रियोक्तिरालापः

यथा— काऽस्यंग ते कलपदामृतवेणुगीत इत्यादि

विलापः— विलापो दुःखजं वचः॥

संलापः— उक्तिप्रत्युक्तिमद्वाक्यं संलाप इति कथ्यते॥
उच्छिष्टाय इत्यादि॥ ४३॥

टिप्पणी। अब पुरुष सम्बन्धी सात्विक कहते हैं। शोभा, विलास, माधुर्य्य, धैर्य्य, गाम्भीर्य्य, ललित, औदार्य्य, तेज, सत्त्वभेद प्राप्त पौरुष भाव हैं। जो कि नायक प्रकरण में कहे गये हैं। अब वागारम्भ कहते हैं। आलाप, विलाप, संलाप, प्रलाप, अनुलाप, अपलाप, सन्देश, अतिदेश, निर्देश, उपदेश, अपदेश, व्यपदेश भेद से द्वादश प्रकार हैं। चाटु तथा प्रियोक्ति आलाप है। यथा-हे अंग कौन स्त्री आपका कलपदामृत वेणुगीत सुनकर मोहित होकर सतीत्व से स्खलित नहीं होती है। दुःखमय वाणी विलाप है। उक्ति प्रत्युक्ति युक्त वाक्य संलाप है। उठिये कहाँ नाव में इत्यादिक है॥ ४३॥

प्रलापः ॥— अर्थालापः प्रलापः स्यात् ।

यथा ।— मुखं तु चन्द्रप्रतिमं तिमं तिमं
स्तनौ च पीनौ कठिनौ ठिनौ ठिनौ ।
कटिर्विशाला जघना घना घना
अहो विचित्रा तरुणी रुणी रुणी ॥

अनुलापः ॥— अनुलापो मुहुर्वचः ॥
राधा राधा न हि न हि कृष्णप्राणः
पीतं पीतं नहि न हि राधाकान्तिः ।
कृष्णः कृष्णो नहि नहि राधा सम्पत्
कुञ्जः कुञ्जः नहि नहि विश्रामास्यं ॥

अपलापः ॥— अपलापस्तु पूर्वोक्तस्यान्यथा योजनं भवेत् ॥
त्वमेव भद्रा मम चन्द्रता च
त्वमेव गोवर्द्धनसंगिनी श्रीः

अर्थालाप प्रलाप है। यथा—मुख किन्तु चन्द्र सदृश है स्तन कठिन स्थूल है। विशाल कटी, तथा निविड जंघा है। अहो तरुणी विचित्रा है यहाँ पर प्रथम पंक्तिमें तिम तिमं द्वितीय पंक्तिमें ठिनौ ठिनौ, तृतीय मे घना घना, चतुर्थ में रुणी रुणी शब्द प्रलाप वाची है बारम्बार बोलना अनुलाप हैं। यथा ॥— श्रीराधा, श्रीराधा नहि नहि कृष्ण प्राण है। पीत है पीत है नहिं नहि राधाकान्ति है। कृष्ण है कृष्ण है नहिं नहिं राधा सम्पत्ति है कुञ्ज है, कुञ्ज है नहिं नहिं विश्राम है। यहाँ पर राधा राधा पीत पीत, कृष्ण कृष्ण, कुञ्ज कुञ्ज प्रभृति बारम्बार उक्ति है॥

प्रसादयन् व्याजपदेन राधां

ददातु कृष्णः स्वरसं सदा वः ॥

अत्र कल्याणचन्द्रपर्व्वतवाचिशब्दैः सखीचन्द्रावल्योः कल्पनेनालापः गोवर्द्धनो गोपः ।

सन्देशः ॥— सन्देशस्तु प्रोषितस्य स्ववार्त्ताप्रापणं भवेत् ।
स्वनिकटादन्यत्र स्थितस्य ॥५४॥

अतिदेशः— सोऽतिदेशस्तदुक्तानि मदुक्तानीति यद्वचः ।

यथा— प्रस्थिते तु वनं कृष्णे जीवितं तु कथं भवेत् ।
इतीदं कृष्णवचनं तस्या एव निधारयत् ॥

निर्देशः— निर्देशस्तु भवेत्सोऽयमहमित्यादिभाषणं ॥

उपदेशः— यत्तु शिक्षार्थवचनमुपदेशः स कथ्यते ॥

तुम भद्रा हो । तुम ही मेरे चन्द्र हो । तथा तुम ही गोवर्द्धन संगिणी लक्ष्मी हो । इस प्रकार छल पदों से श्रीराधिका को प्रसादकारी कृष्ण सर्वदा तुम सब को स्वआनन्द प्रदान करें । यहाँ पर भद्रा—कल्याण, चन्द्र, गोवर्द्धन पर्वत है अर्थान्तर में ।—भद्रा-भद्रा सखी, चन्द्रता-चन्द्रावली, गोवर्द्धन-चन्द्रावली के पति गोवर्द्धन नामक मल्ल है । प्रोषित नायिका के अपना वार्त्ता प्राप्त होना सन्देश है । पूर्वोक्ति का अर्थान्तर योजना होना अपलाप है ॥५४॥

तदुक्ति अतिदेश है । यथा-श्रीकृष्ण वन में जाने पर जीवन धारण कैसे होगा । श्रीराधा का श्रीकृष्ण वाणी ही जीवन है ऐसा निर्द्धार हुआ है । सो यह तथा सो हम् इत्यादि बोलना निर्देश है । शिक्षा के लिये जो वचन सो उपदेश है । और का अर्थ कहना

अपदेशः- अन्यार्थवचनं यत्र सोऽपदेश इतीरितः ॥

व्यपदेशः- व्याजेनात्माभिलाषोक्तिर्व्यपदेशइतीर्य्यते ॥

अथ बुद्ध्यारम्भाः

बुद्ध्यारम्भास्तथाप्रोक्ता रीतिवृत्तिप्रवृत्तयः।
पदाविन्यासभंगी स्यैव रीतिरित्यादयः ॥

अथसम्बन्धिनः- कायवचोमनसां संसर्गिणः सम्बन्धिनः ॥
तटस्थाश्चन्द्रादयः सात्विका व्यभिचारिणश्चोक्ता॥५५

अथमधुरारतिः स्थायी

सा च पूर्वं निरूपितेदानीं तस्याप्रिपरिपाटीनिरूप्यते।

निसर्गादभियोगाच्च संसर्गादभिमानतः।
उपमाध्यात्मविषयैः प्रादुर्भूता भवेद्रतिः ॥

अपदेश है। छलपूर्वक अपना अभिलाष कहना व्यपदेश है। अथ रीति वृत्ति प्रभृति बुद्ध्यारम्भ हैं। पदविन्यास, भंगी प्रभृति रीति, कैशिकादिक वृत्ति है॥ शरीर, वाणी, मन से संसर्गी सम्बन्धि है। चन्द्रादिक तटस्थ है। सात्विक तथा व्यभिचारी कहा है॥ ५५॥

अब-मधुररति-वर्णन करते हैं। वही पहिले ही निरूपण की गई है। अब उसकी परिपाटी निरूपण करते हैं। निसर्ग, अभियोग, संसर्ग, अभिमान, उपमा, अध्यात्म, विषयों से रति प्रादुर्भूत होती है। इसका अर्थ यह है—प्राकृत रति की तरह भगवद्रति का जन्म नहीं है। किन्तु प्रादुर्भूत है, किम्वा साधनों से और का संसर्ग है। गंगा द्वार सदृश जानना। इसमें प्रक्रिया यह है।

अयमभिसन्धिर्नहि प्राकृतरतिवदुत्पद्यते। अपि तु प्रादुर्भूतैवान्यसंसर्गिनीस्थ्यनैर्भवेत्। गंगाद्वारवत् तत्रेयं प्रक्रिया

मधुराख्यो भक्तिरसो नित्यस्तथा च मधुराख्या रतिः स्थायीभावः नित्यः, सादित्वे स्थायित्वव्याघातः भक्तिरसो रसत्वव्याघातश्च। ततश्चोभौ नित्यौ तथालम्बनमपि श्रीकृष्णः श्रीराधा च तथा च श्रीकृष्णे श्रीराधायां च निसर्गादिसप्तसाधनैः सप्त प्रकारवती रतिरनुभूयते परस्परं तथोभयपरिवारेश्च सादिपरिवारेषु पुनः प्रादुर्भावः॥५६

तत्रनिसर्गः— जन्म यस्मिन्नभावेन कारणायैव दृश्यते।
रतिस्तत्र तु विज्ञेयः संस्कारः पूर्वसम्भवः॥

अभियोग— अभिनिवेशस्तत्परत्वमिति यावत्।

संसर्गः— साम्प्रीकुलरूपाद्याधिक्येन सम्बन्ध। सामग्र्याद्याधिक्येन यथालोके सम्बन्धः संबन्धदृष्टि— स्तथा व्रजे श्रीकृष्णे राधिकायां च परस्परमन्यस्य वा रति र्भवेत्॥

मधुर नामक भक्तिरस नित्य तथा मधुरा नामक स्थायी रति नित्या है। आदि कहेंगे तो स्थायीत्व हानि है। भक्तिरस का रसत्व भी हानि है। इससे दोनों नित्य हैं। आलम्बन, और श्रीकृष्ण, श्रीराधा भी नित्य है। इस प्रकार श्रीकृष्ण में किम्वा श्रीराधिका में निसर्गादि सप्त साधनों से सात प्रकार की रति अनुभव होती है॥ ५६॥

निसर्ग—बिनाकारण से ही जिसका जन्म है सो पूर्वसंस्कार विशेष निसर्ग है। तत्परत्व हि अभियोग है। साम्प्र, कुल, रुपादि आधिक्य से सम्बन्ध संसर्ग है। जैसे लोक में। इस प्रकार व्रज में

अभिमानः- इदमेव मम प्रियं नान्यदिति निश्चयोऽभिमानः ॥

उपमा- यथा कथञ्चित् सादृश्यं प्रियाया उपमा स्मृता ॥

यथा- मयूरपिच्छेन श्रीराधायां श्रीकृष्णस्य रतिः केशसादृश्यात् ।

अध्यात्मं- स्वान्तःकरणप्रमाणमात्रं

यथा- दुष्कुन्तस्य शकुन्तलायां श्रीराधाकृष्णयोः परस्परं ॥५७॥

विषयाः शब्दादयः पञ्च ।

तत्र शब्दः- केनाप्युच्चरितं राधेवर्णद्वयमिति व्रजे ।
घूर्णीचकार श्रीकृष्णं व्यात्या तूलमिव क्षणं ॥

स्पर्शः- यस्याः स्पर्शो भवद्बन्धो श्रीदामन्नुत्सवे मम ।
तस्यास्तु दर्शनेऽतीव वलते मानसं पुनः ॥

श्रीकृष्ण तथा श्रीराधा में परस्पर की रति है। यह मेरा प्रिय और कोई वस्तु नहीं है सो निश्चय अभिमान है। प्रिया का यथा कथञ्चित समानता सादृश्य है। जैसे मयूर पिच्छ से श्रीराधिका में श्रीकृष्ण की रति है। स्वान्तःकरण प्रमाण मात्र ही अध्यात्म है। जैसे दुष्यन्त का शकुन्तला में। ऐसा ही श्रीराधा तथा श्रीकृष्ण का परस्पर जानना ॥ ५७ ॥

शब्दादिक विषय है। शब्द-व्रज में किसी ने राधा ऐसा वर्णद्वय उच्चारण किया तो पवन से तूल के समान श्रीकृष्ण को घूर्णायमान कर दिया। स्पर्श-हे श्रीदाम उस उत्सव में जिसका स्पर्श हुआ था उससे दर्शन के लिये मन अत्यन्त व्याकुल हो रहा है। रूप-भोग्यत्व ज्ञान से शून्य होने से भी आज रसिक श्रीकृष्ण श्रीराधा रूप का दर्शन करके अपनी आत्मा को पतंग के बराबर

रूपं- भोग्यत्वज्ञानशून्योऽपि राधारूपं-विलोक्य सः
आत्मानं रसिकः कृष्णः पतंगी कुरुते भृशं ॥

रसः- कृष्णस्य राधिकायाश्च विचित्रं मानसं यतः ।
अन्योन्यदत्तताम्बुलरससमास्वाद्य माद्यति ॥

गन्धः- राधागन्धं समाघ्राय भृंगमेव तपो बहु ।
मन्यमानस्त्वतितरां मुमुदे सखि माधवः ॥ ५८ ॥

अथोभयोर्निर्णयः

रसरत्यो रधिष्ठाने श्रीराधा कृष्ण एव च ।
भोक्तारौ च तथा ज्ञेयाववधीभूतयोस्तयोः ॥
पूर्वं बीजं ततश्चेक्षुरसः पश्चाद्गुडो भवेत् ।
खण्डश्च शर्करा चेति सिता पश्चात्सितोपला ॥
रतिप्रेमा तथा स्नेहः मानः प्रणय एव च ।
रागोऽनुरागो भावश्च क्रमात्त्वेवंविधो मतः ॥

करने लगे। रस-श्रीकृष्ण तथा श्रीराधा के मानस विचित्र है। परस्पर परस्पर को ताम्बुल रस देकर उन्मत्त हो रहे है। गन्ध-हे सखि ! श्रीराधिका के अङ्गगन्ध प्राप्त होकर अपने को भ्रमर को सदृश मन में अत्यन्त मोद करने लगे ॥ ५८ ॥

अब उभय का निर्णय करते है-रस तथा रति का अधिष्ठान श्रीकृष्ण तथा श्रीराधा है सीमा प्राप्त रस तथा रति का उभय भोक्ता भी है जैसे पहिले बीज, तदनन्तर इक्षुरस, पिछे गुड, खाँड, शर्करा, तदनन्तर सिता पिछे सितोत्पला है तैसे-रति, प्रेम, स्नेह, मान, प्रणय, राग अनुराग, भाव क्रमसे जानना ॥

सितोपलावधित्वेन रसस्य परमास्थितिः ।
तथा राधावधित्वेन रतेस्तु परमास्थितिः ॥
रसकार्य्ये गुड़ादौ तु मन्यते रसता यथा ।
तथान्यत्रापि विज्ञेया तारतम्यतया बुधैः ॥
यथा जलं स्वभावेन मधुरं शीतलं द्रुतं ।
आश्रयस्य विभेदेन नानात्वं याति तत्वतः ॥
श्रवणादौ तथा ज्ञेयं न भक्तेस्तु कदाचन ॥
यथा खण्डस्य भोगस्य कृतित्वेऽपि रतिर्नहि ।
कर्म्मणा मानसं किञ्चित् सुखमेवाभिमन्यते
ज्ञानिनां कर्म्मिणां चैव क्रियमाणेऽपि कीर्त्तने ।
तद्वत्सुखं तु विज्ञेयं न तु भक्तिः कदाचन ॥
वीजमिक्षुरसो मूलं तन्मन्त्र क्रियात्र तु ।

जैसे सितोपला पर्य्यन्त रस की परमस्थिति है तैसे ही श्रीराधा के अवधि पर्य्यन्त रति की परमस्थिति है। रसकार्य्य में गुड़ादि में जैसे रसता स्वीकृत है तैसे और जगह में भी तारतम्य से जानना। आश्रय की भिन्नता से स्वाभाविक मधुर शीतल तथा तरल जल–नाना प्रकार का हो जाता है वास्तविक नाना भेद नहीं है–वैसे ही भक्ति-श्रवणादि में प्राप्त होकर बहु प्रकार हो जाती है। जैसे खाँड़ का कृतित्व मे रति नहीं है तैसे कर्म से मन किञ्चित सुख को मानता है। इस प्रकार ज्ञानि तथा कर्म्मियों में कीर्त्तनादिक करने पर भी अल्प सुख है किन्तु भक्ति कभी नहीं है। जैसे बीज, इक्षुरस मूल है। गुड़ में जैसे रस है तथा

गुडे यथा रसादक्तिस्तथा मोक्षचतुष्टये ।
ततोऽधिकः शर्करासु रसः प्रायोऽनुभूयते ।
नित्याधिकारिणस्तद्वद्देवत्वेनापि विश्रुता ॥५६॥
सिता ततोऽधिका ज्ञेया स्वच्छत्वादवधीकृता ।
तद्वदीशोपासना तु सा भक्तिरवधीकृता ॥
सर्वावतारवीजत्वं सर्वेशत्वं तथैव च ।
सर्वानन्दकदम्बत्वं सर्वसेव्यत्वमेव च ॥
इत्यादि गुणवत्वेन सेव्यः कृष्णोऽत्रसंमतः ॥
सितोपलातः सर्वात्मा नान्यः स्याद्रसवैभवः ।
तथा श्रीराधिकानिष्ठो रतेर्वैभव ईष्यते ।
अयं सर्वविचारोहि प्रवर्त्तकतयेष्यते ।
वस्तुतस्तु रतेरुपं शुद्धोद इति कीर्त्तितः ॥

भक्षण करते हैं ऐसा मोक्ष में सुख जानना। उससे शर्करामें जैसे रस का अनुभव है ऐसे नित्याधिकारि देवताओं में जानना ॥ ५६ ॥

स्वच्छता के कारण जैसे उससे अधिक सिता है तैसे ही ईश्वर उपासना है। ईशता यथा।—श्रीकृष्ण समस्त अवतारों के कारण सबका ईशित्व, समस्त आनन्द कदम्ब, सर्व सेव्यत्व गुण-विशिष्ट सेव्य है। जैसे सितोपला से रसका वैभव और नहीं है तैसे श्रीराधिकानिष्ठ रति का और अवधि नहीं है। यह सब विचार प्रवर्त्तक से होता है। वास्तविक रति का रुप शुद्धोदक है।

तस्याश्रयस्तु राधैव विन्दुविन्दुतयान्यतः ।
प्रेमास्तु वैभवाः प्रायस्नेहाद्याः सद्भिरीरिताः ॥

अथप्रेमा ।— नाशापच्चयशून्यं यत्सत्यपि ध्वंसकारणे ॥ ६० ॥
यद्भाववन्धनं यूनो स प्रेमा विनिगद्यते ।

यथा — मया क्षिप्तः कृष्णो बहुभणितिभिर्गालिसहितैः ।
तथा चोक्तश्चायं गुरुषु परिपाटी परिकरैः
तथापि श्यामात्मा विसृजति नमे मार्गपदवीं ॥
उत्तमः प्राकृतो मध्यः स प्रेमान्यत्र दृश्यताम् ॥

अथस्नेहः ।— आरुह्य परमां काष्ठां दर्शनस्पर्शसंस्तवैः ।
हृदयं द्रावयन्प्रेमा स्नेह इत्यभिधीयते ॥

यथा-सुधाकरे ।— उभे तदानीमुभयोस्तु चित्ते
कदूष्णनिश्वासचरिष्णुकेन ।

उसका आश्रय श्रीराधा है । अन्यत्र विन्दु विन्दु भावसे जानना, प्रेम का वैभव स्नेहादि है एसो पण्डित गण की उक्ती है ॥ ६० ॥

प्रेम ।—ध्वंसका प्रचुरकारण होते हुए भी जो नाश तथा अपचय नही होता है सो दोनों का भाववन्धन प्रेम है । मैने गाली के साथ बहुत कठोर वाणी से श्रीकृष्ण को आक्षेप किया, परन्तु प्रीति न हटी । उत्तम, प्राकृत, मध्यम भेद से तीन प्रकार प्रेम है अन्यत्र देखिये । प्रेम दर्शन स्पर्श स्तवादि से परम सीमा को प्राप्त होकर जब हृदयको द्रव करता है सो स्नेह जानना ॥ रस सुधाकर में ।—दोनों उस समय दोनों के चित्त में कदूष्ण

एको करिष्यन्ननुरागशिल्पी
मानोष्मणैव द्रवतामनैषीत् ॥ ६१ ॥

प्रेममैत्री त्रैविधोमतः ।—

तैलवद्घृतवच्चैव मधुवच्च स्मृतो बुधैः ।
अल्पादरमयस्नेहो तैलवत् प्रविशेद्धृदि ।
आदरातिशयेनैव भावान्तरसमन्वितः ।
आस्वाद्यतां तु संगच्छन्स स्नेहो घृतवन्मतः ॥
परस्परस्वकीयत्वातिशयेन समन्वितः ।
स्वतः प्रकटमाधुर्य्यो रसान्तरसमाहृतिः ।
स स्नेहो मधुवज्ज्ञेयो व्रजेष्वेवासुनिश्चलः ।

मानः ॥— यस्तु स्नेहानुबन्धेन स्वातन्त्र्यहृदयंगमः ।
बध्नाति भावकौटिल्यं सोऽयं मान इतीर्य्यते ।

यथा ॥— विष्णुपुराणे–"काचित् भ्रूभङ्गुरं कृत्वा ललाटफल"

निश्वास वहाने लगे। मान का उत्ताप से दोनों के चित्त द्रव हो गया ॥ ६१ ॥

प्रेम तीन प्रकार का है। तैलवत, घृतवत् मधुवत्, है। अल्प आदर मय स्नेह तैल की सदृश हृदय में प्रवेश करता है। आदर के अतिशय से तथा भावान्तरसे युक्त होकर आस्वादको प्राप्त होने से जो स्नेह सो घृतवत् है परस्पर स्वकीयभावका अतिशय से युक्त तथा स्वतः ही प्रकट माधुर्य्यशाली रसान्तर से समाहारक स्नेह मधुवत् है व्रजवासियों में मधुस्नेह है। मान।— जो स्नेह अनुबन्ध से स्वतन्त्र हृदयगंम होकर भाव कौटिल्य को धारण

सुधाकरेबा-ऽपोहितुं लोचनतो मुखानिलैरपारयन्तं किलपुष्पजरजः।
पयोभरेणोरसि काचिदुन्मनाः प्रियं जघानोन्नतपीवरस्तनी॥६२

अत्रापराधकल्पनायामपि प्रेमकल्पितस्वातन्त्र्येणावज्ञारूपं भावकौटिल्यं।

प्रणयः— बाह्यान्तरोपचारै र्यत्स्नेहमानोऽपि कल्पितैः।
बध्नाति भावविस्रंभं सोऽयं प्रणय उच्यते॥
मानो दधानो विस्रम्भं प्रणयश्चोच्यते बुधैः।

यथा—उक्तं श्रुतौद्धतपर्णां सखीभ्यो विवद्ध्यति प्रेयसी कुंचितभ्रूः
कण्ठं कराभ्यामवलम्ब्य तस्य मुखं पिधत्ते स्व- कपोलकेन॥
अत्र भावबन्ध मानापराध कौटिल्ययोरनुवृत्तौ कण्ठालम्बनोपचारेण विस्रम्भः॥ कारणं प्रणयस्यास्य विस्रंभः कथितो बुधैः।
विस्रम्भे तु मैत्र्यं सख्यं च॥ ६३॥

करता है सो मान है। यथा —विष्णुपुराण में — कोई गोपी भ्रूधनु कुटिलता पूर्वक ललाट में इत्यादि॥ ६२॥

यहाँ पर अपराध कल्पना में भी प्रेम कल्पित स्वातन्त्र्य अवज्ञा रूप ही कौटिल्य है। प्रणय—जो स्नेह मय भाव कल्पित बाह्य तथा अन्तर उपचारों से भाव गौरव को धारण करता है सो प्रणय है। मान अत्यन्त गौरव को धारण करने से प्रणय है। यथा—प्रेयसी श्रीराधा कुंचित भ्रूसे सखियों के कर्ण में औद्धत रूपा बोल रही है तथा हस्तों से कण्ठ अवलम्बन पूर्वक उनके मुखस्वकपोल से ढाक रही है यहाँ पर भावयुक्त मान तथा अपराध कौटिल्य दोनों का अनुवृत्ति होने से कण्ठालम्बन उपचार से विस्रम्भ है॥ ६३॥

राग:— दु:खमप्यधिकं चित्ते सुखत्वेनैव रज्यते ।
प्रणयातिशयेनैव स राग इति कथ्यते ॥
कुसुंभनीलीमञ्जिष्ठारागभेदेन स त्रिधा ॥

कुसुम्भराग:— कुसुम्भराग: स ज्ञेयो यश्चित्ते सज्जति क्षणात् ।
अतिप्रकाशमानोऽपि शोभते च यथोचितं ॥

नीलिराग:— नीलिरागस्तु संलग्नो वहि र्नाति प्रकाशवान् ।
नापैति च मनाक् क्वापि श्यामादिषु विराजते ।

मञ्जिष्ठा— अन्यसापेक्षता हीन: कान्त्या संवर्धते सदा
मञ्जिष्ठराग एष: स्याद्राधाकृष्णाश्रय: सदा
श्रीराधायां तथा कृष्णे नान्यत्रास्ति कदाचन ॥६४

अनुराग:— राग एवानुराग: स्यादनुभूतं नवी भवत् ।
क्षणे क्षणे चमत्कारकारकोऽतिशयात्मक: ॥

राग—चित्त में अत्यन्त दु:ख होने पर भी सुख करके होता है तथा जो प्रणय का अतिशय है सो राग है। कुसुम्भ, नीली मञ्जिष्ठा भेद से तीन प्रकार है। जो चित्त में क्षण काल में सज्जित होता है तथा अत्यन्त प्रकाशमान होकर भी यथोचित् शोभा को प्राप्त होता है सो कुसुम्भ राग है। बाहर न प्रकाशवान तथा जो दूर नहीं होता है सो नीलीराग जानना। अन्य सापेक्ष्य से रहित कान्ति से वर्द्धनशील मञ्जिष्ठ राग है। यथा श्रीराधा कृष्णा का श्रीराधा तथा श्रीकृष्ण में मञ्जिष्ठा राग है अन्यत्र नहीं है ॥ ६४ ॥

भावः— अनुरागः स्वसंवेद्यदशां प्राप्य प्रकाशितः ।
यावदाश्रयवृत्तिश्चेद्भाव इत्यभिधीयते ॥

स भावः रूढ़ोऽधिरूढश्च ।

रूढः— उद्दीप्ताः सात्त्विका यत्र स रूढ़ इति भण्यते ।

अधिरूढः– रूढ़ोक्तेभ्योऽनुभावेभ्यः कामप्याप्ता विशिष्टतां ।
यत्रानुभावा दृश्यन्ते सोऽधिरूढ़ो निगद्यते ॥
मोदनो मादनश्चासावधिरूढ़ो द्विधोच्यते ॥
आलम्बने तु सत्त्वानां यत्रोद्दीप्ते तु सौष्ठवं ।
स भावो मोदनो ज्ञेयो रसज्ञैस्तु सुबुद्धिभिः ॥

अथाधिरूढ़ो भावो मादनः—
सर्वभावोद्गमोल्लासी सर्वानन्दविशारदः ।
राधाया ह्लादिनसारो मोदनोऽयं विराजते ॥

अनुराग—राग ही दशा जब मे अतिशय चमत्कार कारक होकर नवीन अनुभव होने पर अनुराग होता है। भाव–अनुराग स्वसंवेद्य दशा को पाकर प्रकाशित पूर्वक यावदाश्रयवृत्ति होने से भाव होताहै ॥ भाव दो प्रकारके हैं रूढ़ तथा अधिरुढ़ है। जहाँपर सात्त्विक समूह उद्दीप्त है सो रूढ़ हैं। रूढ़भावोक्त अनुभावों से कोई अनिर्वचनीय विशिष्टता को प्राप्त होकर अनुभाव समूह दिखाते है सो अधिरुढ़ है। कोई-मोदन तथा मादन भेद से अधिरुढ़ के दो भेद कहाते हैं। सत्त्वों का आलम्बन से जहाँ अत्यन्त उद्दीप्त में सौष्ठव है सो मोदन है। समस्त भावों का उद्गम शाली, उल्लास शील, समस्त आनन्द का पण्डित,

अत्रायोग्ये भवेदीर्ष्या भोगगन्धे स्तवादयः।
कुत्रापि अयोग्यास्वीर्ष्या। कुत्रापि भोगसम्बन्धे स्तवादयः।
धन्याः पुलिन्दा त्यादयः॥ इतिस्थायिभावः॥ ६५ ॥

अथ शृंगारभवः।

अथशृंगारभेद—

सम्भोगो विप्रलम्भश्चे ति द्विविधः।
अयुक्तयो र्विप्रलम्भः संयुक्तयोः संभोगः
तत्र विप्रलम्भः-विप्रलम्भो हि भोगस्य संवर्द्धकतयेष्यते॥
पूर्वानुरागो मानश्च नेत्रागोचरता तथा।
एतैर्जन्यो विप्रलम्भः संभोगस्यैव वर्द्धकः॥
तत्र पूर्वरागः—यः प्रेमः संगमात्पूर्वं दर्शनश्रवणाद्भवः।
पूर्वानुराग स ज्ञेयः परस्परगुणश्रुतिः॥

ल्हादिनीशक्ति का सार मादन है जो केवल श्री राधिका में विराजमान हैं इस भाव में अयोग्य वस्तु में ईर्षा, भोग गन्ध में स्तवादिक अनुभाव है।—विशेष उज्वल नीलमणि में द्रश्य हैं॥६५॥

अब शृंगार भाव कहते है। सम्भोग विप्रलम्भ भेद से शृंगार द्विविध है। अयुक्त विप्रलम्भ संयुक्त संभोग है। भोग के संवर्द्धक ही विप्रलम्भ है पूर्वानुराग मान नेत्र अगोचर हैं इनसे विप्रलम्भ का जन्म तथा संभोग वर्द्धनकारी है। पूर्वराग —संगम के पहिले ही दर्शन तथा श्रवण से उत्पन्न जो प्रेम सो परस्पर गुण श्रवण कारक पूर्वराग है। पूर्वानुराग, संकल्पाख्य है। उसमें

पूर्वानुरागः संकल्पाख्यः यत्र श्रीकृष्णविषया
लालस उद्वेग जागर्यादयः ॥

मानाख्यो विप्रलम्भः ।—

कृष्णसम्बन्धविषये नेति नेति च यद्वचः
ईप्सितालिंगनादीनां निरोधो मान उच्यते ॥

सामदानभेदरसान्तरप्रणतिभिर्मानशैथिल्यं । नेत्रागोचरत्वं स्पष्टमेव । अत्रानुपयोगित्वादुपेक्षितमन्यत् नहि श्रीराधाकृष्णयोः प्राकृतरसपरिपाटी प्रवेशोऽपित्वलौकिकी। विप्रलम्भादिकं तु परिपाटीभेदेन कुत्रचिदाहार्य्येण कुत्रचित्परिहासेन कुत्रचित् श्रीकृष्णमित्रकृतेन कुत्रचित् सखीकृतेन विप्रलम्भः ।

सतु भोगरसोल्लास एव नतु विप्रलम्भस्ततश्च तदनुकूलाभावा ज्ञेया अत एवमपेक्षिता व्याधि मृत्यादयोऽवस्थाः । इदानींतनानां

श्रीकृष्ण विषयक लालसा, उद्वेग, जागर्य्या प्रभृति अनुभाव हैं। मान—कृष्ण सम्बन्धी विषय में नेति नेति वाणी द्वारा इच्छित आलिंगन प्रभृतिओं का निरोध मान है। साम, दान, भेद, रसान्तर, प्रणाम द्वारा मान की शिथिलता है। नेत्र अगोचरत्व स्पष्ट है। यहाँ अनुपयोगिता के कारण वर्णन नहीं करते हैं। श्रीराधाकृष्ण में प्राकृतरस परिपाटि का प्रवेश नहीं है किन्तु अलौकिक परिपाटी का प्रवेश है। विप्रलम्भ परिपाटी प्रभृति कहीं स्वीकार से, कहीं परिहास से, कहीं श्रीकृष्ण के मित्र द्वारा कर्त्तृक कहीं सखीयों का होता है।

यह भोगरस का उल्लास विप्रलम्भ है इसलिये तदनुकूल भाव समूह ग्राह्य है। अतः व्याधि, मृति प्रभृति अवस्था अपेक्षित की

श्रीराधामाधवयोश्चरणासेवैव भक्तिरसप्रापियका ॥ ६६॥

अथसंभोगः— दर्शनालिंगनादीनामानुकूल्यान्निषेवया।
राधामाधवयोर्भाव उद्रिक्तो भोग उच्यते ॥

स चतुर्विधः। संक्षिप्तः, संकीर्णः, संपन्नरतिः, समृद्धिमानिति ॥

संक्षिप्तः— राधा कृष्णौ तु संक्षिप्तान्साध्वसव्रीडितादिभिः।
उपचारान्निषेवेते स संक्षिप्त इतीरितः।

संकीर्णः— यत्र संकीर्यमानाः स्युर्व्यलिकस्मरणादिभिः।
उपचाराः स संकीर्णः किञ्चित्तप्तेक्षुपेशलः ॥

सम्पन्नः— वियोगात् संगते कृष्णे भोगः सम्पन्न इष्यते ॥

समृद्धिमान्— श्रीराधाकृष्णयोः क्वापि पारतन्त्र्याद्वियुक्तयोः
उपभोगातिरेको यः कीर्त्यते स समृद्धिमान् ॥

गयी है। अब श्रीराधाकृष्ण दोनों की चरण सेवा हि भक्तिरस प्राप्ति कारिणी है॥ ६६॥

संभोग—अनुकूलमय भाव से स्पर्श आलिगंन प्रभृति की सेवन द्वारा राधामाधव दोनों के उद्रक्त भोग संभोग है। संक्षिप्त, संकीर्ण, सम्पन्न, समृद्धिमान भेद से चार प्रकार है। संक्षिप्त।— श्रीराधाकृष्ण-दोनों भय तथा लज्जा से संक्षिप्तभावसे उपचार समूह सेवा करते हैं सो संक्षिप्त है। अलीक स्मरणादिओं से उपचार समूह संकीर्यमान होने से संकीर्ण है जैसे तप्त इक्षु का चर्व्वण है। वियोग से आगत श्रीकृष्ण मिलने पर जो भोग सो संपन्न है। अत्यन्त परतन्त्रे वियोग प्राप्त श्रीराधाकृष्ण दोनों के जो मिलन से उपभोग का अत्यन्त सो समृद्धिमान है। स्वप्न में

स्वाप्नो भोगस्तु गौणः स तु व्रजादन्यत्र हि ।
अनुभावदशां प्राप्ता रतेः सर्वात्मना च ये ।
संक्षिप्ता अत्र गण्यन्ते भोगांकत्वेन पेशलाः ॥
संस्पर्शो दर्शनं जल्पो मार्गरोधनमेव च ।
रासवृन्दावनक्रीड़ा यमुनाजलकेलयः ।
घट्टे स्थितिश्च नौ क्रीड़ा घट्टकुञ्जादिलीनता ।
चौर्य्यक्रीड़ा वधूवेशधारणं छलसुप्तता ।
वधूवेशः पटाकृष्टः संश्लेषश्चुम्बनं तथा ।
द्यूतक्रीड़ा नखांकं च श्लथकेशादियोजनं ।
बिम्बाधरसुधापानं भूषणादेः कृतिस्तथा ।
पानसंवाहनाद्यास्तु बुधै ज्ञेया उपासनात् ॥
घनीभूतरतेः क्वापि वैचित्र्यं जायते क्वचित् ।

जो भोग सो गौण तथा व्रज से अन्यत्र है । सर्वात्मभाव से जो रति का अनुभाव दशा को प्राप्त है सो संक्षिप्त यहाँ पर गौरव है और भोग चिन्ह से सुन्दर है ।

संस्पर्श, दर्शन, कथोपकथन, मार्गरोध, रास, वृन्दावनक्रीड़ा, यमुना में जलकेलि, घाट (पनघट) में स्थिति, नावविहार, घट में छिपना, कुञ्ज में छिपना, चौर्य क्रीड़ा, वधूवेश धारण, कपटशयन, वधूवेश, पटखींचना, आलिंगन, चुम्बन, द्यूतक्रीड़ा, नखांक, बिखरे केश समेटना, बिम्बाधरसुधापान, भूषणादि क्रिया, पान, पदसेवा प्रभृति है । पण्डितगण उपासना द्वारा प्राप्ततत्व होवे है । रति घनीभूत होने पर कोई कोई स्थल में वैचित्र्य अवस्था धारण करती है । श्रीकृष्ण निकट में रहते हुए भी रति के स्वभाव

श्रीकृष्णसंनिकर्षेपि रतेः किञ्चित्स्वभावतः ।
विश्लेषबुद्ध्या चार्त्तिः स्याद्रतिवैचित्र्यमुच्यते ।
शुकेन चरमेऽध्याये विवृतं सर्व्वसंमतं ।
व्रजेतरैकरसे ज्ञेयं वैचित्र्यं रासमण्डले ।
गमनागमनं सर्वं मर्य्यादा प्रक्रिया मता ॥६७॥
इतिश्रीनारायणभट्टविरचितायांभक्तिरसतरंगिण्यां
मधुररसोल्लासश्चतुर्थः ॥

अथ हास्योक्तभक्तिरसः ॥

स्वोचितैस्तु विभावाद्यैः स्वभ्यानां रसतां गतः ।
हासो हास्यरसः प्रोक्तो विकृतांगक्रियादिभिः ।
अस्मिन्नालम्बनाः कृष्णो वृद्धा बाला इतीरिताः ॥

श्रीकृष्णः—यथा कार्याचित ❀.

से विश्लेष भाव उत्पन्न होने पर अत्यन्त आर्ति बढ़ती है । इसीको वैचित्र्य कहते हैं श्री शुकदेव जी ने चरम अध्याय मे वर्णन किये हैं । यह समस्त पण्डितगणों के मत है । व्रज में किन्तु एक रस जानना । रास लिलादिओं मे वैचित्र्य है । गमन, आगमन सब मर्य्यादा प्रक्रिया है ॥ ६७ ॥

अब हास्य रस कहते हैं । निजोचित विभावादि द्वारा हास नामक स्थायी भाव सामाजिकों के हृदय में आस्वादित होकर हास्यरस से ख्यात होता है तथा अंगविकृत्यादि जिस में किया है । कृष्ण, वृद्धागण, बालक समूह आलम्बन जानना श्रीकृष्ण का यथा —हे मैया ! भयानक जर्जर, टूटे फुटे इस बाबाजी के पास नहीं

❀श्रीगममागुरुः मधुरभक्त्यासिद्धान्तस्य महाभाग्याज्जिनः श्रीरूपगोस्वामीचरणस्य भक्तिरसामृतसिन्धो

यास्याम्यस्य न भीषणस्य सविधं जीर्णस्य शीर्णाकृते
र्मात नेष्यति मां पिधाय कपटाद्दाधारिकायामसौ।
इत्युक्ता चकिताक्षमद्भुतशिशावुद्वीक्षमाणे हरौ
हास्यं तस्य निरुन्धतोऽप्यतितरां व्यक्तं तदासीन्मुनेः ॥ १ ॥

वृद्धाः— प्रसारय मुखं कृष्ण नवनीतं ददामि ते।
श्रुत्वा प्रसारिते वक्त्रे वृद्धया पुष्पमर्पितम् ॥
अनुभावोऽक्षिसंकोचवदनस्मेरतादयः ॥

निद्रालस्यादयो व्यभिचारिणः, श्रीकृष्णवाग्वेषचेष्टादय उद्दीपनाः हासरतिः स्थायी।

ज्येष्ठानां स्मितहसिते मध्यानां विहसितावहसिते च
अन्यानामपहसितमतिहसितं तदत्र षट् भेदाः ॥२॥

जाऊँगा। यह छल से अपनी झोली में डाल कर मेरे को ले आवेगा। ऐसा कह कर जब भय युक्त नेत्रों से उनको देखने लगे तब मुनि रोकने को रोका हुआ हास्य अत्यन्त आकार प्रकाश होने लगा ।१। वृद्धा-यथा:— हे कृष्ण! मुख फैलाओ मक्खन देऊंगी। सुन कर जब मुख फैलाने लगे तब वृद्धा ने वहां फूल मुख में डार दिनो। नेत्र संकोच, वदन में मन्दहास्य प्रभृति अनुभाव हैं। निन्द्रा, आलस्य प्रभृति व्यभिचारी भाव तथा श्रीकृष्ण के वचन, वेष, चेष्टा प्रभृति उद्दीपन हैं। स्थायी हासरति जानना। जेठों के स्मित हसित, मध्यमों के विहसित अतिहसित, तथा अधमों का अपहसित अतिहसित होता है। हास्य को इस प्रकार ६ भेद हैं ॥ २ ॥

ईषद्विकासिनयनं स्मितं स्यात् स्पन्दिताधरं।
किञ्चिल्लक्ष्यद्विजं तत्र हसितं कथितं बुधैः।
मधुरस्वरं विहसितं सशिरः कम्पमवहसितं।
अपहसितं सास्राक्षं विक्षिप्तांगं भवेदतिहसितं।
हास्यस्य विषयः क्वापि साक्षान्नैव निबध्यते।
विभावादिच्छलादेव प्रत्यते रसवेदिभिः॥

यथा—शिखरीभिककुचासि यद् रवधूविरयद्विनासाकृति
स्त्वं ... प्रफुल्लितांगारा मृदंगोदरी।
का त्वम्... कुटिले ... जटिलापुत्रि क्षितौ सुन्दरी
पुण्येन ... वां तद्धृति हर्तुं न वंशी क्षमा॥ २॥

नेत्र का ईषत् विकास अधर का स्पन्द होना स्मित है। दान्तों के किञ्चित् दृश्य होने से हसित है। मीठे स्वर से हँसना विहसित है। जिस हास्य में मस्तक काँपता है सो अवहसित जानना। नेत्रों के अश्रु के साथ हास्य अपहसित, तथा अंग का विक्षिप्त होना अतिहसित है। हास्य का विषय कहीं पर भी साक्षात् वर्णन नहीं करते हैं। विभावादिकों के छल से किन्तु वर्णन जानना। यथा।- हे जटिलापुत्रि कुटिले! सेम का बराबर लम्बे तो स्तन हैं। मेढककी वधू को तिरस्कार करने वाली नासिका है। पुराणे कद्दू-का के बराबर दृष्टि तथा तुम्हारे ओठ अंगार के बराबर काले हैं। मृदंग बराबर पेट है। इससे तुम्हारे सदृश पृथ्वी में सुन्दरी कौन है। जिसने व्रजगोपीयों के हृदयहारिणी वंशी ने तुम्हारी धृति नहीं हरण की॥ ३॥

ইষদ্বিকসিতনয়নং স্মিতং স্যাৎ স্পন্দিতাধরং ।
কিঞ্চিল্লক্ষ্যদ্বিজং তত্র হসিতং কথিতং বুধৈঃ ।
মধুরস্বরং বিহসিতং সশিরঃ কম্পমতিহসিতং ।
অপহসিতং সাস্রাক্ষং বিক্ষিপ্তাঙ্গং যদিত্যতিহসিতং ।
হাস্যস্য বিষয়ঃ কাপি সাক্ষান্নৈব নিবধ্যতে ।
বিভাবাদিবলাদেব প্রাপ্যতে রসবেদিভিঃ ।।

যথা—

শিম্বীলম্বিকুচাসি দর্দুরবধূবিস্পর্দ্ধিনাসাকৃতি-
স্ত্বং জীর্য্যদ্দলিদৃষ্টিরোষ্ঠতুলিতাঙ্গারা মৃদঙ্গোদরী ।
কা ত্বত্তঃ কুটিলে পরাস্তি জটিলাপুত্রি ক্ষিতৌ সুন্দরী
পুণ্যেন ব্রজসুভ্রুবাং তব ধৃতিং হর্ত্তুং ন বংশী ক্ষমা ।।৩

অথাদ্ভুতো ভক্তিরসঃ

স্বোচিতৈস্তু বিভাবাদ্যৈঃ স্বাদ্যত্বং ভক্তচেতসি ।
অদ্ভুতাখ্যো ভক্তিরসো বিস্ময়প্রাপিতো যদা ।।

শ্রীকৃষ্ণঃ আলম্বনঃ ক্রিয়াঃ নেত্রবিস্তারাশ্রুপুলকাদিঃ হর্ষাদি-র্ব্যভিচারী চেষ্টা বিশেষাদ্যাঃ উদ্দীপনাঃ বিস্ময়রতিঃ স্থায়ী । সা চ সাক্ষাদনুমানাচ্ছ্রবণাদ্বা যথা দবাগ্নের্মোচিতানাং বিস্ময়-রতিঃ স্থায়ী ।।৪

অথ বীরভক্তিরসঃ

স্বোচিতৈস্তু বিভাবাদ্যৈর্নীতোৎসাহং রতির্যদি ।
ভক্তানাং মানসে বীরো তদা ভক্তিরসো ভবেৎ ।।
যুদ্ধদানদয়াধর্ম্মৈশ্চতুর্দ্ধা বীর উচ্যতে ।
চতুর্ব্বিধস্তু শ্রীকৃষ্ণো হ্যালম্বনতয়া মতঃ ।
ভক্তানাং তত্র চোৎসাহঃ সর্ব্বেষামেব সম্মতঃ ।।

अथाद्भुतो भक्तिरसः

स्वोचितैस्तु विभावाद्यैः स्वाद्यत्वं भक्तचेतसि ।
अद्भुताख्यो भक्तिरसो विस्मयप्रापितो यदा ॥

श्रीकृष्णः आलम्बनः क्रियाः नेत्रविस्ताराश्रुपुलकादिः हर्षादिर्व्यभिचारी चेष्टाविशेषाद्याः उद्दीपनाः विस्मयरतिः स्थायी । सा च साक्षादनुमानाच्छ्रवणाद्वा यथा दवाग्नेर्मोचितानां विस्मयरतिः स्थायी ॥ ४ ॥

अथ वीरभक्तिरसः

स्वोचितैस्तु विभावाद्यैर्नीतोत्साहरतिर्यदि ।
भक्तानां मानसे वीरस्तदा भक्तिरसो भवेत् ॥
युद्धदानदयाधर्मैश्चतुर्धा वीर उच्यते ।
चतुर्विधस्तु श्रीकृष्ण आलम्बनतया मतः ।
भक्तानां तत्र चोत्साहः सर्वथामेव सम्मतः ॥

अब अद्भुतरस कहते हैं । निजोचित विभावादिकों से विस्मय नामक स्थायीभाव भक्त हृदय में स्वादित हो कर अद्भुत नामक रस होता है । श्रीकृष्ण जिसमें आलम्बन हैं । नेत्र विस्तार, अश्रु, पुलक प्रभृति क्रिया है । हर्षादि व्यभिचारि भाव, तथा चेष्टादिक उद्दीपन, और विस्मयरति स्थायी है । साक्षात्, अनुमान, तथा श्रवण से होता है । दवाग्नि से मोचित सखाओं के जैसे ॥ ४ ॥

निजोचित विभावादिकों से उत्साह नामक स्थायीभाव भक्तों के मानस में जाकर 'वीर-भक्तिरस' होता है । युद्धवीर, दानवीर, दयावीर, तथा धर्म्मवीर से चार प्रकार का है । चार प्रकार से युक्त श्रीकृष्ण आलम्बन हैं । भक्तों को उत्साह होता है इसमें यही सब का मत है । श्रीकृष्ण की प्रीति के लिये उत्साहकारी कोई सखा,

युद्धवीरः— कृष्णस्य प्रीतये कश्चित् सख्योत्साहं करोति चेत्।
प्रतियोद्धा मुकुन्दो वा सखा वा वीर उच्यते ॥
करथनास्फोटलगुडपलमालाग्रहणादि उद्दीपनं, हर्षगर्वामर्षादयो व्यभिचारिणः। असहाये युद्धेच्छा युद्धादचलनं अनुभावः।
लगुडालगुडिक्रीडा श्रीकृष्णेन सुहृद्वरैः।
आसीत्पराजितः कृष्णस्तनोनाचलदद्भुतः ॥

दानवीरः— दानवीरस्त्रिधा प्रोक्तो ह्यधिकारित्रिभेदतः।
मोक्षार्थी भक्तिकामश्च रसार्थी चाधिकारिणः।
मोक्षार्थी विधिना कृष्णे तद्भक्तब्राह्मणेऽपि च।
ददाति दित्सति सदा धृतिहर्षादिसंयुतः ॥५॥
स्मितभाषणगुणागुणविचारादिरनुभावः। विचेष्टादिरुद्दीपनः।
मोक्षो चतुर्विधो ज्ञेयो न त्वैक्यं तु कदाचन।
सर्वेश्वरस्तु श्रीकृष्णो विषयत्वेन संमतः ॥

प्रतियोद्धामुकुन्द, तथा सखा युद्धवीर है। गर्व, आस्फोट, लाठी, फल, मालाग्रहणादिक उद्दीपन जानना। हर्ष, गर्व, अमर्ष, व्यभिचारिभाव तथा असहाय में युद्ध की इच्छा, और युद्ध से न भागना अनुभाव है। यथा लाठालाठि क्रीड़ा में सखाओं से श्रीकृष्ण पराजित हो गये। किन्तु उनका शरीर चलायमान नहीं हुआ। अधिकारि भेद से दानवीर तीन प्रकार है। मोक्षार्थी, भक्तिकाम, रसार्थी तथा अधिकारी है। मोक्षार्थी गण विधिपूर्वक धैर्य तथा हर्षादिक से युक्त होकर श्रीकृष्ण तथा भक्त और ब्राह्मणगण में द्रव्य देते हैं ॥५

मन्दहास्य, बोलना, गुण अगुण का विचार प्रभृति अनुभाव है। [illegible] उद्दीपन जानना। मोक्ष चार प्रकार का है। कभी [illegible] नहीं जानना। सर्वेश्वर श्रीकृष्ण विषय है। उनके जो भक्त

ईश्वरस्यैव भक्तो यः स भक्तत्वेन संमतः ।
भक्तयर्थी भक्तमात्रं तु कांक्षे दानीयं सर्वदा ॥

अथरसार्थी— रसार्थी तु द्विधा ज्ञेयः सिद्धः साधक इत्यपि ।
कृष्णस्योद्भवकांक्षीसन् दापयेच्च ददाति च ।
सिद्धस्त्वत्र तु विज्ञेयो व्रजेशादिः सतां मते ।
साधकस्तु रसज्ञान् वै कांक्षते दानमानयोः ।
इतरस्मिन्तुदासीनो दानमाने च सर्वदा ।
नान्यस्य दानमानादेः प्रवेशो रसवर्त्मनि ।
मानं त्वेनकधा ज्ञेयं वासो भाषणवन्दने ।
आसनं भोजनं मैत्र्यं सम्बधीकरणं तथा ।
पाठनं पठनं चैव व्यवहारस्तथा परे ।

दयावीरः— कृपाद्रवन्मानसेन श्रीकृष्णायार्पयेत्तनुं ।
दयावीर इतिख्यातः सिद्धासिद्धविभेदतः ॥ उद्दीपनाः

हैं वह भक्त हैं तथा केवल भक्ती की कामना करते हैं उनको भक्तिकाम जानना । सिद्ध तथा साधक भेद से रसार्थी दो प्रकार के हैं । कृष्ण के सुख के लिये दान दिलाने तथा देने वाले सिद्ध हैं । व्रजराजादिक सिद्ध जानना । साधक गण किन्तु दान मान रसज्ञ गणों में चाहते हैं । तथा औरों में उदासीन रहते हैं । रस-मार्ग में औरों को दान मान का प्रवेश नहीं है । निवास, भाषण, वन्दन, आसन, भोजन, मित्रता, सम्बन्ध करण, पाठन, पठन, और व्यवहार से मान बहुत प्रकार है ॥ कृपा से द्रवित मानस होकर श्रीकृष्ण के लिये शरीर अर्पण दयावीर है । सिद्ध, असिद्ध भेद से दो प्रकार के जानना । सौकुमार्य्यादिक उद्दीपन, स्वप्राण अर्पणादि

सौकुमार्य्यादयः। स्वप्राणार्पणादिना रक्षा विश्वासादयोऽनुभावाः औत्सुक्यादयो व्यभिचारिणः ॥ ६ ॥

अथधर्म्मवीरः— कृष्णैकतोषणे धर्म्मे यः सदा परिनिष्ठितः।
व्रजस्थ ब्राह्मणाः सर्व्वे धर्म्मवीरावलम्बकाः ॥
उद्दीपना इह प्रोक्ताः सच्छास्त्रश्रवणादयः ॥
अनुभावा नयास्तिक्यसहिष्णुत्वयमादयः ॥

मतिस्मृत्यादयो व्यभिचारिणः। केचिद्धर्म्मवीरं न मन्यन्ते युद्धोत्साहरतिः, दानोत्साहरतिः, दयोत्साहरतिः, धर्म्मोत्साहरति रित्यादिस्थायी ॥ ७ ॥

अथकरुणभक्तिरसः

अस्य करुणविप्रलम्भाद्भेदः। शोकस्थायितया भिन्नो विप्रलम्भादयं रसः।

से रक्षा, तथा विश्वासादिक अनुभाव, और औत्सुक्यादिक व्यभिचारि हैं ॥ ६ ॥

श्रीकृष्ण के तोषण में निष्ठा रखने वाले व्रजवासी ब्राह्मण-गण धर्म्मवीर के आश्रय हैं। सत् शास्त्र श्रवण प्रभृति उद्दीपन, नीति, आस्तिक्यता सहिष्णुता, यमादिक अनुभाव है। मति, स्मृत्यादिक व्यभिचारिभाव जानना। कोई कोई धर्म्मवीर नहीं चाहते हैं। युद्धोत्साहरति, दानोत्साहरति, दयोत्साहरति, धर्म्मोत्साहरति क्रम से चार प्रकार वीर रसका स्थायीभाव है।७।

अब करुणरस कहते हैं। इस का करुण विप्रलम्भ से भेद है। शोक स्थायी होने का कारण जानना। विप्रलम्भ में संयोग

विप्रलम्भे रतिः स्थायी पुनः संयोग हेतुकः ।
स्वोचित स्तु विभावाद्यैः स्वाद्यत्वं भक्तमानसे ।
गतः शोको भक्तिरसः करुणाख्यो भवेत्तदा ।
अत्रमेव महानन्दः प्रेमतस्त्वनुभूयते ।
अनिष्ट विषयः कृष्णस्तथा तस्य च वल्लभः ॥
तथानन्दप्रमाप्तित्वाद्भक्तश्च विषयो मतः ॥

तद्गुणक्रियादय उद्दीपनाः, भूपातक्रन्दनादयोऽनुभावाः, वैवर्ण्योच्छ्वास निःश्वास चिन्ताद्याः व्यभिचारिणः श्रीकृष्णविषयाः ॥

श्रीदशमे ।— तं नागभोगपरिवीतमदृष्टचेष्ट
मालोक्य तत्प्रियसखाः पशुपा भृशार्त्ताः ।
कृष्णेऽर्पितात्मसुहृदर्थकलत्रकामाः
दुःखानुशोकभयमूढधियो निपेतुः ॥

प्रियजनो यथा ।— प्रियाणां वंधे कृष्णः शंखचूडेन निर्म्मिते ।
वैवर्ण्यं चित्तमालिन्यं प्राप्तोऽतीव विह्वलः ॥
एवमिदानीन्तनभक्तानां श्रीमूर्त्यादौ ज्ञेयं ॥८॥

हेतुक रति स्थायी है । निजोचित विभावादिकों से शोक नामक स्थायीभाव भक्तों के हृदय में आस्वादित होकर करुण-भक्तिरस होता है । यह करुण होने से भी प्रेम के कारण महाआनन्द दायक है । अनिष्टविषय श्रीकृष्ण, तथा प्रियगण, तथा भक्तगण विषय है । उनके गुण तथा क्रियादिक उद्दीपन, पृथिवीपतन, क्रन्दन प्रभृति अनुभाव, विवर्णता उच्छ्वासनिश्वास, चिन्ता प्रभृति व्यभिचारि भाव श्रीकृष्णविषयक हैं ॥

श्री हरि को कालिय नागके शरीर से वेष्टित तथा चेष्टा हीन से देखकर प्रियसखागण अत्यंत व्याकुल होने लगे कृष्ण में

अथ रौद्रभक्तिरसः

स्वोचितैस्तु विभावाद्यैः स्वाद्यत्वं भक्तमानसे।
नीता क्रोधरतिः स्थायी रौद्रो भक्तिरसो भवेत्॥
कृष्णः प्रियोऽप्रियश्चेति क्रोधस्य विषयस्त्रिधा।
आलम्बनं तु क्रोधस्य त्रितये व्रजवासिनः।
प्रियेऽप्रियेऽपि भक्ताः स्युर्न तु कृष्णे कदाचन।
हितवर्गस्य यः क्रोधः प्रविशेद्धितकृष्णयोः।
कृष्णानुकूलतो ज्ञेयो ह्यतो भक्तिरसो भवेत्।
असुरादौ तु यः क्रोधः प्रातिकूल्यात्तु रोधकः।
यथा शास्त्री च पुत्रे च लोकस्य परिदृश्यते ॥१॥

अर्पित आत्मा, सुहृद्, अर्थ, कलत्र, कामनादिक वाले वह दुःख तथा शोक और भय से मोहित बुद्धि हो कर पृथिवी पर गिरने लगे। प्रियजन यथा :—शंखचूड द्वारा स्त्रियों का धर्षण होने पर श्रीकृष्ण विह्वल होकर विषण्ण मन हो गये। इसी तरह आधुनिक भक्तों का श्री विग्रह में भी जानना। ८॥ अब रौद्र भक्तिरस कहते हैं। निजोचित विभावादिकों से क्रोधरति नामक स्थायी भक्त हृदय में आस्वादित हो कर रौद्र भक्तिरस होता है। श्रीकृष्ण, प्रियजन, तथा अप्रियजन भेद से क्रोध के तीन प्रकार के विषय भेद हैं। व्रजवासियों के तीन प्रकार के विषयमें क्रोधका आलम्बन है। प्रिय तथा अप्रिय में भी भक्त होते हैं। हितकारक प्रिय वर्ग का क्रोध हित युक्त होने से अनुकूलात्मक है अतः भक्तिरस होता है असुरादिकों का क्रोध प्रतिकूलता के कारण रसका रोधक है ॥१॥

अयमर्थः।—व्रजवासिनां श्रीकृष्णे हितेऽहिते च क्रोधः, अन्यभक्तानां हितेऽहिते च। सर्वत्र श्रीकृष्ण एव निमित्तं। जरत्यादीनां श्रीकृष्णे क्रोधः बध्वावलोकनादिना। हिते व्रजेश्वर्य्यादौ उलूखलबन्धनादिना यमलार्जुनमध्यश्रीकृष्णदर्शनेन। अहिते श्वसुरादिषु अहितक्रियया। अन्यभक्तानां तु भक्तान्तरे क्रोधः। सेवाकालाद्यतिक्रमेण एवमूह्यं सखादौ। सोल्लुण्ठहासवक्रोक्तिकटाक्षानादरादयः उद्दीपनाः हस्तनिःपेषणं दन्तघर्षणं रक्तनेत्रता, दन्तौष्ठतानिःश्वासभुग्नदृष्टिश्चाधरकम्पाद्याः अनुभावाः स्तम्भादयः सात्त्विकाः सर्वे॥ १०॥

अथ भयानकभक्तिरसः

स्वोचितैस्तु विभावाद्यैः पुष्टिं भयरति र्मता।
भयानकाभिधो भक्तिरसो धीरैस्तु कथ्यते।

इसका अर्थ यह है कि व्रजवासियों का श्रीकृष्ण पर हित तथा अहित में भी क्रोध होता है। अन्यभक्तों का भी हित अहित में है जानना। सर्वत्र श्रीकृष्ण ही कारण हैं। जरती वृद्धा-(जटिला-) दिकों का श्रीकृष्ण में क्रोध बधूप्रभृति संसर्ग से जानना। हित में श्री व्रजेश्वरी प्रभृति का जानना। जैसे उलूखल बन्धनादिक है। अहित में श्वसुरादिक है। और भक्तों का क्रोध सेवा-समय अतिक्रम प्रभृति कार्य्य से जानना। इस तरह सखाप्रभृति का उह्य है। उच्च स्वरसे हँसना वक्र बोलना, कटाक्ष, अनादर प्रभृति उद्दीपन है हाथ फटकारना, दन्त घर्षण, रक्तनेत्र, दन्तसे होंठोंको दाबना, निश्वास, भग्नदृष्टि, अधर कंपाना प्रभृति अनुभाव हैं। स्तम्भादिक समस्त सात्विक हैं॥ १०॥ अब भयानक रस कहते हैं। निजोचित विभावादिकों से भयरति नामक स्थायीभाव

कृष्णश्च दारुणाश्चेति तस्मिन्नालम्बना द्विधा ।
दासादिषु कृतागस्सु कृष्णस्त्वालम्बनो मतः ।
दारुणा बान्धवाः केचिदनिष्टादेस्तु दर्शिनः ।
भयहेतोर्दर्शनाद्वा श्रवणाद्वा प्रकीर्तिताः ॥

कृतापराधेषु भक्तेषु श्रीकृष्ण आलम्बनं, बन्धुषु श्रीकृष्णा-निष्टहेतुदर्शनश्रवणस्मरणैः तेन बन्धव एव दारुणा आलम्बनाः ।

कृष्णं गोपय गोपेन्द्र ! असुराः त्रासयन्ते मां ।
पश्य पश्य बलिवर्दं किं शून्यमिव तिष्ठसे ॥

इत्याद्युदाहर्तव्यं । भ्रूकुट्यादय उद्दीपनाः, मुखशोषणोच्छ्वास पराङ्मुखत्वावलोकनशरणान्वेषणाद्या अनुभावाः सात्त्विकाः स्तम्भा-दिरश्रुवर्जिताः, दैन्यादयो व्यभिचारिणः, भयरतिः स्थायी भावस्ततो भीषणोऽयं भयं स्यात् ॥ ९१ ॥

पुष्ट होकर भयानक नामक रस होता है । कृष्ण तथा दारुण गण आलम्बन हैं । कृतापराध जनों में श्रीकृष्ण आलम्बन हैं । अनिष्टादिदर्शी कोई बन्धुगण दारुण हैं । भय के हेतु दर्शन तथा श्रवण से होता है ।

कृतापराध दयनीयभक्त जनों में श्रीकृष्ण आलम्बन हैं । बन्धुओं में श्रीकृष्ण का अनिष्ट हेतु दर्शन तथा श्रवण और स्मरणादि से जानना । यथा हे गोपेन्द्र ! श्रीकृष्ण का गोपन करो । असुर गण मेरे को पीड़ित कर रहे हैं । बलिवर्द (विडाल) इसको देखिये । शून्य के समान क्यों खड़े हो । भ्रूकुटि प्रभृति उद्दीपन, मुख शोषण, उच्चश्वास, फिरचलना, देखना, शरणजनावलोकन प्रभृति

কৃষ্ণশ্চ দারুণশ্চেতি তস্মিন্নালম্বনা দ্বিধা ।
দাসাদিষু কৃতাগস্সু কৃষ্ণস্ত্বালম্বনো মতঃ ।
দারুণা বান্ধবাঃ কেচিদনিষ্টাদেস্তু দর্শিনঃ ।
ভয়হেতোর্দর্শনাদ্বা শ্রবণাদ্বা প্রকীর্ত্তিতাঃ ।।

কৃতাপরাধেষু অশ্রুকম্প্যেষু শ্রীকৃষ্ণ আলম্বনং, বন্ধুষু শ্রীকৃষ্ণা-নিষ্ঠাহেতুদর্শনশ্রবণস্মরণাদিনা বান্ধবা এব দারুণা আল-ম্বনাঃ ।।

কৃষ্ণং গোপয় গোপেন্দ্র হ্যসুরাঃ ক্ষাময়ন্তি মাম্ ।
পশ্য পশ্য বলিবর্দ্দং কিং শূন্যমিব তিষ্ঠসে ।।

ইত্যাদ্যুদাহর্য্যং । ভৃকুট্যাদ্যা উদ্দীপনাঃ, মুখশোষণোচ্ছ্বাসপরা-বৃত্যাবলোকনশরণাবলোকনাদ্যা অনুভাবাঃ সাত্ত্বিকাঃ স্তম্ভা-দিরশ্রুবর্জিতা, দীনতাদির্ব্যভিচারিণঃ, ভয়রতিঃ স্থায়ী অপ-রাধতো ভীষণেভ্যশ্চ ভয়ং স্যাৎ ।।১১

অথ বীভৎসভক্তিরসঃ

স্বোচিতৈস্তু বিভাবাদ্যৈর্জুগুপসা ভক্তমানসে ।
পুষ্টিং গতা তু বীভৎসঃ স্থায়ীভক্তিরসো ভবেৎ ।।
অস্মিন্ ভক্তিরসে সর্ব্বে ভক্তা আলম্বনা মতাঃ ।

যথা— গতঃ কালো যত্র প্রণবজনিতং সৌখ্যমনিশং
তথা ভক্তপ্রাপ্তং বিষয়সুখমাস্বাদিতমভূৎ ।
ইদানীং কৃষ্ণস্য প্রণয়রসরঙ্গে ধৃতমতেঃ
সুখে নির্ব্বাণাখ্যে ভবতি সহসা ষ্ঠীবনমতিঃ ।।

বক্ত্রকূণন-নিষ্ঠীবন-ঘ্রাণ-সংবৃত্তি-ধাবনাদয়োঽনুভাবাঃ, গ্লান্যা-দয়ো ব্যভিচারিণঃ জুগুপ্সারতিঃ স্থায়ী । অসমর্থঃ সর্বভক্তাম-ভক্তসম্বন্ধে সর্ব্বং ভবতীতি জ্ঞেয়ম্ । ইতি দ্বাদশরসাঃ ।।১২

अथ बीभत्सभक्तिरसः ॥

स्वोचितैस्तु विभावाद्यैर्जुगुप्सा भक्तमानसे ।
पुष्टिं गता तु बीभत्सः स्थायी भक्तिरसो भवेत् ॥
अभिन्नभक्तिरसे ह्यत्र भक्ता आलम्बना मताः ।

यथा— गतः कालो यत्र [illegible] सौख्यमनिशं
तथा भक्तप्रेम [illegible] विषयसुखमास्वादितमभूत् ।
इदानीं कृष्णस्य [illegible] धृतवतेः
[illegible] भवति [illegible] मतिः ॥

वक्त्रकूणन निष्ठीवन [illegible] भावनादयोऽनुभावाः, ग्लान्यादयो व्यभिचारिणः जुगुप्सा [illegible] स्थायी । अयमर्थः सर्वभक्तानाम [illegible] सम्बन्धे [illegible] भवति [illegible] इति बीभत्सरसाः ॥ १२ ॥

अनुभाव, अश्रु वर्जित [illegible] व्यभिचारि, भव रति स्थायी है। अपराध तथा [illegible] होता है ॥११॥

अब बीभत्स रस कहते हैं [illegible] स्थायी निजोचित विभावादिकों से [illegible] बीभत्स भक्तिरस होता है। इस रस के [illegible] है यथा—वह समय अतीत होगया है। [illegible] सुख निरन्तर था तथा समस्त विषय सुख में [illegible] अब श्रीकृष्ण के प्रीतिरस में मन [illegible] पर थूकता है।

मुख सिकोड़ना, थूकना [illegible] भागना प्रभृति अनुभाव, हैं। ग्लानि प्रभृति [illegible] जुगुप्सा रति स्थायी है। इसका अर्थ यह है [illegible] अभक्त सम्बन्ध में यह होता है जानना। [illegible] ॥ १२ ॥

अथ रसानां मैत्रवैरस्थितिः

रसयोस्तु द्वयोः स्थानं भवेद्गौणप्रधानतः ।
न प्राधान्येन विज्ञेयमित्येवं रसिकैर्मतं ॥

तदुक्तभारते–भावो वापि रसो वापि प्रवृत्तिवृत्तिरेव वा ।
सर्वेषां समवेतानां यस्य रूपं भवेद्बहु ।
स मन्तव्यो रसः स्थायी शेषाः सञ्चारिणो मता इति ।
शान्ते प्रीतस्तु बीभत्सः धर्म्मवीर सुहृन्मतः ।
शुचि भयानको रौद्रो युद्धवीरश्च शात्रवः :
प्रीते दानदयावीरः शान्तबीभत्सको सुहृत् ।
वैरी शुचियुद्धवीरौ रौद्रोऽपि समयान्वितः ।
प्रेयो रसे शुचिर्हास्यं युद्धवीरः सुहृद्वरः ।
बीभत्सो वत्सलश्चेति रौद्रो भीमस्तु शात्रवः ॥
वत्सले हास्यकरुणौ भयानक इमे सुहृत ।
शुचिः प्रीतो युद्धवीर रौद्र इत्येव शात्रवः ॥

अब रसों का मित्र शत्रु वर्णन करते हैं गौण तथा प्रधान से रस के दो स्थान हैं। केवल प्रधान से नहीं है। यह रसिकों का मत है। भारत में कहा है भाव होय किम्वा रस होय अथ च प्रवृत्ति होय अथवा वृत्ति होय, सबका समवेत से जिसके रूप बहुत हैं सो स्थायी जानना, और सब सञ्चारी हैं। शान्त रस में प्रीत, बीभत्स, धर्म्मवीर सुहृत तथा शृंगार, भयानक, रौद्र, युद्धवीर शत्रु हैं। प्रीत रस में दानवीर, दयावीर, शान्त, बीभत्स सुहृत् तथा शुचि, युद्धवीर, समयमुक्त रौद्र वैरी हैं। प्रेम रस में शुचि, हास्य, युद्धवीर, मित्र तथा बीभत्स वत्सल, रौद्र, भीम शत्रु हैं ॥१३॥

वत्सल रस में हास्य, करुणा, भयानक, मित्र तथा शुचि, प्रीत, युद्धवीर, रौद्र शत्रु हैं। शृंगार रस में हास्य, प्रेय, अद्भुत, सुहृत,

शुचौ हास्यस्तथा प्रेयानद्भुतश्च सुहृद्वरः ।
बीभत्सो वत्सलश्चेति शान्तरौद्रभयानकाः ।
शत्रव इति शेषः ॥
हास्ये शुचिश्च बीभत्सः प्रेयान्वत्सलकः सुहृत् ।
भयानकोऽथ करुणः शत्रूश्चैनैव संगतौ ॥
अद्भुते पञ्च मुख्याः स्युः मित्राणीति विनिश्चयः
बीभत्सक रौद्रौ शत्रू वीरे हास्योद्भुतौ प्रेयान् ।
प्रीत एते सुहृद्गणः
करुणे वत्सलो रौद्रः सुहृज्ज्ञेयो मनीषिणा ।
वैरी हास्योऽस्य संभोगश्रृंगारश्चाद्भुतस्तथा ।
रौद्रस्य करुणोप्रोक्तो वीरश्चापि सुहृद्वरः ।
शत्रुः शुचिस्तथा प्रेयान् युक्त्या सर्वं विचारयेत् ॥
वस्तुवस्तु विरोधो हि कुण्ठोभावोऽत्र संमतः ॥१३॥
अत्यन्त बलवत्त्वेन कुण्ठो भावोऽत्र संमतः ॥
शत्रूणामपि मित्रत्वं प ष त्वेन संमतं ॥
रसराजे तु कस्यापि नैव शत्रुत्वमोद्यते ।
अन्यथा रसराजत्वं शुचौ नैवोपपद्यते ॥
सुधाकरे—द्विषौ श्रृंगारबीभत्सौ मिथो वीरभयानकौ ।
रौद्राद्भुतौ तथा हास्यकरुणौ प्रकृतिद्विषौ ।

तथा बीभत्स, वत्सल, शान्त, रौद्र, भयानक शत्रु हैं। अद्भुत में शान्त, हास्य, सख्य, वात्सल्य, मधुर मित्र तथा बीभत्स, रौद्र शत्रु हैं। वीररस में हास्य, अद्भुत, प्रेय, प्रीत, मित्र तथा शत्रु हैं। करुण रस में वत्सल, रौद्र, सुहृत तथा हास्य, संभोगश्रृंगार, अद्भुत वैरी हैं। रौद्र में करुण, वीर सुहृत् तथा शुचि, प्रेय शत्रु हैं। यह बात विचार से जानना, वास्तविक विरोध ही रसका कुण्ठित भाव है ॥ १३ ॥

अथ रसाभासः—

शृङ्गारो हास्ययुग्दुष्टः शृङ्गाराभास ईरितः।
अद्भुतः करुणाश्लेषादद्भुताभास उच्यते।
वीभत्सोऽद्भुतशृङ्गाराद् वीभत्साभास उच्यते।
स स्याद्भयानकाभासो रौद्रवीरोपगूहनादिति ॥१४॥

भावप्रकाशिकायां प्राकृतेषु च भक्तेषु रसो वाभासकोऽथवा।
श्रीकृष्णे प्राप्यते भावः स्थायिनः तत्त्वभावत
भक्तस्याज्ञा तु श्रीकृष्णभक्तयाः स्वभावात्।
व्रजस्थानां न कुत्रापि रसाभासो मनागपि।
बिन्दुर्बिन्दुतया स्पर्शात् रसवाः रसिकाः म
प्राकृतानां निबन्धानां रसोऽत्र नैव योजयेत
रससिद्धौ भक्तिरसे न शिवादेः प्रवेशिता।

इति श्रीनारायणभट्ट विरचितायां भक्तिरसतरंगिण्यां
पञ्चमोल्लासः समाप्तः। समाप्तोऽयं ग्रन्थः ॥

रसराज शृङ्गार में कोई का शत्रुत्व नहीं है। अन्यथा शृ
रस में रसराजत्व नहीं हो सकता है। सुधाकर में—
वीभत्स, वीर भयानक, रौद्र अद्भुत हास्य करुण प्रकृ
परस्पर शत्रु है अब रसाभास कहते हैं, शृङ्गार हास्य प्रयु
शृङ्गाराभास, अद्भुत, करुण संयोग से अद्भुताभास, वी
अद्भुत, शृङ्गार से वीभत्साभास, भयानक रौद्र तथा वीर से
होने से भयानकाभास होता है ॥१४॥

प्राकृत भक्तों में रस, किम्वा रसाभास, श्रीकृष्ण में भा
प्राप्त होता है। व्रजवासियों में कहाँ भी रसाभास नहीं है।

रसिक जनों में बिन्दु बिन्दु से रस का सञ्चार है।
रसिक गण श्रीशुकादिक हैं। प्राकृत वस्तु में रस की योजना
करना चाहिये ॥१५॥

শৃঙ্গারো হাস্যভূয়িষ্ঠঃ শৃঙ্গারাভাস ঈরিতঃ ।
অদ্ভুতঃ করুণশ্লেষাদদ্ভুতাভাস উচ্যতে ।
বীভৎসোদ্ভুতশৃঙ্গারো বীভৎসাভাস উচ্যতে ।
স স্যাদ্ভয়ানকাভাসো রৌদ্রবীরোপগূহনাদিতি ।।১৪

ভাবপ্রকাশিকায়াং প্রাকৃতেষু চ ভক্তেষু রসো বাভাসকোপি বা । শ্রীকৃষ্ণে প্রাপয়েদ্ভাবমজ্ঞানাৎ তৎস্বভাবতঃ ভক্তস্যাজ্ঞা তৎ শ্রীকৃষ্ণভক্তয়োঃ স্বভাবাৎ ।

ব্রজস্থানাং ন কুত্রাপি রসাভাসো মনাগপি ।
বিন্দুবিন্দুতয়া স্পর্শাৎ রসিকাঃ রসিকাঃ মনাক্ ।
প্রাকৃতানাং নিবন্ধানাং রসোক্তির্নৈব যোজয়েৎ
রসসিদ্ধৌ ভক্তিরসে ন হিংগ্বাদেঃ প্রবেশিতা ।।১৫

ইতি শ্রীনারায়ণভট্টবিরচিতায়াং ভক্তিরসতরঙ্গিণ্যাং
পঞ্চমোল্লাসঃ সমাপ্তিঃ । সমাপ্তোঽয়ং গ্রন্থঃ ।।

श्रीश्रीराधारमणो जयति

श्रीरामशिष्यं कटके सुजन्मं पौगण्डकाले गुरुसान्निधाप्तम् ।
गौरोदयोर्व्यां परियान्तमाशु श्रीकृष्णदासं प्रणमामि नित्यम् ।।१

गौराङ्गदासादिभिरुन्मदेन वृन्दावने वासकृतं सहर्षम्।
भावानुरागेण वदन्तमुच्चैः श्रीकृष्णदासं प्रणमामि नित्यम् ।।२

गौडीयभक्तै रचिता रसाढ्या उद्दीपिता ग्रन्थवरा हि येन ।
साहित्यरत्नं ब्रजभूषणं तं श्रीकृष्णदासं प्रणमामि नित्यम् ।।३

विज्ञैः समेतं सुमनःसरस्स्थं ग्रन्थानुलेखं परिशोधयन्तम् ।
सद्भक्तिसिद्धान्तनिधिं सनिष्टं श्रीकृष्णदासं प्रणमामि नित्यम् ।।४

सौम्यं कृपालुं मधुभाषकण्ठं शुक्लाम्बरं क्षीणतनुं नितान्तम् ।
निःसङ्गमानन्दवपुं महान्तं श्रीकृष्णदासं प्रणमामि नित्यम् ।।५

लीलास्मरन्तं सततं जपन्तं देवाग्र उन्मत्तपरं नटन्तम् ।
संकीर्तनामोदमोदं प्रसिद्धं श्रीकृष्णदासं प्रणमामि नित्यम् ।।६

भक्ताधरोच्छिष्टललातिचित्तं स्नेहाभिमूर्तिं चलनातिधीरम्
भक्तानभक्ताञ्च नमन्तमुत्कं श्रीकृष्णदासं प्रणमामि नित्यम् ।।७

रोमाञ्चकम्पाश्रुतरङ्गयुक्तं मुग्धं प्रशान्तं नितरां हसन्तम् ।
वैराग्यसिन्धुं करुणैकबन्धुं श्रीकृष्णदासं प्रणमामि नित्यम् ।।८

इति श्रीश्रीवृन्दावननिवासिना श्रीश्रीवृन्दावनदासेन विरचितं
श्रीश्रीकृष्णदासाष्टकं सम्पूर्णम्

